पीवत रामरस लगी खुमारी

प्रवचन-क्रम

1. धर्म का सारः खुमारी..2
2. मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः..16
3. रब्ब दा की पाना..35
4. संन्यास तो आईना है..51
5. बुद्धत्व आकाश-कुसुम है..68
6. पीए बिना कोई मार्ग नहीं...85
7. प्रार्थना नहीं--ध्यान..95
8. एक अभिनव धर्म चाहिए..111
9. जिन डूबे तिन ऊबरे..128 10...ध्यान का दीया जलाओ 148

पीवत रामरस लगी खुमारी
पहला प्रवचन

धर्म का सारः खुमारी

पहला प्रश्नः ओशो, आपने संत-शिरोमणि कबीर साहब के पद "पीवत रामरस लगी खुमारी" को नई प्रवचन माला का शीर्षक बनाया है। क्या सच ही ब्रह्मानुभव परम मद है? यह ब्रह्मानुभव क्या है? ओशो, ऐसा लगता है कि कबीर साहब आपको अतिशय प्रिय हैं। क्यों?

आनंद मैत्रेय, कबीर निश्चय ही मुझे अतिप्रिय हैं। कारण बहुत हैं। बुद्ध से मुझे बहुत लगाव है, लेकिन बुद्ध राजमहल के एक उपवन हैं। सुंदर फूल खिले हैं। बड़ी सजावट है बगिया में, बड़ी रौनक है। परिष्कार है। लेकिन जंगल की जो सहजता है, स्वाभाविकता है, उसका अभाव है। बुद्ध अगर उपवन हैं तो कबीर जंगल हैं। जंगल का अपना सौंदर्य है--अछूता, कुंवारा। न तो मालियों ने संवारा है, न शिक्षा है, न संस्कार हैं, न ज्ञान है। और फिर भी परम प्रकाश का अनुभव हुआ है। शिक्षित-परिष्कृत व्यक्ति को जब परम प्रकाश का अनुभव होता है तो स्वभावतः उसकी अभिव्यक्ति जटिल होगी, दुरूह होगी। चाहे या न चाहे वह, उसकी अभिव्यक्ति में सिद्धांत की छाया होगी। उसकी अभिव्यक्ति अनगढ़ नहीं हो सकती।
कबीर की अभिव्यक्ति अनगढ़ है। ऐसा हीरा, जो अभी-अभी खान से निकला; जौहरी के हाथ ही नहीं पड़ा। न छैनी लगी, न पहलू उभरे। वैसा ही है जैसा परमात्मा ने बनाया था। आदमी ने अभी अपने हस्ताक्षर नहीं किए। इसलिए दूर हिमालय के पहाड़ों पर, कुंवारे जंगलों में जो सन्नाटा है, जो संगीत है, जो गहन मौन है, जो प्रगाढ़ शांति है--वैसी ही कुछ कबीर में है।
कबीर के साथ ही भारत में बुद्धों की एक नईशृंखला शुरू होती है--नानक, रैदास, फरीद, मीरा, सहजो, दया। यह एक अलग हीशृंखला है। बुद्ध, महावीर, कृष्ण--यह एक अलग हीशृंखला है। बुद्ध, महावीर और कृष्ण राजमहलों के गीत हैं। कबीर, नानक, फरीद झोपड़ों में बजी वीणा हैं। राजमहल में गीत का पैदा हो जाना बहुत आसान; न हो तो आश्चर्य, हो तो कोई आश्चर्य नहीं। राजमहलों में जो रहा है, ऊब ही जाएगा। राजमहलों में जो जीया है, जगत से उसकी आसक्ति टूट ही जाएगी। लाख सम्हालना चाहे, बचाना चाहे, बहुत मुश्किल है बचाना।
निर्धन को धन में आशा होती है। लगता है मिल जाएगा धन तो सब मिल जाएगा, फिर पाने को कुछ और क्या! लेकिन जिसको सब मिला है उसकी आशा के लिए कोई आकाश नहीं बचता। उसके हाथ तो सिर्फ निराशा रह जाती है, हताशा रह जाती है। बुद्ध के पास सब था; कबीर के पास कुछ भी नहीं। बुद्ध के पास क्या नहीं था? कबीर के पास क्या था? इसलिए बुद्ध अगर संसार की आपाधापी से छूट गए, यह दौड़ अगर व्यर्थ हो गई, तो नहीं कोई आश्चर्य है। राजमहलों में रहकर भी अगर कोई संन्यस्त न हो तो महामूढ़ होगा, मंदबुद्धि होगा। सिर्फ इसका सबूत देगा।
झोपड़ों में रहकर भी... कबीर तो जुलाहे थे। आज कमाया, आज खाया। कल कमाएंगे तो कल खाएंगे। इतना भी नहीं था पास कि कल के लिए भी निश्चिंत बैठ सकें। ऐसी गरीबी में भी जो देख सका संसार की व्यर्थता को, उसके पास महान प्रज्ञा होनी चाहिए। बुद्ध देख सके तो ठीक, महावीर देख सके तो ठीक; लेकिन कबीर देख सके तो बात अनहोनी है।
जैसा मैंने कहा कि महलों में सिर्फ बुद्धू ही उलझे रह सकते हैं, वैसे
ही यह भी स्मरण रखना है कि झोपड़ों में केवल अति प्रज्ञावान ही बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते हैं।
इसलिए कबीर से स्वभावतः मेरा लगाव गहरा हो जाता है। और चूंकि कबीर अनगढ़ हैं, उनकी वाणी में एक चोट है। बुद्ध की वाणी सुकुमार है, फूल जैसी कोमल है। कबीर की वाणी यूं पड़ती है जैसे किसी ने चट्टान सिर पर गिरा दी हो।
कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ!
लट्ठ लिए हाथ में खड़े हैं।
कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।

घर बारे जो आपना चले हमारे साथ।।
हो हिम्मत घर को जला डालने की, राख कर देने की तो आओ, हो लो हमारे साथ।
और लट्ठ लिए खड़े हैं, कहते हैं। यह लुकाठी, यह लट्ठ क्यों? कबीर तो यूं गिरते हैं जैसे खड्ग की धार गर्दन पर गिरती हो। बुद्ध भी काटते हैं, लेकिन काटने में एक कुशलता है, एक तरतीब है, एक कला है। सूक्ष्म मार है। और कबीर तो सीधे-सीधे उठाते हैं कुल्हाड़ी और दो टुकड़े कर देते हैं।
कबीर के वचनों में आग है; आग्नेय हैं उनके वचन। बुद्ध के वचनों में कोई शीतलता भी होगी। कोई सांत्वना भी खोज सकता है बुद्ध के वचनों में, क्योंकि शीतल हैं। कबीर के वचनों में सांत्वना खोजनी असंभव है; वहां तो जलती क्रांति है। वहां तो जो राख होने को तैयार हो उसी के लिए निमंत्रण है।
फिर, चूंकि बुद्ध की सारी दीक्षा, सारी शिक्षा तर्क की थी, एक राजकुमार की तरह उन्हें शिक्षित-दीक्षित किया गया था, इसलिए जब वे बोलते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति में तर्क का आधार है, दार्शनिकता है, गणित है। लेकिन कबीर बेबूझ हैं, पहेली हैं, उलटबांसी हैं। तर्क का उन्हें कुछ पता ही नहीं। संगति का उन्हें कुछ हिसाब ही नहीं। चूंकि संगति बिठालने का उन्हें कुछ पता ही नहीं है, इसलिए सत्य उनमें जिस परिपूर्णता से प्रगट हुआ है वैसा बुद्ध में नहीं हो सकता। बुद्ध में तो सत्य कट-छंटकर आएगा, निखार लेकर आएगा; सत्य ऐसा आएगा जो तुम्हारी बुद्धि को रुचे-पचे। सत्य में बुद्ध के साथ राजी हो जाना बहुत कठिन नहीं।
बुद्ध की पूरी प्रक्रिया बुद्धिवादी है, रैशनल है। इसलिए बुद्ध ने उन सारे प्रश्नों को ही कभी उठाया नहीं, इनकार ही कर दिया। उन प्रश्नों को अव्याख्य कह दिया, जिन प्रश्नों में विरोधाभास अनिवार्य है--जिन्हें कहना हो तो कबीर की उलटबांसी ही कहनी पड़ेंगी। जैसे कबीर कहते हैंः एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आग! बुद्ध नहीं कह सकते। अचंभा उन्होंने भी देखा है, नदिया में लगी आग उनने भी देखी है, लेकिन बुद्ध कह नहीं सकते। यह उनकी शिक्षा-दीक्षा रोकेगी, कि ये कैसे कहूं, प्रमाण कहा से लाऊंगा, तर्क कहां से जुटाऊंगा? यह बात तो देखी। इसलिए बुद्ध कहते हैंः मैं विधि बताऊंगा कि तुम्हें भी ले चलूं उस नदी के किनारे, फिर तुम्हीं देख लेना। देख लोगे तो समझ लोगे। मगर मैं न कहूंगा कि नदिया में आग लगी; वह बात ही मत पूछो। चलने की राह पूछो, पहुंचने का मार्ग पूछो, विधि पूछो, विधान पूछो; मगर यह न पूछो कि वह अनुभव क्या है।
कबीर गांव के गंवार हैं; बेफिक्री से कह देते हैं कि नदी में आग लगी। नदी में कहीं आग लगती है? विवाद करने बैठोगे तो कबीर मुश्किल में पड़ेंगे। कैसे समझाएंगे कि नदी में आग लगी?
कबीर ऐसे बहुत से अचंभों की बातें करते हैं। मछली चढ़ गई रूख। वृक्ष पर मछली चढ़ गई। मछली के कोई पैर होते हैं कि वृक्ष पर चढ़ जाए? कभी सुना है, देखा कि वृक्ष पर मछली चढ़ जाए? लेकिन कबीर जब कह रहे हैं तो उनका प्रयोजन है। लेकिन प्रयोजन तर्कातीत है। मगर कबीर को फिक्र कहां कि बात तर्क में बैठती या नहीं, गणित के ढांचे में समाती या नहीं! कबीर को चिंता ही नहीं। कबीर को कोई ऐसी शिक्षा-दीक्षा नहीं मिली जिसमें ढांचे में बिठालना हो, चौखटों में तर्क के बिठालने का उनको कोई स्मरण ही नहीं है।
अभी-अभी पश्चिम के कुछ चित्रकारों ने अपनी कलाकृतियों में फ्रेम लगाना, चौखट लगाना बंद कर दिया है। पूछे जाने पर उन चित्रकारों ने कहा कि जगत में किसी चीज पर कोई फ्रेम तो होती नहीं। जैसे तुमने एक सूर्यास्त का चित्र बनाया, तो सूर्यास्त पर तो कोई फ्रेम होती नहीं कि यहां शुरू हुआ और यहां समाप्त हुआ। न कहीं शुरू होता है, न कहीं समाप्त होता है; फैलता ही चला जाता है दोनों तरफ अनंत में, अनंत दिशाओं में फैलता चला जाता है; सब आयामों में फैलता चला जाता है। लेकिन जब तुम चित्र बनाओगे तो तुम्हारे केनवास की तो सीमा होगी। फिर सीमा ही नहीं होगी, तुम चित्र को फ्रेम भी दोगे--सुनहला, सुंदर, बेशकीमती। और फ्रेम देते ही--इन चित्रकारों का कहना है--कि तुम्हारा सूर्यास्त झूठ हो गया। असली सूर्यास्त पर तो कोई फ्रेम न था, कोई चौखट न थी। तुमने यह चौखट कैसे जड़ दी?

तर्क भी एक चौखट है, सुंदर चौखट है। बड़ी सुनहली है। खूब नक्काशी है उसमें। बड़ा बारीक काम है, बड़ी कारीगरी है। लेकिन सत्य पर कोई चौखट नहीं होती।
बुद्ध ने और महावीर ने जो कहा है उस पर तर्क की चौखट है। मजबूरी थी उनकी। उनको ही मुश्किल था यह कहना। उनकी सारी शिक्षा-दीक्षा यूं थी कि ऐसी बेबूझ बात जो कबीर कह सकते हैं--बेशर्मी से, कोई लाज नहीं, कोई संकोच नहीं-- वैसी बुद्ध, महावीर कैसे कहें? उनको खुद ही अड़चन मालूम होती है कि कोई अगर और कहता तो हम विरोध करते, तो हम कैसे कहें? देखा तो उन्होंने भी है सूर्यास्त, जिस पर कोई सीमा नहीं है। देखा तो उन्होंने भी असीम को है, अनंत को है, जिसमें सारी असंगतियां तिरोहित हो जाती हैं और सारे विरोध लीन हो जाते हैं। लेकिन जब कहा है तो बड़े तर्क से, संवारे ढंग से कहा है।
इसलिए स्वभावतः बुद्ध के पास विचारशील चिंतकों का समूह इकट्ठा हुआ, पंडित इकट्ठे हुए, ज्ञानी इकट्ठे हुए, दार्शनिक इकट्ठे हुए। जितने दार्शनिकों को बुद्ध ने प्रभावित किया, संभवतः किसी व्यक्ति ने कभी प्रभावित नहीं किया। दुनिया में दर्शनशास्त्र की जितनी शाखाएं- प्रशाखाएं पैदा हुईं, वे सभी शाखा-प्रशाखाएं, वे सभी अंग-उपांग अकेले बुद्ध की धारा में भी पैदा हुए। अगर बुद्ध के दर्शन की पूरी गंगा को कोई समझ ले तो इस दुनिया में कहीं भी किसी भी तरह का कोई दर्शन पैदा हुआ हो, वह उसकी समझ में आ जाएगा। एक तरफ सारी दुनिया का दर्शनशास्त्र और एक तरफ बुद्ध की अकेली गंगा, दोनों समतोल हो जाते हैं।
फायदा भी हुआ बुद्ध को यूं कि दार्शनिक इकट्ठे हुए। और दार्शनिक निखार देते चले गए। लेकिन बात जितनी निखरी उतनी हवाई हो गई, उतनी वास्तविक न रह गई, उतनी शाब्दिक हो गई। यह नुकसान भी हुआ। हर लाभ के साथ नुकसान जुड़े हैं। बुद्ध की बड़ी छाप पड़ी। सारा एशिया बुद्ध से प्रभावित हुआ।
कबीर के पास कौन इकट्ठा हुआ--न कोई दार्शनिक आए, न कोई चिंतक आए, न कोई विचारक आए; उनको तो बात जंची ही नहीं। उनको बात जंचती कैसे? कबीर के पास कोई तर्क तो थे नहीं। अब कबीर लाख कहें कि मैंने अपनी आंख से देखा है कि नदी में आग लगी है, मगर कौन मानेगा यह? लोग कहेंगे पागल हो। हां, लेकिन दीवाने इकट्ठे हुए। तो नुकसान एक हुआ कि दार्शनिक न आए, चिंतक न आए, विचारक न आए, पंडित न आए; लेकिन लंबे अरसे में यही नुकसान लाभ का सिद्ध हुआ। दीवाने आए, मस्ताने आए, परवाने आए, होश गंवाने आए। एक और ही तरह के लोगों की जमात बैठी।
तो कबीर के वचनों में एक अखंडता है, एक परिपूर्णता है। लेकिन जब भी किसी चीज में परिपूर्णता होगी तो उसे तर्क के पार जाना पड़ेगा; उसे तर्क की चौखट को पीछे छोड़ना ही छोड़ना पड़ेगा। इसलिए कबीर से मुझे प्रेम है।
और कबीर ने फिर एक नई धारा को जन्म दिया--उजड्ड संतों की धारा। इन उजड्ड संतों की भी अपनी खूबी है--वही खूबी जो जंगल के सन्नाटे में होती है, कि सागर में उठे तूफान में होती है, कि पहाड़ पर लग गई आग में होती है। वही क्वांरापन, वही अलमस्ती, वही खुमारी। कबीर को यूं समझो कि जैसे उमर खय्याम और बुद्ध दोनों का मिलन हो गया; जैसे उमर खय्याम और बुद्ध दोनों एक संगम बन गए।
तो कबीर ने अलमस्तों की, फकीरों की, फक्कड़ों की एक अलगशृंखला को जन्म दिया। उसशृंखला में भाषा भी अपने ढंग से बनी। उस भाषा को भी एक अलग ही नाम मिल गया--सधुक्कड़ी। सधुक्कड़ी भाषा में फिर कोई तर्क नहीं पूछता। तर्क पूछना हो तो दार्शनिकों के पास जाओ। कबीर के पास तो सत्य को पीना हो तो बैठो। कबीर को न तो किताबों का कुछ पता है। कहते हैं, मसि कागद छुओ नहीं। हाथ से ही नहीं छुआ कभी कागज और स्याही। उनके लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर। वेद-कितेब, इन दोनों का तो बहुत विरोध किया, कि दोनों को अलग करो, हटाओ। इन्हीं से बीच में बाधा बन रही है। तुम्हारे और सत्य के बीच में ये वेद और कितेब। किताब का अर्थ कुरान और बाइबिल। इनको हटा दो। शास्त्र हटा दो। और द्वार खुला है और देख लो अपनी आंख से कि नदी में आग लगी है। नदी में आग लगी है का मतलब यह होता है कि विरोधाभास मिल रहे हैं; जो नहीं होना

चाहिए वह हो रहा है। ऐसा जगत यह रहस्यमय है। इसे रहस्य-शून्य न करो। इसे तर्क की चौखटों में बिठाकर मारो मत, सुखाओ मत; इसके प्राणों को नष्ट न करो। इसलिए कबीर से आनंद मैत्रेय, निश्चित ही मुझे लगाव है। और उनके एक-एक वचन में हजार-हजार वेद और कितेब समा सकते हैं। अब यही छोटा सा वचनः पीवत रामरस लगी खुमारी! ठीक ऐसा ही नानक ने कहा हैः नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रात। ये सब एक ही जमात के फक्कड़ हैं। ये सब रिंद हैं, पियक्कड़ हैं। नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रात। यह खुमारी ऐसी है कि चढ़ी तो चढ़ी, उतरती ही नहीं फिर।
कबीर के इस वचन को, एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करना, क्योंकि कबीर बहुत शब्दों के मालिक नहीं हैं। थोड़े से शब्द हैं, इसलिए एक-एक शब्द में डुबकी लगानी जरूरी है।
पीवत रामरस लगी खुमारी! पहला शब्द तो पीना। सत्य को जानना नहीं है-- पीना है, जीना है, कंठ से उतर जाने देना है। खोपड़ी में नहीं भरना है-- प्राणों में, अंतरंग तक पहुंच जाने देना है। क्यों? क्योंकि सत्य कोई कुतूहल नहीं है, कोई जिज्ञासा नहीं है--प्यास है! और प्यास तो पीने से मिटेगी। और भूख तो भोजन से मिटेगी। लाख प्यासे आदमी के सामने बैठकर तुम जल की चर्चा करते रहो, सारा विज्ञान जल का समझा दो, यह भी बता दो कि आक्सीजन और उद्जन के परमाणुओं से मिलकर जल बनता है, एच टू ओ का फार्मूला भी पूरा का पूरा समझा दो, फिर भी क्या होगा? प्यासा कहेगा, बकवास बंद करो, मुझे प्यास लगी है। मुझे पानी दो। मुझे पानी के संबंध में नहीं जानना है। पानी के संबंध में जानकर क्या करूंगा? जानने से क्या होगा? जानने को पीऊं, खाऊं, ओढूं, क्या करूं? पानी दो, मुझे पीना है।
और ध्यान रहे कि पीने के लिए जानना जरूरी नहीं है। अगर पीने के लिए जानना जरूरी होता तो आदमी कभी का मर चुका होता, क्योंकि यह एच टू ओ का फार्मूला तो अभी-अभी इस सदी में जाना गया और आदमी तो करोड़ों साल से जी रहा है। और आदमी ही क्यों; अरे, जानवर भी पी रहे हैं, पशु भी पी रहे हैं, पक्षी भी पी रहे हैं; पशु-पक्षी ही क्यों, वृक्ष भी पी रहे हैं। बिना ही जाने! कुछ पता नहीं कि पानी का शास्त्र क्या है और पीए जा रहे हैं। देखते हो यह धांधली! कुछ होश है न हवास है। वृक्ष पी रहे हैं पानी। पी ही नहीं रहे हैं, मस्त हो रहे हैं पी-पीकर, नाच रहे हैं हवाओं में, सूरज की किरणों में। फूल खिल रहे हैं। कोई फिक्र ही किसी को पड़ी नहीं कि इस वृक्ष में फूल नहीं खिलने चाहिए, इसे पानी का रसायन भी आता नहीं। इसे अभी पानी का सूत्र भी मालूम नहीं और खिले जा रहे हो, और हंसे जा रहे हो, और सुगंध उड़ाए जा रहे हो! कुछ लाज-शर्म भी होती है! अज्ञानी होकर अज्ञानी जैसा व्यवहार करो। अज्ञानी होकर और ज्ञानी की मस्ती दिखला रहे हो!
अच्छा ही है कि प्यास का जानने से कोई संबंध नहीं, नहीं तो वृक्ष प्यासे कब के मर जाते, कब के फूल कुम्हला जाते। रातरानी में गंध न होती, जुही से सुवास न उड़ती, गुलाब न खिलते, कमल न खिलते। पशु-पक्षी मर जाते। आदमी ही न जी सकता था। जानना और अनुभव अलग-अलग बातें हैं। इसलिए पीने पर जोर है। पीवत रामरस लगी खुमारी! पीओ।
और इसीलिए कबीर, नानक, फरीद, रैदास, दादू, इनके पास एक और ही तरह का तीर्थ निर्मित हुआ। यूं तो जैनों के चौबीस तीर्थंकरों को हमने तीर्थ बनाते देखा, मगर उनके तीर्थ बड़े तर्कबद्ध हैं, बहुत तर्कबद्ध हैं। कबीर ने भी तीर्थ बनाया, मगर वह तर्कबद्ध तीर्थ नहीं है। वह तीर्थ और ही ढंग का है-- सत्संग का है।
सदगुरु के पास बैठो, डोलो, गाओ, नाचो--कभी चुप्पी में, कभी उसकी वाणी में डूबो। कभी उसके मौन को पीओ, कभी उसकी मुखरता को पीओ। कभी उसके गीत को जीओ, कभी उसके शून्य को। बैठो सत्संग में--चुप, मौन, खाली--जैसे कोई प्याली, कि वह बरसे तो तुम्हारी प्याली में जगह हो। सदगुरु तो आषाढ़ के महीने का जल से भरा हुआ मेघ है। तुम खाली हो तो भर जाओगे। नाचो, जैसे मोर नाचते हैं आषाढ़ में घिर गए मेघों को देखकर। मेघ-मल्हार उठने दो। यह और ही बात है। महावीर समझाते हैं तर्कपूर्ण ढंग से, विवाद करते हैं, खंडन-मंडन है।
कबीर के पास ये सब बातें नहीं हैं। कबीर के पास तो पियक्कड़ों की जमात है।

और पीने को क्या है? रामरस! ध्यान रखना, यहां राम से कोई प्रयोजन दशरथ के बेटे राम से नहीं है। उनका तो रस कैसे बनाओगे? उसमें तो आदमखोर हो जाओगे। उसमें तो बहुत झंझट होगी। अब दशरथ के बेटे रामचंद्र जी को घिस-घिसकर क्या कोई भांग बनाओगे, कि चाय बनाओगे, काफी बनाओगे, क्या करोगे? दशरथ के बेटे राम से कोई प्रयोजन नहीं है। यहां रामरस से तो अर्थ है, वह जो परम सत्य है। उसके लिए एक नाम--राम। कोई भी नाम दे दो, सब नाम उसके। राम कहो, रहीम कहो, रहमान कहो--सब नाम उसके। कोई भी नाम दे दो। क्योंकि वह तो अनाम है। सब नाम कामचलाऊ हैं।
और वह रस है। ठीक वही सूत्र उपनिषदों का, जो परमात्मा की व्याख्या करता है--रसो वै सः! वह रस है। रस का अर्थ ही होता है कि एक बूंद भी उतर जाए भीतर तो प्यास सदा को बुझ जाए। इस रस को भीतर उतारने की कला को ही हमने इस देश में रसायन कहा था। अब तो बड़ी गड़बड़ हो गई है। अब तो कैमिस्ट्री का अनुवाद रसायनशास्त्र हो गया। रसायन बड़ा प्यारा शब्द था; उसका बड़ा आध्यात्मिक मूल्य था। कैमिस्ट्री को रसायन न कहो तो अच्छा। अल्केमी का नाम था रसायन। रसायन का अर्थ थाः सत्संग, जहां रस पकता है, जहां रस झरता है, जहां रस पीया जाता है। पीवत रामरस लगी खुमारी!
और खुमारी शब्द बड़ा गहरा है। खुमारी का अर्थ होता है--न तो बेहोशी, न होश; दोनों और दोनों नहीं। कुछ-कुछ होश, कुछ-कुछ बेहोशी; दोनों का मिलन जहां हो रहा है। वह संध्याकाल, जहां दिन मिलते हैं और रात मिलती है। न कह सकते हो दिन है, न कह सकते हो रात है। ऐसी ही एक भीतर अवस्था है। जब एक तरफ से देखो तो लगता है खुमारी है। डोलते देखोगे, मस्त होते देखोगे। दूसरी तरफ से देखोगे तो पाओगे सब थिर है, स्थितप्रज्ञ को पाओगे। एक तरफ मीरा का नाच है और एक तरफ बुद्ध का मौन है। ये दोनों जहां मिल गए हैं, उसका नाम खुमारी। बुद्ध से पूछोगे खुमारी, तो बुद्ध कुछ उत्तर न दे सकेंगे, बुद्ध चुप
रह जाएंगे। उनके तर्कशास्त्र में खुमारी न जमेगी। बुद्ध तो सिर्फ होश की बात करेंगे--जागृति, स्मृति। महावीर भी विवेक की बात करेंगे, बोध की बात करेंगे; जैसे कृष्णमूर्ति अवेयरनेस की बात करते हैं, खुमारी की बात नहीं कर सकते। कृष्णमूर्ति वही बुद्ध और महावीर की परंपरा के अंग हैं, उसीशृंखला के। लाख इनकार करें, इनकार करने से क्या होता है? असल में इतना इनकार करते हैं, उससे ही जाहिर होता है कि कहीं न कहीं उनको डर लगा ही हुआ है कि कहीं मैं भी उसीशृंखला में न गिन लिया जाऊं। वह भय ही बता रहा है। लेकिन बात इतनी साफ है।
बुद्ध जिसको सम्मासति कहते हैं, सम्यक स्मृति और महावीर जिसको विवेक कहते हैं और गुरजिएफ ने जिसको सेल्फ-रिमेम्बरिंग, आत्मस्मरण कहा है, कृष्णमूर्ति उसी को अवेयरनेस कहते हैं। इसमें कुछ भेद नहीं है, शब्दों का ही भेद है। मगर इनमें खुमारी कहीं भी नहीं आती। हां, खुमारी की बात मीरा करती है, सहजो करती है, उमर खय्याम करता है, अलहिल्लाज करता है, सरमद करता है। लेकिन वे सिर्फ खुमारी की बात करते हैं; उनके पास फिर होश का कोई सवाल नहीं। कबीर वही अदभुत समागम हैं जो खुमारी की बात करते हैं; बेहोशी की नहीं, होश की भी नहीं; दोनों के बीच का संध्याकाल, जहां होश और बेहोशी मिलते हैं--ऐसे मिलते हैं कि होश बेहोश हो जाता है, बेहोशी होश हो जाती है। उस घड़ी का नाम खुमारी है। खुमारी बड़ी अदभुत दशा है--डोल भी रहे मस्ती में और जागे भी; नाच भी रहे और जागे भी।
गीत को उठने दो और साज को छिड़ जाने दो।
चुप्पी को छूने दो लफ्जों के नर्म तारों को
और लफ्जों को चुप्पी की गजल गाने दो।
खोल दो खिड़कियां सब, और उठा दो पर्दे
नई हवा को जरा बंद घर में आने दो।
छत से है झांक रही, कब से चांदनी की परी दीया बुझा दो, आंगन में उतर आने दो।
फिजां में छाने लगी है बहार की रंगत जुही को खिलने दो, चंपा को महक जाने दो।
जरा सम्हलने दो मीरा की थिरकती पायल

जरा गौतम के सधे पांव बहक जाने दो।
हंसते ओंठों को जरा चखने दो अश्कों की नमी और नम आंखों को जरा फिर से मुस्कुराने दो।
दिल की बातें अभी झरने दो हरसिंगारों-सी बिना बातों के कभी आंख को भर आने दो।
रात को कहने दो, कलियों से राज की बातें गुलों के ओंठों से उन राजों को खुल जाने दो।
जरा जमीं को अब उठने दो अपने पांवों पर
जरा आकाश की बांहों को भी झुक जाने दो।
कभी मंदिर से भी उठने दो अजान की आवाज
कभी मस्जिद की घंटियों को भी बज जाने दो।
पिंजरे के तोतों को दोहराने दो झूठी बातें अपनी मैना को तो पर खोल चहचहाने दो।
उनको करने दो मुर्दा रस्मों की बरबादी का गम हमें नई जमीन, नया आसमां बनाने दो।
एक दिन उनको उठा लेंगे इन सर-आंखों पर
आज जरा खुद के तो पांवों को सम्हल जाने दो।
जरा सागर को बरसने दो बन कर बादल
और बादल की नदी सागर में खो जाने दो।
जरा चंदा की नर्म धूप में सेंकने दो बदन जरा सूरज की चांदनी में भीग जाने दो।
उसको खोने दो, जो कि पास कभी था ही नहीं जिसको खोया ही नहीं, उसको फिर से पाने दो।
अरे, हां-हां हुए हम, लोगों के लिए दीवाने
अब लोगों को भी कुछ होश में आ जाने दो।
ये है सच कि बहुत कड़वी है मय इस साकी की
रंग लाएगी, गर सांसों में उतर जाने दो।
छलकेंगे जाम जब छाएगी खुमारी घटा
जरा मयख्वारों के पैमानों को तो सम्हल जाने दो।
जरा साकी के तेवर तो बदल जाने दो।
न रहे मयखाना, न मयख्वार, न साकी, न शराब
नशे को ऐसी भी इक हद से गुजर जाने दो।
उसको गाने दो, अपना गीत मेरे ओंठों से
और मुझे उसके सन्नाटे को गुनगुनाने दो।
जरा सम्हलने दो मीरा की थिरकती पायल
जरा गौतम के सधे पांव बहक जाने दो।
गीत को उठने दो और साज को छिड़ जाने दो।।
वह घड़ी, वह संध्याकाल--जहां मीरा होश में आ जाती है और जहां बुद्ध नाचने लगते हैं, उसका नाम है--खुमारी। पीवत रामरस लगी खुमारी!
आनंद मैत्रेय, और निश्चय ही यह अनुभव चाहो तो कहो निर्वाण, चाहो तो कहो ब्रह्मानुभव, मगर एक बात तय है कि यह परममद है।
परममद का अर्थ होता है जिसे पीया तो पीया; जो चढ़ा तो चढ़ा, जो फिर उतरने
का नाम नहीं लेता। जो उतर-उतर जाए वह भी क्या पीने योग्य है! शराब ही पीनी हो तो ऐसी पीनी चाहिए कि फिर उतरे नहीं। बार-बार उतर जाए, फिर-फिर पीनी पड़े और उतर-उतर जाए... ।
यही तो हमारे जीवन की शैली बन गई। कितनी बार जन्मे, कितनी बार वही काम किए, कितनी बार हारे, कितनी बार जीत की आकांक्षाएं लेकर चले, कितनी आशाएं और कितनी बार निराशाएं--फिर वही, फिर वही। एक चक्कर है। कोल्हू के बैल की तरह घूमते चले जाते हैं। रोज-रोज पीते हो, रोज-रोज उतर जाता है। रोज-रोज चढ़ाते हो रंग, रोज-रोज ढल जाता है। रोज-रोज बनाते हो, रोज-रोज मिट जाता है। ये ताश के पत्ते, और कब तक इनसे महल बनाने हैं? ये कागज की नावें और कब तक चलानी हैं? कुछ ऐसा पीओ कि फिर उतरे ही नहीं। वही परममद है।

नाम उसे तुम जो देना चाहो--ब्रह्मानुभव कहो, भागवत-अनुभव कहो, बुद्धत्व कहो--ये सब नामों के भेद हैं। नामों में बहुत उलझना मत। यह बुद्धि नामों में उलझ जाती है, अटक जाती है। तुम तो पीओ। तुम तो कंठ की सुनो। तुम तो प्राणों की भाषा समझो।
मेरे पास जो निर्मित हो रहा है, यह कोई मंदिर नहीं, मयखाना है, मयकदा है। और मेरे पास जो आ गए हैं, ये कोई साधारण तथाकथित धार्मिक लोग नहीं। ये रिंद हैं। ये पियक्कड़ हैं। ये परवाने हैं। और इसलिए बहुत मेरे साथ तुम्हारी भी निंदा होगी। मेरे साथ तुम पर भी बहुत गालियां बरसेंगी। यह पीने वालों का हमेशा का भाग्य रहा। इसे बदला नहीं जा सकता है। भीड़ ने सदा मस्तों के साथ यही दुर्व्यवहार किया है और भीड़ यही दुर्व्यवहार जारी रखेगी। मगर पीने का मजा ऐसा है कि कौन फिक्र करता है।
सरमद ने चिल्लाकर कहा था कि मैं परमात्मा हूं। मुल्लाओं ने, मौलवियों
ने साजिश की, सरमद को झुकाने की कोशिश की। धमकी दी कि सिर काट देंगे। सरमद ने कहा, सिर काटो तो काटो, मेरा कुछ भी न काट पाओगे। और मैं तुमसे यह कहे देता हूं, मेरा कटा हुआ सिर भी यही चिल्लाएगा कि मैं परमात्मा हूं। कटने से भी कुछ फर्क न पड़ेगा। मैं फिर भी आवाज दिए जाऊंगा।
और यही हुआ। दिल्ली की जामा-मस्जिद में सरमद का सिर काटा गया। और जब सिर उसका सीढ़ियों पर गिरा मस्जिद की और सीढ़ियों से लुढ़का, तो हर सीढ़ी पर ठहरा और चिल्लाया कि मैं परमात्मा हूं! अनलहक! अहं ब्रह्मास्मि! यह शायद कहानी ही होगी, लेकिन कभी-कभी कहानियां सत्यों से भी ज्यादा सत्य होती हैं।
दीवाने मिट जाते हैं, फिर भी उनकी आवाज नहीं मिटती। दीवाने मिट जाते हैं, फिर भी उनकी दीवानगी नहीं मिटती। मस्तों को मिटाने का कोई उपाय ही नहीं है।
यह जमात मस्तों की है। और यहां तुम इकट्ठे हुए हो तो इसीलिए, कि रामरस
पी लो, कि खुमारी लग जाए। नाचो और भीतर थिरता भी बने। भीतर तो स्थितप्रज्ञ की अवस्था हो और बाहर परवाने का नृत्य। देखा है परवाने को नाचते शमा के चारों तरफ? तुम्हारे भीतर की चेतना तो शमा बन जाए--एक अखंड ज्योति, अकंपित। और तुम्हारा पूरा जीवन उसके चारों तरफ एक नृत्य बन जाए। इस नृत्य के और जागरण के मिलन का नाम खुमारी है। मेरे हिसाब में खुमारी में समस्त धर्म का सार आ जाता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, प्रायः सभी धर्मों में व्यक्ति के रूप में ईश्वर
की धारणा क्यों बनी? ईसाई तो व्यक्तिगत ईश्वर की बात करते हैं। आप क्यों कहते हैं कि वह व्यक्ति नहीं उपस्थिति है?

निखिलानंद, उनने जिन्होंने जाना है, उन्होंने यही कहा है जो मैं कह रहा हूं। इससे अन्यथा जानने वाले कह ही नहीं सकते। लेकिन धर्म को जानने वाले और धर्मों को बनाने वाले लोग अलग-अलग होते हैं। बुद्ध जानते हैं, बनाते तो हैं पंडित। महावीर जानते हैं, बनाते तो हैं पंडित। जो जानता है वह कोई और; जो बनाता है वह कोई और। जो जानता है उसने बनाया नहीं; जो नहीं जानता है उसने बनाया है। और इसलिए सारी विकृति हो गई है।
फिर, जिसने नहीं जाना और बनाया है, उसके बनाने के अपने प्रयोजन हैं; उसने धर्म को भी शोषण का आधार बना लिया। और अगर धर्म के आधार पर शोषण करना हो तो ईश्वर की व्यक्तिगत धारणा जरूरी है, क्योंकि बिना ईश्वर को व्यक्ति की तरह माने किसकी पूजा, किसका पाठ; किसके यज्ञ, किसके हवन; किसके मंदिर, किसकी मूर्तियां; किसकी मस्जिदें, किसके गिरजे? पंडित का सारा काम ही समाप्त हो जाता है। मौलवी की कोई जरूरत नहीं रह जाती। पुरोहित विदा हो जाता है। ये सारे एजेंट और दलाल, इनका कोई स्थान नहीं बचता। ईश्वर व्यक्ति हो तो इन सबकी जरूरत रह जाती है।
अगर ईश्वर व्यक्ति है और केवल संस्कृत भाषा ही बोलता है--क्योंकि वही दिव्यवाणी है, बाकी तो सब मनुष्य की भाषाएं हैं! तुम सोच भी सकते हो कि ब्राह्मण मान ले कि ईश्वर और हिब्रू बोलता है! संस्कृत बोलता है--संस्कृत

भी वैदिक संस्कृत! और निश्चित ही वैदिक संस्कृत को जानने वाला ही कोई मध्यस्थ हो सकता है। किसी न किसी को बीच में भाषांतर का काम करना पड़ेगा न! और इसलिए स्वभावतः ब्राह्मणों ने कहा कि शूद्र को तो हक ही नहीं है कि वह वेदों को पढ़े। तो समाज का करीब-करीब आधा हिस्सा, पचास प्रतिशत लोग तो उन्होंने वंचित कर दिए। वैश्यों को भी क्या समझ हो सकती है वेदों की! तुम धंधा करो, दुकान करो। तुम दुनियादारी की बात करो। उस परलोक का तुम्हें क्या पता हो सकता है! तो और एक चौथाई हिस्सा समाप्त हो गया। फिर क्षत्रियों को कहा कि तुम्हारा काम है युद्ध, वही तुम्हारा धर्म। अपना- अपना धर्म पालन करो। बचा ब्राह्मण; उसका ठेका हो गया। वही मध्यस्थ का काम करेगा। वही पूजा करेगा, प्रार्थना करेगा, पौरोहित्य करेगा।
और स्वभावतः व्यक्तिगत ईश्वर हो तो ही यह सारा काम चल सकता है। अगर भगवान नहीं है, भगवत्ता है तो बात बदल जाएगी। फिर वहां कोई है ही नहीं, भाषा का सवाल नहीं। और यहूदी कहते हैं, वह हिब्रू ही जानता है। और मुसलमान कहते हैं, वह अरबी ही जानता है। और हर भाषा के, और हर धर्मों के ठेकेदार हैं। और उन ठेकेदारों ने यह सारा आयोजन किया है, निखिलानंद। ईश्वर को जानने वालों ने नहीं, ईश्वर के नाम का शोषण करने वालों ने। और जितना शोषण धर्म के नाम पर हुआ है उतना किसी और चीज के नाम पर नहीं हुआ। धर्म के नाम पर बड़ी तरकीबों से शोषण किया जा सकता है। धार्मिक व्यक्ति बड़े कुशल हो जाते हैं शोषण करने में।
दादा चूहड़मल फूहड़मल दूध की दुकान में गए। बोले, भाई, कैसे लिटर दूध? दुकानदार बोला, दादा, तीन रुपया फीका, चार रुपया मीठा।
दादा बोले, क्या? चार रुपया मीठा!
दुकानदार बोला, दादा, शक्कर देख रहे हो, सोलह रुपए किलो!
दादा बोले, अच्छा भाई, एक पाव मीठा दूध दे दो।
दुकानदार ने दूध दिया। दादा पीने के बाद बोले, इसमें तो शक्कर थी ही नहीं। अब पी गए, तो अब तो कोई प्रमाण बचा नहीं। धार्मिक आदमी का अपना गणित है। अब मुझे शक्कर दो। शक्कर ऊपर से खा लूंगा।
दुकानदार चौंका। लेकिन अब करे भी क्या! और भीड़ इकट्ठी हो गई और लोगों
ने कहा कि साईं झूठ थोड़े ही बोलेंगे। अरे, बड़े धार्मिक गुरु हैं! क्या थोड़ी-सी शक्कर के पीछे झूठ बोलेंगे? दे शक्कर।
भीड़-भाड़ और बाजार का मामला, अपनी बेइज्जती न करवाने के लिए बेचारे ने शक्कर दी। दादा ने शक्कर खाई और शक्कर खाकर लुढ़कने लगे। कुलाटी खाने लगे। तरह-तरह के आसनादि करने लगे। भीड़ और इकट्ठी हो गई। खासा सर्कस दादा ने खड़ा कर दिया। धार्मिक आदमी जो न करे थोड़ा! दुकानदार बहुत घबड़ाया। बोला कि साईं, अब क्या हुआ। अब क्या चाहिए, बाबा बोलो!
दादा कुछ बोलें ही नहीं। वे तो कुलाटे पर कुलाटे खाते जा रहे। दुकानदार ने सोचा कि शायद मेरे दूध में कुछ गड़बड़ी है। उसने सारा दूध फिंकवा दिया। और भी जो दुकानदार उसका दूध बेचते थे, उन्होंने भी सारा दूध फेंक दिया। जब सब दूध फेंक चुके तो दादा उठकर बोले, मेरे पैसे वापस कर। किसी की जान लेगा? अभी पुलिस में जाकर रिपोर्ट करता हूं।
सो उसने घबड़ाहट में उनके पैसे भी दे दिए और फिर बोला कि साईं, अब यह तो बताओ कि आपको आखिर हो क्या गया था? क्योंकि जिंदगी मुझे दूध बेचते हो गई, मेरे बाप-दादे दूध बेचते थे, उनके बाप-दादे भी दूध बेचते थे, लेकिन दूध ने कभी ऐसा कार्य करके नहीं दिखाया। हुआ क्या?
शीर्षासन और तरह-तरह के आसन इत्यादि जितने भी योगासन जानते थे दादा
ने सब करके दिखा दिए। कुछ और अपने भी जोड़ दिए। उसने कहा कि दूध में कोई खराबी रही होगी, मानता हूं। शक्कर में कोई खराबी रही होगी, मानता हूं। मगर ऐसी खराबी न सुनी कभी, न कभी देखी। अरे, आदमी बीमार हो जाए, वमन हो जाए। मगर ये इस तरह की कुलाटियां और यह सर्कस! सच कहना साईं आपको क्या हो गया था? दादा हंसते हुए बोले, हुआ क्या था, अरे, मैं तो दूध में शक्कर मिला रहा था।
दादाओं ने धर्म खड़े किए हैं--बड़े गुरुघंटालों ने।

दादा चूहड़मल फूहड़मल अपने भक्तों के साथ एक बूढ़ी अमीर महिला को लूटने
के लिए एक ट्राली एक ट्रेक्टर के पीछे बांधकर ले गए। उस महिला का सब मूल्यवान सामान ट्राली में डाला, तो महिला ने शोर मचाना शुरू किया। दादा ने उस महिला को भी उठाकर ट्राली में बिठा दिया। महिला चिल्लाने लगी कि मैं तो लुट गई, कि मैं तो मर गई! तब दादा और उसके भक्त हारमोनियम-तबले वगैरह के साथ कहने लगे कि बुढ़िया सच कहती है, कि बुढ़िया सच कहती है! रास्ते भर वह रोती रही, चिल्लाती रही कि मैं तो लुट गई, कि मैं तो मर गई! और दादा और उसके भक्त ताल में गाते रहे कि बुढ़िया सच कहती है! रास्ते में खड़े हुए लोग हंसते, पुलिस वाले हंसते। और कहते कि भई बुढ़िया सच कहती है। अरे, दुनिया में सभी लुट रहे हैं! बुढ़िया और जोर-जोर से चिल्लाती कि बचाओ, मैं लुट गई! मगर दादा का भजन और भक्तों की धुन। सभी लोग कहते कि वाह, क्या कीर्तन-मंडली है!
इसको कहते हैं धार्मिक डाका। धर्म के नाम पर धार्मिक डाके पड़ते रहे हैं।
निखिलानंद, सभी धर्मों में व्यक्ति के रूप में ईश्वर की धारणा इसलिए बनी कि पंडित-पुरोहित, मौलवी-मुल्ला, पादरी-पोप, वह ईश्वर की व्यक्तिगत धारणा के बिना जी नहीं सकता। लेकिन जिन्होंने जाना है, उन्होंने परमात्मा को व्यक्ति नहीं कहा है, अनुभूति कहा है; सत्य कहा है; चैतन्य का परम शिखर कहा है; भगवत्ता की प्रतीति कहा है। लेकिन भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, जिसने दुनिया बनाई हो, जो दुनिया को चला रहा हो, जो यह सब गोरखधंधा कर रहा हो। यह तुम्हारी ही चेतना का समाधिस्थ रूप है। तुम्हारी ही चेतना जब मन से मुक्त हो जाती है, विचार से शून्य हो जाती है, जब तुम्हारे भीतर ही सारे अंधड़-तूफान आने बंद हो जाते हैं, जब तुम्हारे चित्त की झील बिल्कुल ही तरंग-रहित हो जाती है, जब तुम एक दर्पण बन जाते हो, तब तुम्हारे भीतर जो अनुभव होता है वही अनुभव परमात्मा है, भगवान है। लेकिन अच्छा हो कि हम भगवत्ता शब्द का उपयोग करें।
इसलिए मैं कहता हूं कि ईश्वर व्यक्ति नहीं, उपस्थिति है। जब तुम खुमारी में डूब जाओगे तो जानोगे।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मा विपस्सना व स्वामी चिन्मय ने मृत्यु के पूर्व छठवें चक्र तक यात्रा कर ली। तथा स्वामी देवतीर्थ भारती और अभी कल ही स्वामी आनंद विमलकीर्ति अपनी मृत्यु से पहले परमबोधि को उपलब्ध हुए। ओशो, क्या मृत्यु में बुद्धत्व की घटना जीवन में जागरण से आसान है? समझाने की अनुकंपा करें। अब तो कबीरदास की यह साखी ही हम सब संन्यासियों की अभीप्सा है--
जिस मरने से जग डरै मेरो मन आनंद।
कब मरिहौं कब भेटिहौं पूरन परमानंद।।

जीवन में जागना तभी संभव है जब जीवित अवस्था में ही तुम्हें मृत्यु
का बोध स्पष्ट हो जाए। जागरण तो हमेशा मृत्यु के कारण ही होता है, जीवन में हो या मृत्यु में हो। जब तुम्हें दिखाई पड़ने लगता है कि यह जीवन हमारा चारों तरफ मृत्यु से घिरा है, अब गया तब गया। देर-अबेर की बात है, मौत आई ही है। हम पंक्तिबद्ध खड़े हैं। एक-एक व्यक्ति खिसकता जा रहा है, पंक्ति छोटी होती जा रही है, क्यू छोटा होता जा रहा है। हम मौत के दरवाजे के करीब पहुंचते जा रहे हैं।
हर जन्मदिन पर तुम्हें जन्मदिन नहीं मृत्युदिन मनाना चाहिए, क्योंकि
एक साल और जिंदगी से कम हो गया। जन्मने के बाद बच्चा एकदम मरना शुरू हो जाता है, तत्क्षण, क्योंकि एक-एक पल जीवन छंटने लगा और बूंद, बूंद चुकते- चुकते पूरी गागर खाली हो जाती है। गागर क्या, सागर भी खाली हो जाता है। जिनको इतना बोध है, जिनके भीतर इतनी तीक्ष्ण प्रतिभा है कि वे जीवन में ही मृत्यु को छुपा देख लेते हैं, वे तो जीवन में ही जागते हैं। और अगर इसमें थोड़ी देर-अबेर लग गई तो मृत्यु के क्षण में एक परम अवसर मिलता है।

मगर वह भी तभी मिल सकता है जब जीवन में थोड़ा-बहुत ध्यान का प्रयोग किया हो। अगर बिल्कुल प्रयोग न किया हो तो वह नहीं मिलेगा।
मृत्यु दो तरह से घटती है--ध्यानी की और गैर-ध्यानी की। गैर-ध्यानी तो मृत्यु के पहले ही बेहोश हो जाता है। इसलिए बेहोशी में ही मरता है। लेकिन ध्यानी, जिसने थोड़ा भी ध्यान साधा हो, मृत्यु में भी ध्यान की उतनी बारीक किरण को बचा पाता है। और उसी बारीक किरण के कारण उसे फासला साफ हो जाता है कि शरीर मर रहा है, मन मर रहा है; मैं नहीं मर रहा हूं। और जैसे ही यह अनुभव हुआ कि मैं नहीं मर रहा हूं, कि निर्वाण उपलब्ध हो गया, कि शाश्वतता मिल गई, कि अमृत का अनुभव हो गया।
रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है।।
यह संसार झाड़ और झांखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।।
लेकिन यह अनुभव जीते-जी जरा मुश्किल। बचपन में होश कहां! बचपन में तो खिलौने उलझा लेते हैं। फिर जवानी आई तो खिलौने बदल जाते हैं, मगर खेल जारी रहता है। छोटे बच्चे गुड़ियों से खेलते हैं, गुड्डा-गुड़ियों के विवाह रचाते हैं। जवान अपने विवाह रचाने लगते हैं। वही गुड्डा-गुड़ियों का खेल है, जरा पैमाना बड़ा हुआ।
आंख बेवजह भी हो जाती है नम, क्या की
जैमुफ्त बदनाम हुए उनके सितम, क्या की
जै यूं तो सर्मा-ए-जां है मुझे यारों का खुलूस
दिल दुखा जाती है हर सअई-ए-करम, क्या की
जैरक्स में कौस बनाती हुई बाहों की तरह
मंजिलों से भी हसीन राह के खम, क्या की
जैछू गई प्यार से हर दर्द की साअत दिल को
और दुनिया से तकाजाए-करम, क्या की
जैचंद लम्हों को सही, आ तो गया दिल में मलाल खुल गया दावा-ए-तम्कीं का भरम, क्या की जैकौन पा सकता हम आवारा-मिजाजों का सुराग दास्तां लिखते गए नक्शे-कदम, क्या की जैहसरते-दीद की तस्कीन का सामान कहां पत्थरों में अभी सोते हैं सनम, क्या की
जै इत्तिफाकाते-जमाना हैं, खिजां हो कि बहार
जो गुजरना है गुजर जाएगी, गम क्या की
जैदफअतन जल उठे "ताबां" कई यादों के चिराग
आज फिर जीत गई शामे-अलम, क्या की
जैआंख बेवजह भी हो जाती है नम, क्या की
जैमुफ्त बदनाम हुए उनके सितम, क्या कीजै
जिंदगी सब दृश्य दिखाती है, चुनाव हम पर है। कांटे भी और फूल भी और दिन
भी और रातें भी। सुख भी और दुख भी। जिंदगी सब लाती है। लेकिन चुनाव हम पर निर्भर है। देखने की क्षमता हम पर निर्भर है। पहचानना हमें है। यूं तो हीरे भी पत्थर हैं, जो पहचान ले। और नहीं तो पत्थर भी हीरे मालूम हो सकते हैं; जो न पहचाने। पारखी की नजर चाहिए।
रक्स में कौस बनाती हुई बाहों की तरहमंजिलों से भी हसीन राह के खम, क्या कीजै
मंजिलों की तो बात छोड़ो, रास्ते के मोड़ ही इतने प्यारे लगते हैं कि उन्हीं में उलझ जाते हैं।
रक्स में कौस बनाती हुई बाहों की तरह
जैसे नाच में बाहों ने इंद्रधनुष बनाए हों।
मंजिलों से भी हसीन राह के खम, क्या कीजै
राह की उलझनें ही, राह के मोड़ ही ऐसे प्यारे लगते हैं, ऐसे घुमावदार,
हम वहीं भटक जाते हैं। समझा-बुझा लेते हैं अपने को।

इत्तिफाकाते-जमाना हैं, खिजां हो कि बहार
सब संयोग की बात है--समझा लेते हैं अपने को। नदी-नाव संयोग। इत्तिफाकाते-जमाना हैं, खिजां हो कि बहार
फिर बहार आए कि पतझड़ सब संयोग है।
जो गुजरना है गुजर जाएगी, गम क्या कीजै
समझाते रहते हैं कि जो गुजरना है गुजर जाएगी। जो गुजरना है वह तो जरूर गुजर जाएगी, मगर तुम तो जाग जाओ, तुम तो न गुजरो, तुम तो उसके साथ न बह जाओ। जिंदगी में वही अवसर तुम्हें हैं, जो कबीर को, जो नानक को, जो बुद्ध को,
जो महावीर को, वही अवसर सभी को हैं। मगर हर व्यक्ति अपने-अपने होश के हिसाब से चुन लेता है। बच्चों से तो आशा नहीं की जा सकती। जवान बहुत महत्वाकांक्षाओं से भरे होते हैं। लेकिन हैरानी तो यह होती है कि बूढ़े भी वही गोरखधंधा, वही बेवकूफियां, वही जमानेभर के उलटे-सीधे काम। मरते-मरते दम तक लोग जरा भी साधते नहीं स्वयं को। तो फिर मौत आती है, बेहोशी लाती है। लेकिन शैलेंद्र, अगर ध्यान की गति बनती रहे तो मौत परम अवसर है, महाअवसर है, क्योंकि मौत आखिरी मौका है। जिंदगीभर अगर ध्यान की थोड़ी सी भी धारा भीतर सघन होती रहे तो मौत में जाकर प्रगाढ़ हो उठती है, प्रज्वलित हो उठती है। वह जो टिमटिमाते दीए की तरह जलती थी; मौत में भभक उठती है, जंगल की आग हो जाती है। और मृत्यु के क्षण में अगर होश बना रहे तो मुक्ति सुनिश्चित है, निर्वाण सुनिश्चित है।
जीवन से भी ज्यादा बड़ा अवसर मृत्यु है। मगर मृत्यु तभी अवसर है, जब तुमने जीवन का थोड़ा सा, कम से कम थोड़ा सा, एक अंश भी ध्यान के लिए समर्पित किया हो। तो फिर मृत्यु भी मृत्यु नहीं है; सिर्फ अमृत का द्वार है।
अपने को थोड़ा-थोड़ा उलझावों से बाहर करो। तर्क न खोजो। उलझाव के लिए बहुत तर्क हैं।
यकीं को वहम, हकीकत को ख्वाब कैसे कहूं
जश्ने-शौक को मौजे-सराब कैसे कहूं
हजार कुर्बतें जिसमें हों, ऐसी दूरी को
गुरेज कैसे कहूं, इज्तिनाब कैसे कहूं
खिले हुए हों जहां सौ चमन जराहत के
वो मेरा दिल ही सही, मैं खराब कैसे कहूं हजार निस्बतें पिन्हां सही, मगर फिर भी तेरी जफा को तिरा इज्तिराब कैसे कहूं मिरा बुजूद मुजस्सम सवाल है लेकिन
जमाना देगा मुझे क्या जबाव, कैसे कहूं
मता-ए-शौक से खाली है मदरिसा "ताबां"
जुनूं के दर्स को दर्से-किताब कैसे कहूं
समझाए चले जाते हैं।
यकीं को वहम, हकीकत को ख्वाब कैसे कहूं
इस यथार्थ को सपना कैसे कहें? मगर यह सपना है, क्योंकि एक दिन नहीं था
और एक दिन फिर नहीं हो जाएगा। सपने का और क्या अर्थ होता है? कहो या न कहो। सपने का अर्थ होता है--जो अभी है, अभी नहीं है; अभी नहीं था, फिर नहीं हो जाएगा। लेकिन समझाना चाहो अपने को तो समझा सकते हो।
यकीं को वहम, हकीकत को ख्वाब कैसे कहूंजश्ने-शौक को मौजे-सराब कैसे कहूं
यह आकांक्षाओं के संसार को मृग-मरीचिका कैसे कहूं? यह इतना प्यारा संसार, ये इतने प्यारे सपने, ये इतनी प्यारी आकांक्षाएं, ये इतने मीठे- मीठे खयाल!
जश्ने-शौक को मौजे-सराब कैसे कहूं
यकीं को वहम, हकीकत को ख्वाब कैसे कहूं
हजार कुर्बतें जिसमें हों, ऐसी दूरी को
गुरेज कैसे कहूं, इज्तिनाब कैसे कहूं
कैसे कहूं विरक्ति, कैसे कहूं पलायन? खिले हुए हों जहां सौ चमन जराहत के

वो मेरा दिल ही सही, मैं खराब कैसे कहूं हजार निस्बतें पिन्हां सही, मगर फिर भी तेरी जफा को तिरा इज्तिराब कैसे कहूं मिरा बुजूद मुजस्सम सवाल है लेकिन
मेरा अस्तित्व एक साकार प्रश्न है।
मिरा बुजूद मुजस्सम सवाल है लेकि
नजमाना देगा मुझे क्या जबाव, कैसे कहूं मता-ए-शौक से खाली है मदरिसा "ताबां" प्रेमरूपी पूंजी से यह पाठशाला तो खाली है।
मता-ए-शौक से खाली है मदरिसा "ताबां"
जुनूं के दर्स को...
उन्माद को, पागलपन को...
जुनूं के दर्स को दर्से-किताब कैसे कहूं
पुस्तक का पाठ कैसे कहूं?
बस यूं अपने को समझाता रहता है आदमी। जो अपने को यूं समझाता रहता है, उसको तो कबीर पागल मालूम पड़ेंगे; उसे बुद्ध तो बुद्धू मालूम पड़े। उसे तो यह दीवाने भटक गए हुए लोग मालूम पड़े। उसे तो जहां धन कमाया जा रहा है, पद कमाया जा रहा है, जहां प्रतिष्ठा कमाई जा रही, वहां ही सारा प्राण अटका हुआ मालूम पड़ता है।
जिंदगी में वहम बहुत हैं। जिंदगी में मृग-मरीचिकाएं बहुत हैं उलझाए रखने को। मौत में तो सब बंद हो जाता है, पूर्णविराम आ जाता है। अब आशाओं को कहां ले जाओ, आकांक्षाओं को कहां दौड़ाओ? अब कैसी दुकान, अब कैसा धन, कैसा पद? अगर जरा सा ध्यान सधा रहा हो तो मृत्यु के क्षण में उसी ध्यान का बांध बंध जाता है, क्योंकि आगे जाने को कोई उपाय न रहा। आगे तो द्वार बंद हो गया। बांध बंध गया। और बांध तो, छोटा सा भी झरना अगर ध्यान का बांध पर आ जाए, तो बड़ी झील बन जाती है। वही झील मुक्ति का कारण हो सकती है, महापरिनिर्वाण बन सकती है।
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
दूसरा प्रवचन

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः

पहला प्रश्नः ओशो, महाभारत का यह सूत्र बिल्कुल आपके दर्शन से मिलता हुआ मालूम पड़ता है--
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः,
न तु धूमायितं चिरम्।
"मुहूर्त भर जलना श्रेयस्कर है, बहुत समय तक धुआंना नहीं।"
यह कैसे संभव है, यह समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद, यह सूत्र निश्चित ही मेरी जीवन-दृष्टि को एक अत्यंत संक्षिप्त संकेत में रूपांतरित कर देता है। जीवन है त्वरा का नाम, तीव्रता का नाम, सघनता का नाम। जैसे कोई धूप की किरणों को इकट्ठा कर ले, एकाग्र कर ले तो तत्क्षण आग प्रज्वलित हो जाती है। वे ही किरणें बिखरकर पड़ती हैं तो सिर्फ कुनकुनापन देती हैं; वे ही इकट्ठी हो जाती हैं तो प्रज्वलित अग्नि पैदा हो जाती है।
जीवन भी दो ढंग से जीया जा सकता हैः बिखरा-बिखरा, खंड-खंड, थोड़ा-थोड़ा, हिसाब-किताब से, गणित के ढंग और रवैए से; और जीवन यूं भी जीया जा सकता है-- सघनता से, प्रगाढ़ता से। या तो न्यूनतम ढंग से कोई जीए और या परिपूर्णतम ढंग से। जैसे सौ डिग्री पर पानी वाष्पीभूत हो जाता है, ऐसी ही जीवन की भी एक सघनता है, जहां अहंकार वाष्पीभूत हो जाता है; जहां मैं और तू का मिलन हो जाता है; जहां बूंद सागर में समा जाती है या सागर बूंद में समा जाता है। लेकिन जो कुनकुने-कुनकुने जीते हैं उन्हें कभी इस बात का पता नहीं चलता। वे जान ही नहीं पाते जीवन के नृत्य को, जीवन के उत्सव को; उनकी जीवन की बगिया में कभी वसंत नहीं आता, फूल नहीं खिलते, पक्षी गीत नहीं गाते। वे ऐसे जीते हैं जैसे न भी जीते तो भी चलता। मरे-मरे जीते हैं। और कारण है उनका हिसाबी-किताबी, व्यवसायी मन। सोच-सोचकर कदम रखते हैं, फूंक-फूंककर चलते हैं; बचाव की ज्यादा फिक्र है, जीने की कम; सुरक्षा की ज्यादा चिंता है, अनुभव की कम।
सूफी कहानी है। एक सम्राट ने महल बनाया और उसमें एक ही द्वार रखा; न कोई और खिड़की, न कोई और द्वार। क्योंकि कहीं खिड़की से कोई चोर, कोई हत्यारा, किसी द्वार से कोई दुश्मन प्रवेश कर जाए। और उस महल में वह अकेला ही रहता। अपनी पत्नी को भी उस महल में प्रविष्ट नहीं होने देता था। क्या भरोसा, किसका भरोसा? इस जगत में कौन अपना है? ऐसी बड़ी ज्ञान की बातें भी करता था, लेकिन सारी ज्ञान की बातों के पीछे था भय--मृत्यु का भय। जैसे कि सब तरह से सुरक्षित हो जाओगे, न दुश्मन आ सकेगा... मित्र ही न आ सकेगा तो शत्रु को आने की तो क्या संभावना रह जाएगी? पत्नी ही न आ सकेगी, बच्चे ही न आ सकेंगे। तो क्या तुम सोचते हो मौत न आ सकेगी? मौत तो फिर भी आएगी ही आएगी। वह तो उसी दिन आ गई जिस दिन जन्म हुआ। अब उसकी क्या चिंता? वह तो उसी दिन घट गई जिस दिन पहली सांस ली। पहली सांस और आखिरी सांस में कुछ भेद नहीं। पहली ले ली तो आखिरी भी ले ही ली।
लेकिन सोच-विचार से चलने वाला आदमी था। एक दरवाजा रखा, वह भी बड़ा संकरा। बस अकेला आ सके भीतर और जा सके। और उस दरवाजे पर उसने पहरों पर पहरे बिठाए। सात पंक्तियां थीं पहरेदारों की, क्योंकि हो सकता है एक पहरेदार धोखा दे जाए; सो जाए, न दे धोखा; इधर-उधर चला जाए। तो दूसरा पहरेदार था उस पर नजर रखने को। मगर दूसरे का भी क्या भरोसा; दोनों मिल जाएं, सांठ-गांठ हो जाए, साजिश हो जाए। तो तीसरा पहरेदार था। यूं सात पंक्तियां थीं, पहरे पर पहरा था।
पड़ोसी सम्राट उसका महल देखने आया। जब उसे खबर मिली तो स्वभावतः उसको
भी उत्सुकता जगी। सुरक्षा तो ऐसी ही होनी चाहिए। आया, देखकर बहुत प्रभावित हुआ और कहा मैं भी ऐसा ही महल बनवाता हूं। और जब अपने पड़ोसी सम्राट को विदा करने इस महल का मालिक द्वार पर आया, उसे रथ में बिठा रहा था

और वह पड़ोसी सम्राट प्रशंसा किए जा रहा था उसके महल की, ऐसी सुरक्षा उसने कभी देखी न थी--तभी सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी जोर से हंसने लगा। दोनों ने चौंककर उसकी तरफ देखा और कहा--तुम क्यों हंसे?
उसने कहा, कभी मैं भी सम्राट था और कभी मैंने भी सुरक्षा के सारे आयोजन किए थे, सब व्यर्थ हो गए। और मैं तुमसे एक बात कहूं कि अगर तुम सच में ही सुरक्षा चाहते हो, पूरी सुरक्षा कि रंच मात्र भी भय न रह जाए, तो तुम महल के भीतर बंद हो जाओ और यह दरवाजा भी बाहर से चुनवा दो। फिर कोई भी भीतर न आ सकेगा। अभी तो हवा का झोंका आ जाता है, मौत इसी पर सवार होकर आ जाएगी। अभी तो सूरज की किरणें आ जाती हैं, मौत उन पर ही सवार होकर आ जाएगी। इतना और कर लो। मैं इसलिए हंसा कि तुमने सब इंतजाम तो किया, लेकिन मौत इसी दरवाजे से आ जाएगी।
वह सम्राट बोला, अगर इस दरवाजे को भी चुनवा दूं, पागल है तू, तो फिर मैं
तो जिंदा रहते ही मर गया। यह तो कब्र हो जाएगी।
वह फकीर और भी खिलखिलाकर हंसा। उसने कहा--कब्र तो यह हो ही गई, इसमें बचा क्या है? बस, एक दरवाजा। एक दरवाजा होने से कहीं कब्र निवास बनती है? निन्यानबे प्रतिशत तो कब्र हो ही गई; एक प्रतिशत बची है, उसको भी क्यों बचाते हो? और अगर इतनी तुम्हें समझ है तो और दरवाजे भी खोलो, और खिड़कियां भी खोलो; क्योंकि जितने दरवाजे होंगे, जितनी खिड़कियां होंगी, उतना जीवन होगा।
असुरक्षा में जीओ तो ही जी सकते हो। भय तो जीने नहीं देता। और भय ही हिसाब लगवाता रहता है। तो लोग इस चिंता में ज्यादा होते हैं कि ज्यादा कैसे जीएं। ज्यादा से उनका अर्थ होता है लंबाई, गहराई नहीं। और असली में ज्यादा से अर्थ होना चाहिए--गहराई।
समय के दो आयाम हैं--एक लंबाई और एक गहराई। लंबाई यूं समझो कि अ से ब, ब
से स, ऐसी पंक्तिबद्ध यात्रा। और गहराई यूं समझो कि अ से और गहरा अ। अ--एक, अ--दो, अ--तीन, अ--चार। अ में ही डुबकी। ब आता ही नहीं। गहराई अ पर ही समाप्त हो जाती है। इसीलिए तो हमने उसको अक्षर कहा है। अक्षर, मतलब जिसका कभी क्षय न हो। दुनिया की किसी भाषा में वर्णमाला को अक्षर नहीं कहा जाता, सिर्फ हमने अक्षर कहा है। अ पर ही यात्रा पूरी हो गई। बस अ की ही गहराई में जाना, ब तक जाना ही नहीं। ब तो क्षर है, स तो क्षर है।
जीसस का तुमने सूली का चित्र देखा, वह चित्र इसी बात का प्रतीक है। ईसाई तो उस प्रतीक को समझ न पाए। सूली पर जीसस लटके हुए हैं, तो उनका धड़ तो खंभे पर है और उनके हाथ दूसरे खंभे पर। दो खंभों से ही तो सूली बन जाती है।
वस्तुतः सूली का प्रतीक भारत से ही जेरूसलम तक पहुंचा, जीसस ही ले गए।
सूली का प्रतीक भारत के प्राचीनतम प्रतीक स्वस्तिक का अंग है। स्वस्तिक का बीच का अंग, उसका आधारभूत हिस्सा। बस एक लकीर खड़ी हुई और एक लकीर आड़ी। आड़ी लकीर समय की लंबाई की सूचक है और खड़ी लकीर समय की गहराई की। या यूं कहो कि आड़ी लकीर है समय और खड़ी लकीर है शाश्वतता--अक्षर।
त्वरा में जीने का अर्थ है--ऐसे जीओ कि गहराई हो कि ऊंचाई हो। गहराई हो प्रशांत महासागर जैसी, ऊंचाई हो गौरीशंकर जैसी। मगर हम यूं जीते हैं कि हमारा जीवन एक सपाट रास्ते की तरह होता है; कोलतार की बनी सीधी सड़क, न कोई ऊंचाई, न कोई निचाई। इस सपाट जीवन में कैसे तो आनंद हो? इस सपाट जीवन में कैसे तो उत्सव हो? इस कोलतार की सड़क पर कैसे तो गुलाब खिलें, कैसे तो बीज फूटें? यह कोलतार की सड़क तो एक अंत से दूसरे अंत तक फैलती चली जाती है एक जैसी। इसमें कुछ भिन्नता भी नहीं, कोई वैविध्य भी नहीं। इसमें कोई आश्चर्य से भर देने वाला अनुभव भी नहीं।
तो मेरा संदेश क्षण में जीने का है--और क्षण में इतनी परिपूर्णता से जीने का है, जैसे कि दूसरा क्षण कभी होगा ही नहीं; जैसे बस यही क्षण है। और सच में यही क्षण है, दूसरे का क्या भरोसा है? आए न आए। बस यही क्षण है। इसको ही त्वरा से जी लो, समग्रता से जी लो। मत कल के लिए स्थगित करो। मत कहो कि कल जीएंगे। मत कहो कि सांझ जीएंगे। सुबह है तो सुबह जीओ। सांझ है तो सांझ जीओ। जो हाथ में मिला है उसको पूरा का पूरा पी लो, उसमें डूब जाओ। आएगा दूसरा क्षण तो उसमें भी डूब लेंगे; नहीं आएगा तो हमारा खोता क्या है? हम इस

क्षण को पूरा जी लिए। और एक क्षण को भी जिसने पूरा जी लिया, उसने शाश्वत का स्वाद पा लिया। उस स्वाद को चाहे धर्म कहो, चाहे प्रभु कहो, चाहे सत्य कहो-- जो मर्जी हो, जो नाम प्यारा हो वही दे दो।
महाभारत का यह सूत्र सारगर्भित हैः मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः।
यूं जलो जैसे कि कोई मशाल को दोनों तरफ से एक साथ जला दे।
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः।
एक मुहूर्त, मुहूर्त समय का छोटे से छोटा हिस्सा है। सेकंड भी उतना छोटा नहीं। सेकंड को भी बांटा जा सकता है। इसलिए सेकंड सबसे छोटा हिस्सा नहीं है। मुहूर्त कहते हैं हम क्षण के उस हिस्से को जो फिर अविभाज्य है; फिर जिसको बांटा न जा सके। वह परम अणु, परमाणु, जिसके आगे फिर विभाजन असंभव हो जाता है। उस अविभाज्य मुहूर्त को समग्रता से जी लो।
अब इसमें दो बातें खयाल रख लेने की हैं। एक तो जीवन की समग्रता बड़ी चीज है, जैसे सागर। और मुहूर्त ऐसा छोटा है जैसे बूंद। बूंद में सागर को उतर आने दो। मुहूर्त को ऐसे जीओ, जैसे बस यही सब है। न पीछे कुछ, न आगे कुछ। न पीछे लौटकर देखो, क्योंकि उतने देखने में मुहूर्त विदा हो जाएगा। न आगे झांककर देखो, क्योंकि उतने देखने में मुहूर्त विदा हो जाएगा। खींच लो अपने को अतीत से। खींच लो अपने को भविष्य से। बस यहीं, इसी पल, अभी। और तब तुम्हारे जीवन में पहली दफा सौ डिग्री तापमान पैदा होता है। इतनी सघनता हो जाती है कि आ गया मधुमास, कि खिल उठेगा कमल। सारी ऊर्जा आ गई। नहीं तो सब बिखरा-बिखरा है, खंड-खंड है। कुछ हिस्सा बचपन में रह गया है, कुछ हिस्सा यौवन में रह गया है, कुछ हिस्सा अधेड़ अवस्था में अटका रह गया है, कुछ बुढ़ापे तक चला आया है। कुछ अभी तुम यहां हो, आगे जा चुका है। कुछ शायद मर भी चुका हो और कुछ शायद मृत्यु के पार स्वर्गों की या मोक्षों की तलाश कर रहा हो। ऐसे फैले हुए जी रहे हो। इतने फैल जाओगे तो जीवन विरल हो जाता है। तो स्वभावतः न्यूनतम पर ही जीते हो फिर। फिर चुल्लूभर पानी हो उसमें डूबो भी तो कैसे डूबो!
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः।
श्रेयस्कर है एक मुहूर्त में भभककर जल उठना।
न तु धूमायितं चिरम्।
ऐसे धुआं-धुआं होते रहो न मालूम अनंतकाल तक, चिरकाल तक क्या सार है? धुआं-धुआं ही होते रहो, खुद की भी आंखें आंसुओं से भरेंगी और दूसरों की आंखें भी आंसुओं से भर जाएंगी। और रोशनी तो होगी नहीं। सच तो यह है कि अगर धुआं न हो तो अंधेरा भी बेहतर। और धुआं ही धुआं हो तो अंधेरा और बदतर हो जाता है। चले थे रोशनी की तलाश में, अंधेरे को और विक्षिप्त कर लिया। धुआं- धुआं हो गया। लेकिन लोग धुआं-धुआं ही जी रहे हैं।
इस धुंधुआती जिंदगी में कैसे तुम समझोगे कि अमृत भी छिपा है, आनंद भी छिपा है, मोक्ष भी छिपा है। नहीं भरोसा आता। नहीं भरोसा आ सकता है। जीवन कोई प्रमाण तो देता ही नहीं। कहते होंगे बुद्ध और कहते होंगे महावीर और कहते होंगे कृष्ण और क्राइस्ट और मोहम्मद, तो कहने दो। ये दो-चार सिरफिरों के कहने से कुछ होने वाला है? अपनी जिंदगी का अनुभव ही असली प्रमाण है। और अपने चारों तरफ जो हजारों-लाखों लोगों की भीड़ है, करोड़ों की भीड़ है, इसका प्रमाण। ये दो-चार सिरफिरे कहते हैं कि परम आनंद है, दुख निरोध है, हजार-हजार सूरज उगते हैं, हजार-हजार कमल खिल जाते हैं, शाश्वतता मिलती है, अमृत की झड़ी लगती है। पागल हैं, कल्पनाप्रवण हैं। कवि होंगे। सपने देखते होंगे।
और यूं नहीं कि साधारण आदमी ऐसा कहता है, बड़े विचारशील लोग, जैसे सिग्मंड फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि इन झक्कियों की बातों में न पड़ना, इनकी बातें बस मन के भुलावे हैं। बुद्ध और महावीर कहते हैं कि जगत मृग-मरीचिका और सिग्मंड फ्रायड कहते हैं कि ये दो-चार सिरफिरे होंगे मृग-मरीचिका में। यह करोड़ों-करोड़ों लोगों का अनुभव यही वास्तविक अनुभव है, यही हकीकत है। और यह मंसूर जिस हकीकत की बात करता है, कहता है अनलहक, कि मैं हूं वह हकीकत--सिर्फ सपनों में भटक गया है, आत्म-सम्मोहित हो गया है। यह करोड़ों लोगों का अनुभव, यह सही होना चाहिए।

इसलिए भला तुम बुद्ध की मूर्ति पूजते हो और सुबह उठकर कुरान पढ़ते हो
या कि चर्च जाते हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता, तुम्हें भरोसा नहीं आता। तुम्हारी जिंदगी में प्रमाण नहीं। तुम्हारी जिंदगी में धुआं ही धुआं। और कृष्णमूर्ति कहते हैंः धूम्ररहित शिखा, स्मोकलेस फ्लेम। धूम्ररहित शिखा! वह तो तुमने कभी जानी नहीं। धुएं सहित भी शिखा नहीं जानी, बस धुआं ही धुआं उठता रहता है। गीली लकड़ी जलाओ तो धुआं उठता है। जितनी गीली उतना धुआं उठता है। खयाल रखना, धुआं अग्नि का हिस्सा नहीं है। आमतौर से लोग यही सोचते हैं कि धुआं उठता है अग्नि से। अग्नि से नहीं उठता। अगर लकड़ी बिल्कुल सूखी हो, उसमें जरा भी पानी न हो, जरा भी आर्द्रता न हो तो धुआं नहीं उठता। धुआं उठता है लकड़ी में पानी के कारण--गीली लकड़ी।
बुद्ध ने ठीक कहा है कि जब तक तुम्हारा मन वासना से गीला है तब तक धुआं उठेगा। जिस दिन तुम वासना से मुक्त हुए, इच्छा से मुक्त हुए, कल्पना से मुक्त हुए, यह आपाधापी गई मन की; सूख गए, सूखे काष्ठवत हो गए--उस दिन शिखा ही उठेगी--प्रज्वलित शिखा, धूम्ररहित। और वही प्रज्वलित शिखा जीवन का परम धन है, परम अनुभव है।
तुमने एक बात खयाल की, पानी सदा नीचे की तरफ बहता है और अग्नि सदा ऊपर
की तरफ उठती है। वह उनका स्वभाव। एस धम्मो सनंतनो। यह उनका धर्म है। पानी नीचे की तरफ बहता है। अपने आप तुमने कभी पानी को ऊपर चढ़ते देखा? चढ़ाना हो तो बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, श्रम करना पड़ता है। बिना श्रम के नहीं चढ़ता। चाहे नल चलाओ, चाहे कुएं से पानी भरो और पहाड़ी पर पानी चढ़ाना हो तो और मुश्किल हो जाती है। पानी नीचे की तरफ बिना श्रम के बहता है। पहाड़ों से उतर आती है गंगा, किसी को कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती। चढ़ाओ तो गंगा को पहाड़ पर, बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
एडीसन बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ। उसने एक हजार आविष्कार किए, संभवतः किसी दूसरे आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किए। लेकिन लोग बड़े हैरान थे कि जब भी उसके घर में जाते थे, उसका दरवाजा खोलते थे बगीचे का, तो बड़ा भारी। आखिर उसके एक मित्र ने कहा कि एडीसन, तुमने इतने आविष्कार किए, कम से कम इतना तो करो कि कुछ ढंग के स्प्रिंग बनाओ। यह कहां का तुमने बाबा आदम के जमाने का दरवाजा लगा रखा है! इसको खोलने में इतनी मेहनत होती है।
एडीसन हंसने लगा। उसने कहा कि उस मेहनत का कारण है। एक बार कोई दरवाजा खोलता है तो मेरी टंकी में पानी भर जाता है। कौन पंचायत करे भरने की। दिनभर लोग आते-जाते रहते हैं, वे पानी भरते रहते हैं टंकी में। वह दरवाजा जो है, ऐसा नहीं कि उसके स्प्रिंग खराब हैं या कोई और बात है, तुम्हें पता नहीं कि एक बार तुमने दरवाजा खोला कि मेरी पूरी टंकी पानी से भर गई। वह उसका आविष्कार था।
पानी ऊपर चढ़ाना हो तो श्रम तो हो जाएगा। और आग को नीचे ले जाना बहुत मुश्किल है। जलती हुई मशाल को तुम उलटा भी कर दो, तो भी आग ऊपर की तरफ ही भागेगी। आग की लपट को नीचे की तरफ ले जाना बहुत मुश्किल है। उसके लिए फिर श्रम करना पड़ेगा, आयोजन करना पड़ेगा। इन दोनों की प्रक्रिया अलग, स्वभाव अलग, प्रकृति अलग। और लकड़ी में दोनों छिपे हैं। लकड़ी में जल भी है और आग भी है। शायद आग के कारण ही वृक्ष ऊपर उठ पाता है और जल के कारण ही उसकी जड़ें जमीन में गहरे पहुंच पाती हैं। तो वृक्ष में दोनों का तालमेल है। आग उसे ऊपर की तरफ उठाती है। वे जो फूल खिलते हैं, आग के कारण खिलते हैं। इसलिए तो जब कभी जंगल में पलाश के फूल खिल जाते हैं तो यूं लगता है जैसे पूरे जंगल में आग लग गई। पलाश के फूलों की जब पंक्तिबद्ध खिलावट होती है, जब पूरा जंगल पलाश के फूलों से भर जाता है, फूल ही फूल! और पलाश क्या फूलता है, कोई दूसरा वैसा फूलना जानता नहीं। सब पत्ते झर जाते हैं, फूल ही रह जाते हैं-- तो सारा जंगल यूं लगता है कि आग पकड़ गया; लपटें उठ रही हैं।
फूल आग का हिस्सा है। इसलिए बिना सूरज के फूल नहीं खिल सकेगा। तुम फूल वाले पौधे को भी अगर ऐसी जगह लगा दो जहां सूरज न आता हो, तो पत्ते तो लग जाएंगे, लेकिन फूल न खिल पाएंगे। या भूल-चूक से कुछ थोड़ी किरणें पहुंच भी जाती हों तो यूं मुर्झाए-मुर्झाए फूल खिलेंगे। इसलिए तो कमरे के भीतर तुम

गुलाब नहीं उगा सकते हो। सूरज चाहिए। फूल में सूरज ही छिपा है। और जड़ें पानी की तलाश कर रही हैं, गहरी जा रही हैं।
वैज्ञानिक बहुत चकित हुए हैं यह बात जानकर कि जड़ों को कुछ संवेदनशीलता है कि पानी कहां है। जिस तरफ पानी है, जड़ें उसी तरफ जाती हैं। इसलिए जो बहुत संवेदनशील लोग हैं, वे तो एक गीली टहनी को वृक्ष की, हाथ में लेकर और चलते हैं और पता लगा लेते हैं कि पानी जमीन में कहां है। वह जो गीली टहनी है, वह तत्क्षण खबर दे देती है। मगर उसके लिए बहुत संवेदनशील लोग चाहिए। जो जल के खोजी होते हैं, जो जमीन में जल खोजने का काम ही करते हैं, वे एक गीली टहनी को, तत्क्षण तोड़ी गई वृक्ष की टहनी को हाथ में ले लेते हैं और उसको बिल्कुल आहिस्ता से पकड़ते हैं कि उस पर कोई जोर न पड़े और उसको पकड़कर चलते जाते हैं। जहां वह टहनी झटका दे देती है, खबर दे देती है उनके हाथ को, उनका संवेदनशील हाथ फौरन उस झटके को पहचान लेता है। टहनी कह रही है कि यहां जल है। टहनी के भीतर छिपा हुआ जल जल की भाषा को पहचानता है। वह नीचे, जमीन के नीचे, हो सकता है पचास फीट नीचे जल हो, मगर पचास फीट जमीन की पर्तों को पार करके जल जल की भाषा पहचान लेता है। तत्क्षण टहनी खबर दे देती है कि यहां जल है। ठिठक जाता है जल का खोजी। और सौ प्रतिशत सही साबित होते हैं जल के खोजी। रेगिस्तानों में भी खोज लेते हैं; जहां कि दो सौ फीट तीन सौ फीट गहरा पानी होगा वहां भी वृक्ष को कुछ अपनी अंतर-अनुभूति है। एक वैज्ञानिक इसकी तलाश में लगा हुआ था, हैरान हुआ जानकर कि बड़ के एक वृक्ष ने और कहीं पानी न था, तो अपनी जड़ों को सड़क के उस पार पहुंचाया जहां से म्युनिस्पिल कमेटी का पाइप निकलता था। पाइप! वह तो बंद है। वह तो सीमेंट का पाइप है, उसके भीतर जल जा रहा है। लेकिन बड़ के वृक्ष को कहीं भीतरी कोई सूझ-बूझ है। कोई भीतरी प्रज्ञा है। जब वृक्ष खोदा गया तो किसी तरफ उसकी जड़ें नहीं गई थीं, सारी जड़ें पाइप की तरफ गई थीं और उन्होंने जाकर पाइप को फोड़ लिया था। तो वे पाइप के भीतर प्रविष्ट हो गई थीं और पाइप से पानी ले रही थीं। चूंकि पानी वहां था नहीं और वृक्ष हरा हो रहा था और वृक्ष बड़ा हो रहा था, इसलिए वैज्ञानिक उत्सुक हुए थे कि इसको पानी मिल कहां गया, पानी यहां है नहीं। किसी को सूझा भी न था कि वृक्ष भी होशियार होते हैं कि इसने पाइप खोज लिया म्युनिस्पिल कमेटी का। न केवल खोज लिया, उसको तोड़ भी लिया। कोमल जड़ों ने सीमेंट की पर्तों को तोड़कर उसके भीतर प्रवेश कर लिया है।
जल वृक्ष की जड़ों का हिस्सा है और आग वृक्ष के फूलों का हिस्सा है। आग उसे ऊपर की तरफ ले जाती है, जल उसे नीचे की तरफ ले जाता है। और जब तुम लकड़ी जलाते हो तो उसमें दोनों होते हैं। इसलिए तो अगर दो लकड़ियां सूखी हों तो दोनों के रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। सिर्फ रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। वह आग पैदा करने का पुराने से पुराना ढंग है। दो लकड़ियों को रगड़ा और आग पैदा हुई। मगर लकड़ियां होनी चाहिए बिल्कुल सूखी।
बुद्ध ने कहा हैः मनुष्य में भी जब वासना... वासना नीचे की तरफ ले जाती
है और प्रार्थना ऊपर की तरफ ले जाती है। या कहो प्रेम। मोह और प्रेम। मोह नीचे की तरफ ले जाता है; वह जलवत है। और प्रेम अग्निवत है; वह ऊपर की तरफ ले जाता है। प्रेम का ही अंतिम परिष्कार प्रार्थना है। और मोह की अंतिम गहराई वासना है। मनुष्य में दोनों हैं--वासना भी है, प्रार्थना भी है। अगर वासनारहित हो जाए मनुष्य तो उसके जीवन में मुहूर्त भर में ऐसी रोशनी प्रगट होती है ऐसी ज्वलंत कि एक मुहूर्त में वह सारे जीवन के सार को पहचान लेता है, सारे जीवन का अर्थ अनुभव में आ जाता है। और कुछ लोग हैं जो रहते हैं, जीते हैं, सौ-सौ वर्ष जीते हैं, मगर उनके हाथ राख भी नहीं लगती, खाक भी नहीं लगती।
मैं क्षण में जीने का पक्षपाती हूं। मत जीवन को लंबाने की चिंता करो, जीवन को गहराओ।
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः, न तु धूमायितं चिरम्।
क्या करोगे चिरकाल तक धुआं-धुआं होकर? चिरकाल से धुआं-धुआं ही तो होते रहे हो। अब तो चौंको, अब तो जागो! और तुम्हारे भीतर अग्नि छिपी है; वह

सूत्र छिपा है जो तुम्हें उठा दे आकाश की आखिरी ऊंचाइयों तक। तुम्हारे भीतर परमात्मा का गीत छिपा है।
योग प्रीतम की यह कविता--
ऐसाकोईगीतनहींहै, जिसमेंतेरारागनहींहो
ऐसीकोईप्रीत न, जिसमेंतेरामदिरसुहागनहींहो
इस जीवन की अंधियारी में
पूर्ण चंद्र-से तुम खिल आए
इस जीवन के सूनेपन में तुमने ये मधुमास जगाए ऐसा रस बरसाया तुमने, जीवन नई बहार हो गया ऐसा कोई फूल न, जिसमें तेरा मधुर पराग नहीं हो
ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो
इस जीवन के हर नर्तन में
तेरी ही प्यारी रुनझुन है
इस जीवन में जो कीर्तन है
बस उसमें तेरी ही धुन है
तुम हो इस जीवन के मधुवन, तुम ही हो प्राणों के गुंजन बिना तुम्हारे खेला जाए, ऐसा कोई फाग नहीं है
ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो
ऐसी कोई प्रीत न, जिसमें तेरा मदिर सुहाग नहीं हो मेरे भावाकुल अंतस में
शोभित हैशृंगार तुम्हारा
मेरा यह संन्यास तुम्हारा
मेरा यह संसार तुम्हारा
मेरे मन के वृन्दावन में, निशि-दिन रास रचाते हो तुम
ऐसी कोई लगन नहीं है, जिसमें तेरी आग नहीं हो
तुम हो इस जीवन के मधुवन, तुम ही हो
प्राणों के गुंजन बिना तुम्हारे खेला जाए,
ऐसा कोई फाग नहीं है ऐसा कोई गीत नहीं है,
जिसमें तेरा राग नहीं हो
वह तो छिपा पड़ा है तुम्हारे भीतर। चित चकमक लागे नहीं! बस जरा चित्त
को चकमक लगानी है, जरा सूखा करना है। जरा वासना की आर्द्रता कम करनी है। और फिर तुम एक क्षण में प्रज्वलित हो उठोगे।
ठीक कहता है महाभारत का यह सूत्र। ज्वलित हो उठोगे, प्रज्वलित हो उठोगे। और वही श्रेयस्कर है। नहीं कि बहुत दिन जीए। लोग कैसे-कैसे जी रहे हैं--सड़ रहे हैं और जी रहे हैं! जैसे जीना अपने आप में ही कोई मूल्य है! गल रहे हैं, मर रहे हैं और जी रहे हैं! जैसे जीवन का कोई अपने आप में अर्थ है! तुम इतने दिन तो जी लिए, क्या यह बात भी समझ में नहीं आई कि बस सांस लिए जाने में ही कुछ अर्थ नहीं है? कि रोज भोजन खा लिया, कि रोज भोजन पचा लिया, इसमें ही कुछ अर्थ नहीं है? पचास वर्ष किया यह काम कि सौ वर्ष किया यह काम कि डेढ़ सौ वर्ष किया यह काम, क्या प्रयोजन है?
वैज्ञानिक चिंतित हैं कि आदमी को और कैसे लंबाएं। वैज्ञानिकों के हिसाब से आदमी कम से कम तीन सौ वर्ष तो जी ही सकता है। भगवान न करे कि वे कहीं सफल हो जाएं इस कार्य में। ऐसे ही आदमी परेशान है। सत्तर-अस्सी साल में ही इतना ऊधम मचाता है, इतने उपद्रव करता है, तीन सौ साल जीएगा तो बहुत कठिन हो जाएगा। और वैज्ञानिकों के तो और भी लंबे इरादे हैं। वे तो कहते हैं, तीन सौ साल तो कम से कम जी ही सकता है। कम से कम। सात सौ साल ज्यादा से ज्यादा जी सकता है। कोई उन्हें अड़चन नहीं मालूम पड़ती।
लेकिन करोगे क्या? सड़ते रहोगे। सात सौ साल जीकर करोगे क्या? न मालूम कितनी पीढ़ियां इस बीच पैदा हो जाएंगी। तुम्हारे बच्चों के बच्चों के बच्चों के बच्चे तुम्हें पहचानेंगे भी नहीं। कोई परिचय भी न रह जाएगा। और इतने दिन जीने के बाद क्या यही खेल फिर भी सार्थक मालूम होंगे? यही राजनीति, यही खिलौने, यही धन, यही पद-प्रतिष्ठा, इसमें कुछ रस मालूम होगा? सत्तर साल में तो आदमी किसी तरह भरमाए रखता है अपने को। भरमाए-भरमाए ही

दिन बीत जाते हैं, रात आ जाती है। झूले से लेकर कब्र तक ज्यादा देर नहीं लगती। मगर सात सौ साल तो बहुत कठिन हो जाएगा।
वैज्ञानिक सात सौ साल की बात कर रहे हैं। और जिन देशों में उम्र अस्सी साल के औसत को पार कर गई है, वहां बूढ़े आत्ममरण की मांग कर रहे हैं; आत्मघात का जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए। और मैं भी समझता हूं, उनकी बात में अर्थ है। और आज नहीं कल, दुनिया के विधानों में इसको जोड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि आज रूस में ऐसे सैकड़ों बूढ़े हैं जिनकी उम्र डेढ़ सौ वर्ष के करीब पहुंच गई है-- जो अब मरना चाहते हैं। मगर कैसे मरें? मरना गैर-कानूनी है। और उससे भी बुरी हालत अमरीका में है।
अमरीका में ऐसे हजारों लोग हैं जो अस्पतालों में पड़े हैं, बिस्तरों
पर पड़े हैं। न उठ सकते हैं, न बैठ सकते हैं; मगर मर भी नहीं सकते। न जी सकते हैं, न मर सकते हैं। कैसी दुविधा! अदालतों में मुकदमे चल रहे हैं, मरना चाहते हैं, लेकिन अदालत आज्ञा नहीं देती, क्योंकि कानून नहीं है कोई। आत्महत्या की आज्ञा कैसे दी जाए? दवाइयों से उनको इंजेक्शन दिए जा रहे हैं, नलियों से भोजन दिया जा रहा है। नलियों से मल-मूत्र निकाला जा रहा है। किसी का हृदय ठीक से नहीं चल रहा है, तो मशीन चला रही है, बैटरी से चल रहा है। किसी की सांस नहीं चल रही है, तो मशीन चला रही है। अब सवाल यह है कि इस मशीन को बंद करना कि नहीं करना? और बंद किया जाए तो वह कानूनी है या गैर-कानूनी? अगर इस मशीन को बंद करते हैं तो हत्या का पाप लगेगा कि नहीं? यह अपराध होगा कि नहीं? कौन बंद करे? डाक्टर बंद करे, बेटे बंद करें, पत्नी बंद करे, कौन बंद करे? कौन झंझट ले? कुछ लोग तो बेहोश हालत में पड़े हैं, उनको होश ही नहीं, इसलिए उनसे पूछने का भी सवाल नहीं है अब। अब उनकी हालत बिल्कुल गाजर-मूली जैसी है। आदमी अब उन्हें कहना ठीक भी नहीं है, गोभी के फूल हो गए। गोभी के फूल से भी गए बीते, क्योंकि गोभी के फूल का भी कुछ उपयोग है, कम से कम सब्जी बन सकती है, वे उस काम के भी न रहे। मगर कानून अधिकार नहीं देता मरने का। जरूर यह अधिकार देना पड़ेगा। जैसे और जन्मसिद्ध अधिकार हैं, उन्हीं में यह भी जोड़ना पड़ेगा, अथनाशिया का, आत्मघात का जन्मसिद्ध अधिकार। बड़ा उलटा सा लगेगा देखने में। जन्मसिद्ध जीवन का अधिकार और बात मरने की!
लंबे जीवन का यही परिणाम होने वाला है। गहन जीवन होना चाहिए। विज्ञान लंबाने की कोशिश करता है और धर्म गहराने की। इसलिए विज्ञान से मैं कहूंगा कि जितने दिन आदमी जीता है, स्वस्थ जीए इसकी फिक्र करो। लंबाने की चिंता में मत पड़ो। परिपूर्ण स्वास्थ्य से जी सके, इसकी चिंता करो। और धर्म इसकी चिंता करे कि यह स्वास्थ्य का उपयोग आदमी जीवन को गहराने में कैसे कर सके। ध्यान से जीवन गहराया जा सकता है, विज्ञान से स्वस्थ बनाया जा सकता है। विज्ञान के बिना जीवन स्वस्थ नहीं होगा और ध्यान के बिना जीवन गहराई को नहीं पाएगा। विज्ञान बाहर से सहारा दे और ध्यान भीतर से, तो आदमी के जीवन में बड़ी क्रांति घट सकती है। एक-एक मुहूर्त एक-एक शाश्वतता बन सकता है।
मैं तो जीवन को प्रेम करता हूं। मेरे लिए तो जीवन परमात्मा का ही दूसरा नाम है--जीवन, उसके सारे रंगरूपों में। मैं पलायनवादी नहीं हूं। मैं सारे पलायनवादियों का विरोधी हूं। और इसलिए तो पुरानी धर्म की जो जड़ आधारशिलाएं हैं, उनको उखाड़ने में लगा हूं। क्योंकि उन सब में पलायन छिपा हुआ है--भागो, छोड़ो! मैं कहता हूंः जीओ, जागो। भागो मत, छोड़ो मत। जो मिला है अवसर, उसका उपयोग करो।
ऐ काश कि सोजे-गम अश्कों में न ढल जाए
दामन से अगर पोछूं दामन मेरा जल जाए
हमको तो गुलिस्तां के हर गुल से मुहब्बत है
गुलचीं को जो नफरत हो, गुलशन से निकल जाए
हर खार हमारा है, हर फूल हमारा है
हमने ही लहू देकर गुलशन को संवारा है
हम डूबने वालों को, काफी ये सहारा है, साहिल पे तू आ जाना, हर मौज कनारा है

सौ जुल्म किए तुमने, इक आह न की हमने
वो दर्द तुम्हारा था, ये दर्द हमारा है हम तश्नालबी अपनी दुनिया से छुपा लेंगे साकी से रुसवाई अब हमको गवारा है
अब उनका हंसीं आंचल किस्मत में नहीं शायद आंसू भी हमारे हैं, दामन भी हमारा है खामोश फजाओं में बजने लगी शहनाई
ये तूने सजा दी है या दिल में उतारा है
आंखों में जब अश्कों के तूफान मचलते थे
हमने वो जमाना भी हंस-हंस के गुजारा है
उनके लबे-नाजुक को क्या राज बताएंगे
कुछ तू ही बता ऐ दिल, क्या हाल हमारा है
आंसू भी हमारे हैं दामन भी हमारा है
यहां कांटे भी हमारे हैं, फूल भी हमारे हैं। यहां जिंदगी के दुख भी हमारे हैं सुख भी हमारे हैं। क्योंकि सुखों से ही आदमी नहीं सीखता, दुखों से और भी ज्यादा सीखता है। फूल तो भरमा भी लें, कांटे जगा देते हैं।
हर खार हमारा है, हर फूल हमारा हैहमने ही लहू देकर गुलशन को संवारा है
और यह हमारी ही बगिया है। हम ही इसके मालिक हैं। बस इतनी ही बात घट जाए--
हम डूबने वालों को, काफी ये सहारा है
बस इतना हो जाए--
साहिल पे तू आ जाना, हर मौज कनारा है
फिर कोई चिंता नहीं किनारे की। हम डूब जाएंगे मझधार में, फिर मझधार ही किनारा है। बस तू साहिल पर आ जाना। परमात्मा की झलक भर मिल जाए, साहिल पर सही, फिर मझधार भी किनारा है। उस प्रेमी की थोड़ी सी झलक मिल जाए। और वह झलक कभी भी मिल सकती है, अभी भी मिल सकती है। मगर उसके लिए हमें अपने जीवन को फैलाव से खींचना होगा; एक बिंदु पर थिर कर लेना होगा, हमें अखंड हो जाना होगा, खंड-खंड नहीं। और हमें एक जीवन की पूरी शैली का आविष्कार करना होगा। यूं समझो कि एक सीधी पंक्ति में जीना, लकीर में जीना, लकीर के फकीर होकर जीना, लीक पर जीना, भीड़ के साथ जीना--संसार है। और गहराई में जीना, अ से ब और ब से स की तरफ नहीं, अ से और गहरे अ की तरफ, और और गहरे अ की तरफ, अक्षर तक पहुंच जाने की डुबकी संन्यास है। मुहूर्त को ही जीवन बना लेना संन्यास है। और कल जीएंगे, परसों जीएंगे--यह आकांक्षा संसार है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आजकल देश में धर्म के नाम पर जो सांप्रदायिक झगड़े
हो रहे हैं, इनके विषय में आपका क्या कहना है?

इस छोटे से प्रश्न में बहुत सी बातें छिपी हैं। एक-एक बात को अलग-अलग लेना होगा।
पूछा तुमने--"आजकल... ।"
अक्सर लोगों को यह भ्रांति है कि ये धर्म के नाम पर जो उपद्रव हो रहे हैं ये आजकल हो रहे हैं। ये सदा से हो रहे हैं। यह भ्रांति कब छूटेगी? ये अनंतकाल से हो रहे हैं। यह कोई आज का कसूर नहीं।
लोग इस तरह समझाने की कोशिश में लगे रहते हैं कि यह कलियुग है। हिंदू कहते हैं यह कलियुग है, यह तो होगा ही। जैसे सतयुग में यह न होता था! सतयुग में हालत और बदतर थी। आज तो कम से कम कोई प्रश्न भी पूछ सकता है, सतयुग में कोई प्रश्न भी नहीं पूछ सकता था। आज तो कम से कम इस पर विचार-विमर्श हो सकता है। आज तो कम से कम मेरे जैसे सिरफिरे लोग बातों को सीधा-सीधा कह भी सकते हैं। सतयुग में यह भी संभव नहीं था। जबानें काट ली जाती थीं, कानों में सीसा पिघलाकर भर दिया जाता था। राम जैसे व्यक्ति ने एक शूद्र के कान में सीसा पिघलवाकर भरवा दिया। क्या उसकी गति हुई, इसका तो पता नहीं, क्योंकि जब सीसा पिघलाकर कान में भरा जाएगा तो कान तो फूट ही जाएंगे, शायद आंखें भी फूट जाएं; क्योंकि कान, आंख, नाक, सब जुड़े हैं। इसीलिए तो एक ही

डाक्टर तीनों का काम करता है--नाक, कान, आंख। और कान द्वार हैं मस्तिष्क के। अगर कान फट गए और जलता हुआ सीसा, उबलता हुआ सीसा जब कानों में जाएगा तो खोपड़ी के भीतर तक पहुंच जाएगा। मर ही गया होगा वह गरीब शूद्र। और यह सतयुग की बात! और मर्यादा पुरुषोत्तम राम की कृपा!
धर्म के नाम पर मूर्खताएं सदा से होती रही हैं। फर्क इतना ही पड़ा है
कि आज हम सोचने लगे हैं कि वे मूर्खताएं क्यों होती हैं और तब लोग सोचते भी नहीं थे, सहज स्वीकार करते थे। इतना ही फर्क पड़ा है। आदमी थोड़ा सोच-विचारशील हुआ है।
जैन कहते हैं, यह पंचमकाल है, पंचमकाल में तो यह सब होगा ही। तो महावीर
के कान में किसने खीले ठोंक दिए थे? वह तो पंचमकाल नहीं था, तीर्थंकर मौजूद थे। और जैन कहते हैं, जहां तीर्थंकर मौजूद होते हैं वहां बारह कोस की परिधि में असमय फूल खिल जाते हैं। जरूर खिल जाते होंगे, लेकिन इस आदमी को जरा भी सूझ न आई, यह कोई बारह कोस की दूरी से थोड़े ही कान में खीले ठोंके होंगे उसने, यह तो बिल्कुल पास में खड़े होकर कान में खीले ठोंके होंगे। इसमें कुछ बोध न आया! वृक्षों को बोध आ जाता है, फूल खिल जाते हैं और इस आदमी को कुछ बोध न आया! महावीर को लोगों ने गांव-गांव भगाया, जंगली कुत्ते उनके पीछे लगाए। उनका कसूर क्या था? यह कि वे नग्न थे। और नग्न होना शोभादायक नहीं।
कुछ भेद नहीं पड़ा है। वही सब पागलपन। युधिष्ठिर ने--वे धर्मराज थे-- अपनी पत्नी को दांव पर लगा दिया। पहले तो पत्नी को पांच भाइयों ने बांट लिया। यह भी खूब! कलियुग में भी कोई करे तो सजा काटे। इतना तो निश्चित है कि कलियुग में कोई करे तो उसे हम धर्मराज तो नहीं ही कहेंगे। पहले तो पत्नी को बांट लिया, दिन बांट लिए। स्त्री-संपदा बांटी जा सकती है! जैसे जमीन बांटते हैं। कहते हैं न--जर जोरू जमीन, झगड़े के घर तीन। उनको साथ ही जोड़ दिया है; जर और जमीन के साथ जोरू को भी! और जब जर और जमीन के साथ जोड़ा तो फिर बांटने में हर्ज क्या? इस देश में तो हम कहते रहे स्त्री-संपत्ति। तो संपत्ति तो बांटी जा सकती है। पांचों भाइयों ने बराबर-बराबर बांट लिया। घंटे बांट लिए होंगे सात दिन के। एकाध दिन की शायद छुट्टी रखी हो। कोई एतराज न उठा! न एतराज की तो बात छोड़ो, भारत में जिन पांच पुण्य कन्याओं का नाम लिया जाता है उसमें द्रोपदी एक है। गजब हो गया! अगर द्रोपदी कन्या है पांच पतियों के होते हुए, तो जिनके एक ही पति हैं वे तो महाकन्याएं हैं। उनका तो कहना ही क्या! और फिर इस स्त्री को दांव पर लगा दिया।
एक सीमा होती है अमानवीयता की। लेकिन धर्म के नाम पर सब तरह की अमानवीयताएं सदा से चलती रहीं। आखिर किन लोगों ने जीसस को सूली दी थी? आजकल तो नहीं हुआ यह। किन लोगों ने सुकरात को जहर पिलाया था? आजकल तो नहीं हुआ यह। किन लोगों ने अलहिल्लाज मंसूर को मारा? किनने सरमद की गर्दन काटी थी? आजकल तो नहीं हुआ यह। ये तो सब पुरानी कहानियां हैं। ये तो सब अतीत की ही गौरव-गाथाएं हैं।
तो बंसल, ऐसा मत पूछो कि आजकल, क्योंकि उसमें भ्रांति है। शायद तुमने सोचा भी नहीं होगा प्रश्न पूछते समय कि आजकल का इतना अर्थ होगा। लेकिन रोज कोई न कोई मुझसे अब यही पूछता रहता है--आजकल ऐसा क्यों हो रहा है? उसमें यह भ्रांति पड़ी ही हुई है कि पहले ऐसा नहीं होता था। पहले तो स्वर्णयुग था, सब ठीक-ठीक होता था, अब सब गड़बड़ हो गया है। कुछ भी ठीक-ठाक नहीं था। हालतें आज से बदतर थीं। हालांकि प्रश्न पूछने की भी क्षमता नहीं थी।
जिस दिन शूद्र के कानों में राम ने सीसा पिघलवाकर भरवाया, भारत में करोड़ों शूद्र थे--न कोई मोर्चा गया, न कोई हड़ताल हुई, न कोई घिराव हुआ। नहीं तो मर्यादा पुरुषोत्तम का घिराव हो जाना था। कम से कम शूद्र इतना तो कर ही कर सकते थे कि मल-मूत्र की सफाई करना बंद कर देते अयोध्या में। वह भी न हुआ। शूद्रों ने भी स्वीकार किया कि ठीक ही तो बात है, राम कुछ गलत थोड़े ही करेंगे। इसने सुना क्यों? सिर्फ सुना था और वह भी गुजर रहा था यह शूद्र और कोई ब्राह्मण पाठ कर रहा था, और इसने सुन लिया था। कान में इसके चूंकि पड़ गए वेद के शब्द और यह निषेध था; मनु पांच हजार साल पहले निषिद्ध कर गए हैं

कि कोई शूद्र वेद को नहीं पढ़ सकता, कोई स्त्री वेद को नहीं पढ़ सकती। क्या गजब का सतयुग था! कैसे स्वर्णयुग थे!
अगर वेद धर्म है तो स्त्री और शूद्रों को धर्म का अधिकार नहीं? अगर वेद में सत्य है तो स्त्री और शूद्रों को सत्य का अधिकार नहीं? और राम जैसा व्यक्ति भी सजा दे! और फिर भी राम की पूजा चल रही है! और फिर भी रामलीला हो रही है! और अभी भी तुम रावण का पुतला जलाते हो! अरे, अब तो कम से कम थोड़ी बदलाहट करो। कुछ नया भी रहेगा, कुछ मजा भी आएगा। रावण का ऐसा कुछ बहुत कसूर नहीं। यूं सीता को चुराकर भी ले गया था तो जितना सदव्यवहार रावण ने सीता के साथ किया उतना सदव्यवहार राम ने और लक्ष्मण ने रावण की बहन शूर्पणखा के साथ नहीं किया।
आखिर शूर्पणखा का कसूर क्या था? यह तो कोई कसूर नहीं कि लक्ष्मण पर उसको प्रेम हो आया, यह कोई कसूर है? अगर यह कसूर है तो यह कसूर तो रामचंद्र जी और लक्ष्मण जी पहले ही कर चुके थे। आखिर इनको भी सीता पर प्रेम ही हो आया था। सीता फूल चुन रह थी बगिया में और ये दोनों भैया चले जा रहे थे। और वाल्मीकि ने जैसा रस भरा वर्णन किया है, एकदम झूमने लगे, एकदम दीवाने हो गए। और दोनों भाइयों को आ गया था मन। इसलिए तो जब स्वयंवर में देर-दार होने लगी तो लक्ष्मण बीच-बीच में जोश से भर जाएं। वे बड़े भाई की वजह से उनको बैठ जाना पड़े। रामचंद्र जी कहें, बैठ। आज्ञाकारी होने की वजह से और बड़े भाई के रहते कैसे, नहीं तो वे कई दफा खड़े हो-हो जाएं कि मैं अभी धनुष तोड़े देता हूं।
तो अगर राम और लक्ष्मण को प्रेम आ सकता है सीता पर तो कोई कसूर तो नहीं
था कि शूर्पणखा को लक्ष्मण पर प्रेम हो आया। यह तो सम्मान ही था। यह तो लक्ष्मण का सम्मान ही था। प्यारा युवक था, सुंदर युवक था। और यह भ्रांति छोड़ देना, जो कि रामलीलाओं ने सारे मुल्क में फैला रखी है कि शूर्पणखा कोई बदशकल स्त्री थी। अतिसुंदर स्त्री थी, राजकुमारी थी। और उसने अगर प्रेम का निवेदन किया तो यह तो बिल्कुल शास्त्रीय था, इसकी तो कहीं मनाही नहीं है। और अगर निवेदन किया था और लक्ष्मण को पसंद न था तो लक्ष्मण कह सकते थे-- क्षमा करें! सॉरी! इतना कह देने से काम पूरा हो जाता। नाक वगैरह काटने की क्या जरूरत आ गई? लेकिन उन्होंने आव देखा न ताव और रामचंद्र जी की अध्यक्षता में यह नाक काटने का समारोह संपन्न हुआ।
रावण ने ऐसा कोई अभद्र व्यवहार सीता से नहीं किया। सीता को रावण ने बड़े सम्मान से रखा, उसे छुआ भी नहीं। बलात्कार भी कर सकता था, छुआ भी नहीं। उसे सम्मान से रखा, समादर से रखा, अलग रखा। एक विशेष बगीचे में, सुंदरतम बगीचे में उसे ठहराया। एक मेहमान की तरह। लेकिन बेचारे रावण की तुम हर साल बनाकर प्रतिमा और जलाते हो और राम अभी भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।
धर्म के नाम पर बहुत जाल चलते रहे हैं। उसमें छोटे-छोटे लोगों के ही हाथ नहीं, उसमें बड़े-बड़े लोगों के भी हाथ हैं। उसमें बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं।
इसलिए बंसल, आजकल शब्द की बात न उठाओ। ऐसा सदा होता रहा। धर्म के नाम
पर झगड़े निरंतर होते रहे हैं। धर्म के नाम पर ही झगड़े होते रहे हैं। कारण साफ है कि हमारी धर्म के संबंध में एक भ्रांति है। जैसे दीया जलता है तो रोशनी होती है और दीया बुझ जाता है तो रोशनी समाप्त हो जाती है--ऐसे जब कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई लाओत्सु, कोई जीसस जैसा व्यक्ति प्रज्वलित हो उठता है तो रोशनी होती है और जब वह व्यक्ति विदा हो जाता है तो रोशनी विदा हो जाती है। लेकिन दीया बुझ जाता है और हम अंधेरे की पूजा में लगे रहते हैं। दीए के बुझते ही तो अंधेरा रह जाता है। माना कि वहां दीया था कभी और कभी रोशनी होती थी, मगर अब तो सिर्फ अंधेरा है। जब दीया जलता है तब धर्म होता है और जब अंधेरे की पूजा शुरू होती है तो संप्रदाय होता है। और संप्रदाय लड़ेंगे नहीं तो क्या करेंगे? अंधे लड़ेंगे नहीं तो क्या करेंगे? अंधे एक-दूसरे से टकराएंगे। बिल्कुल स्वाभाविक है।
धर्म कभी-कभी प्रगट होता है। जब कोई बुद्ध, जब कोई समाधिस्थ, जब कोई परमज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति मौजूद होता है तो धर्म प्रगट होता है। और जैसे ही वह व्यक्ति विदा हुआ कि धर्म पुनः विलुप्त हो जाता है, पुनः खो

जाता है। फिर-फिर प्रगट होगा। फिर-फिर दीए जलेंगे और रोशनी आएगी। मगर जब दीए जलेंगे तब रोशनी आएगी। और बीच के काल में तो अंधेरा होता है।
और यह भी मजे की बात है कि जिन्होंने महावीर के जले हुए दीए को पूजा,
वह फिर बुद्ध के जले हुए दीए को स्वीकार न करेंगे। लोगों की नजर दीए पर ज्यादा होती है कि दीए की बनावट कैसी है, छोटा है कि बड़ा है, मिट्टी का बना है कि सोने का बना है कि चांदी का बना है। नक्काशी क्या है, सील-मोहर क्या है? रोशनी से किसी को लेना-देना नहीं, कि ज्योति है या नहीं? और ज्योति अगर मिट्टी के दीए में जले तो भी वही है और सोने के दीए में जले तो भी वही है। लेकिन लोगों की नजरें दीयों पर बहुत पड़ जाती हैं; रोशनी तो दिखाई उन्हें पड़ती ही नहीं। वे दीयों को टटोलते रहते हैं।
तो महावीर को मानने वाला, बुद्ध का दीया जलेगा तो भी स्वीकार न करेगा।
और बुद्ध को मानने वाला, कबीर का दीया जलेगा तो भी स्वीकार न करेगा। और कबीर का मानने वाला, नानक का दीया जलेगा तो भी स्वीकार नहीं करेगा। उन सबकी नजरें तो अपने दीए पर पड़ गई हैं। रोशनी का तो किसी को हिसाब ही नहीं है। बुझे दीयों से संप्रदाय बनते हैं और जला दीया धर्म होता है।
तो धर्म तो तभी होता है जब सदगुरु जीवित होता है; उसके बाद तो धर्म के नाम पर अधर्म ही रह जाता है। फिर झगड़े-फसाद होंगे, मंदिर-मस्जिद लड़ेंगे, गुरुद्वारे-गिरजे लड़ेंगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जब तक हम इस दुनिया से संप्रदायों को विदा नहीं करते तब तक ये उपद्रव जारी रहेंगे। जब तक यह बात हमारे मन में बहुत स्पष्ट रूप से प्रगाढ़ नहीं हो जाती कि धर्म तो कभी- कभी प्रगट होता है, अधिकतर तो धर्म अप्रगट रहता है, अंधेरी रात रहती है और उस अंधेरी रात को अगर हम अंधेरी समझें तो झगड़े अभी कम हो जाएं। अगर हिंदू को समझ में आ जाए कि अब मेरे पास कोई जला हुआ दीया नहीं है, तो झगड़ा क्या है? मुसलमान को समझ में आ जाए मेरे पास कोई जला हुआ दीया नहीं, तो अब झगड़ा क्या है? जहां जला हुआ दीया हो वहां दोनों को जाना चाहिए, क्योंकि रोशनी का सवाल है। और रोशनी तो उसकी है--परमात्मा की है। वह न बुद्ध की है, न महावीर की है, न मोहम्मद की है, न क्राइस्ट की है। वह रोशनी तो परमात्मा की है। वह तो एक ही स्रोत से आती है और एक ही स्रोत में लीन हो जाती है।
मगर हम, बुद्ध तो गुजर जाते हैं, समय की रेत पर बने उनके चरण-चिह्नों
को पूजते बैठे रहते हैं। फिर तुम्हारे चरण-चिह्न अलग, उसके चरण-चिह्न अलग; झगड़ा खड़ा हो जाता है किसके चरण-चिह्न सही हैं, कौन सही है?
चरणचिह्न किसी के भी सही नहीं हैं--सब रेत के चरण-चिह्न हैं। और जो निकल चुका है, जिसके चरण-चिह्न बने थे, वह अब मौजूद नहीं है। लेकिन पंडित-पुजारी इन चरण-चिह्नों के पास मंदिर और मस्जिद बनाते हैं, मठाधीश निर्मित होते हैं। शंकराचार्य, अयातुल्ला, पोप, ये चरण-चिह्नों के आसपास खड़े होते हैं और एक विराट धंधा चलता है। उस धंधे में झगड़ा होगा, क्योंकि प्रतिस्पर्धा होगी।
तुम पूछते हो, "आजकल देश में धर्म के नाम पर जो सांप्रदायिक झगड़े हो रहे हैं, इनके विषय में आपका क्या कहना है?"
ये सदा होते रहे और सदा होते रहेंगे, अगर हम धर्म और संप्रदाय का भेद स्पष्ट नहीं समझ लेते। धर्म है जीवंतता। जब कोई व्यक्ति सांस ले रहा है तो धर्म है और जब सांस जा चुकी, प्राण का पक्षी उड़ चुका, पिंजड़ा पड़ा रह गया तो फिर हम क्या करते हैं? माना कि बहुत प्यारे थे पिता और माना कि बहुत प्यारी थी मां, लेकिन करोगे क्या? जल्दी से अर्थी सजाते हैं, जाकर मरघट पर विदा दे आते हैं। लाश को घर में रखने से क्या होगा? लाश को ढोने से क्या होगा?
और धर्म के नाम पर लाशें रखे हुए लोग बैठे हैं। लाशें सड़ गई हैं, उनसे दुर्गंध उठ रही है। तो कोई उस पर कपूर मल रहा है, कोई लोभान का धुआं उड़ा रहा है कि किसी तरह लाश की बदबू छिपी रहे, लाश की बदबू प्रगट न हो जाए। इत्र छिड़का जा रहा है। फूलों में लाश दबाई जा रही है, हजार उपाय किए जा रहे हैं। और मजा यह है कि साथ में यह भी झगड़ा चल रहा है कि किसकी लाश ज्यादा जिंदा है; किसकी लाश ज्यादा प्यारी है; किसकी लाश असली है, किसकी नकली है?

जब बुद्ध बोलते हैं तो उनके शब्दों में शून्य का आवास होता है, निर्वाण का रस होता है। जब बुद्ध जा चुके, किताब में लिखे हुए अक्षर तो केवल स्याही हैं। मगर झगड़े इसी स्याही पर होते रहते हैं। जब बुद्ध बोलते हैं तो वहां कहां स्याही! वहां कहां... स्याही का मतलब समझते हो--कालापन। अब तो कई तरह की स्याही होने लगी, मगर पुरानी आदत है तो हम नीली स्याही को भी स्याही कहते हैं, लाल स्याही को भी स्याही कहते हैं। स्याही का मतलब-- स्याह। पुराने जमाने में सिर्फ एक ही रंग की स्याही होती थी--काले रंग की। इसलिए स्याह का रंग स्याही का रंग था।
बुद्ध के वचन तो शुभ्र होते हैं। कागज पर आते-आते स्याह हो जाते हैं। अगर बुद्ध को कागज पर ही पढ़ना हो तो कोरे कागज पर पढ़ना, तो शायद पा जाओ तो पा जाओ। मगर स्याही में मत पढ़ना, स्याही में नहीं मिल सकते। और स्याह कागजों पर झगड़े हो रहे हैं।
लेकिन राजनीतिज्ञ को भी लाभ है, धर्म-गुरुओं को भी लाभ है, पंडित-पुरोहितों को, सबको लाभ हैं इन झगड़ों से। झगड़े न हों तो राजनीति नहीं बचती। झगड़े न हों तो नेता नहीं बचता। झगड़े न हों तो पंडित की क्या जरूरत, पुरोहित की क्या जरूरत? झगड़ों में बड़ा न्यस्त स्वार्थ छिपा हुआ है। झगड़ों में कई लोग जी रहे हैं; बिना झगड़ों के मर जाएंगे। इसलिए किसी न किसी तरह झगड़ों को जिलाए रखना पड़ता है। और सबसे बड़े मजे की बात है कि यही लोग झगड़े शांत करवाते हैं। जो लोग झगड़े करवाते हैं वही झगड़े शांत करवाते हैं। झगड़ा इतना भी नहीं हो जाना चाहिए कि बात ही मिट जाए। झगड़ा समाप्त भी नहीं हो जाना चाहिए, नहीं तो खुद ही मिट जाएं। इसलिए बड़े सम्हलकर चलना पड़ता है इन राजनीतिज्ञों को, धर्म-गुरुओं को--थोड़ा-थोड़ा झगड़ा भी चलता रहे, आग सुलगती भी रहे, भभक भी न जाए, धुआं-धुआं होता रहे। ऐसा भी न हो कि धुआं भी मिट जाए, कि लोगों को साफ दिखाई पड़ने लगे, आंखें स्वच्छ हो जाएं, तो भी खतरा है। धर्म के नाम पर उपद्रव
ऐसे ही होते रहेंगे
कुछ रोते रहेंगे
कुछ सिर तक चादर ताने
चैन की नींद सोते रहेंगे।
मस्जिद, गिरजाघर, शिवाला
वसीयतनामे हैं
मुल्ला, पंडित, पोप, पुजारियों के नाम इतिहास गवाह है
मजहब के ठेकेदारों ने इन्हें आदर्शों के नाम पर
बेच तक डाला है।
एक जानवर की खातिर
इनसान जानवर बन जाता है
ठंडा खून उफन जाता है
सौ दो सौ जानों की क्या चिंता धर्म रहे, कर्म रहे
आदमी भले ही बेशर्म रहे
बस, आधुनिक ठेकेदार
राजनीतिबाजों की जेबें गर्म रहें,
ये लोग इसी तरह
घृणा के बीज बोते रहेंगे
जब तक नहीं चेतेंगे हम आप
धर्म के नाम पर उपद्रव
ऐसे ही होते रहेंगे
एक चेतना चाहिए। एक बोध चाहिए। हिंदू नहीं चाहिए दुनिया में, मुसलमान नहीं चाहिए, जैन नहीं चाहिए, ईसाई नहीं चाहिए, पारसी नहीं चाहिए। आदमी चाहिए! ये सब पिटी हुई लकीरें हैं और ये पिटी हुई लकीरें तुम्हें उस

ज्योति से वंचित रख लेती हैं जो कभी-कभी जलती है। अगर तुम मुक्त हो, कहीं बंधे न हो, तुम्हारे कहीं खूंटे न गड़े हों, तो तुम जल्दी पहचान लो।
बुद्ध पैदा हुए, हिंदुओं ने नहीं पहचाना। नानक पैदा हुए, बौद्धों ने नहीं पहचाना। मोहम्मद पैदा हुए, यहूदियों ने नहीं पहचाना। जीसस पैदा हुए। ये लोग पैदा होते रहे। लेकिन जो लोग पुराने खूंटों से बंधे थे... किनने सूली दी जीसस को? उन लोगों ने सूली दी जो मूसा को पूजते थे। मूसा कभी जले दीए थे, मगर अब तो ज्योति कब की जा चुकी थी। कोई हजार साल हो चुके थे। जो ज्योति जीसस में जली थी वह वही थी जो मूसा में जली थी। लेकिन मूसा के मानने वालों ने ही जीसस को सूली पर चढ़ा दिया। क्योंकि उनको खतरा लगा, उनके संप्रदाय को खतरा पैदा हो गया।
धर्म को कोई खतरा कभी पैदा नहीं होता। या तो धर्म होता है या नहीं होता; खतरा उसको कभी पैदा नहीं होता। जब तक होता है तब तक खतरा हो नहीं सकता; जब है ही नहीं तो खतरा क्या खाक होगा?
धार बदल दूर हट गई नदिया
बस निर्जन घाट रह गए
पांवों के चक्रों को बांध सके
कब आंगन, देहरी, गवाक्ष
आकुल अंतर के उपचार नहीं
गेरूए वसन या रुद्राक्ष
फिर मंदिर छोड़ गया संन्यासी फिर खुले कपाट रह गए
वक्ष से लगाया, फिर छोड़ दिया झुककर फिर तन गई कमान
किस-किस से मन की अब व्यथा कहे
भटकता दिशाओं में बान
सौदा ले लौट गई घर गोरी
अब सूने हाट रह गए
धार बदल दूर हट गई नदिया
बस निर्जन घाट रह गए
गोरी तो कब की जा चुकी! खरीद-फरोख्त हो चुकी। निर्जन हाट रह गए। बस सूने हाट रह गए। नदिया धार बदल कब की दूर हट गई। मगर पूजा जारी है। नदी तो नहीं है, सिर्फ रेत रह गई है, लेकिन पूजा जारी है। हाट तो उजड़ चुका, बस चिह्न रह गए हैं, मगर पूजा जारी है। और इस पूजा के कारण जो नई हाट कहीं भर गई होगी, कहीं नया बाजार उठा होगा, कहीं नई दुकान खुली होगी, कहीं नए--फिर नए शब्दों में सत्य ढले होंगे, फिर कहीं ध्यान पका होगा, फिर कहीं समाधि के फूल खिले होंगे, फिर कहीं गजरे बिकने आ गए होंगे। वहां तुम नहीं जाते। तुम अपनी पुरानी हाट में ही बैठे हो, जहां अब कुछ भी नहीं। सूनी दुकानें हैं। फिर मंदिर छोड़ गया संन्यासी
फिर खुले कपाट रह गए
जब तक संन्यासी मंदिर में है, तब तक मंदिर जीवित है और जब संन्यासी चला गया तो खुले कपाट रह गए। अब लाख पटको सिर, अब कुछ काम का नहीं है। लेकिन क्या कारण है कि लोग जब भी कोई व्यक्ति प्रबुद्धता को उपलब्ध होता है, उसके पास आने में डरते हैं? मुर्दों को पूजते हैं, जीवित से भय खाते हैं। जीवित से भय खाने का कारण और भी है। न्यस्त स्वार्थ तो रोकते ही हैं, लेकिन भीतर का भय भी रोकता है। किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति के साथ खड़े होना खतरे से खाली नहीं; जोखिम का काम है; जुआरी का काम है।
मैं नशे में आके बहक गया
मेरी बात का न मलाल कर
तू भी जिंदगी पे है तानाजन
तू भी जिंदगी से सवाल कर
मैं नशे में आके बहक गया...
मेरा साथ दे न सकोगे तुम
मुझे मेरे हाल पे छोड़ दो

मेरी हर कदम में हैं लग्जिशें कहां तक चलोगे सम्हाल कर मैं नशे में आके बहक गया... कोई जाम आबे-हयात का
मुझे साकिया नहीं चाहिए
मुझे जिंदगी में खिज्र न दे मुझे इश्क में बेमिसाल कर मैं नशे में आके बहक गया... ये हुदूदे-दैरो-हरम नहीं ये है मयकदा यहां गम नहीं यहां रक्स करती है
जिंदगी कभी देख जाम उछालकर मैं नशे में आके बहक गया... मैं किरन-किरन की तलाश में शबे-तार चीर के जाऊंगा
ये गेरू से सुबह को मिलाऊंगा किसी आफताब को ढालकर
मैं नशे में आके बहक गया...
मेरी बात का न मलाल कर
मैं भी जिंदगी पे हूं तानाजन
तू भी जिंदगी से सवाल कर
मैं नशे में आके बहक गया...
किसी प्रबुद्ध पुरुष के साथ खड़े होना खतरे से खाली नहीं, क्योंकि वह
तो नशे में है। वह तो बहका हुआ है। वह तो रामरस पीए खुमारी में डूबा है। उसके तो पैर डगमगा रहे हैं। उसकी तो बात भी नशीली है, मादक है। उसकी तो बात भी क्रांति है, आग है, आग्नेय है।
मेरा साथ दे न सकोगे तुम
मुझे मेरे हाल पे छोड़ दो
मेरी हर कदम में हैं लग्जिशें
कहां तक चलोगे सम्हाल कर
मैं नशे में आके बहक गया...
उसके साथ चलना हो तो थोड़ी छाती चाहिए। हिसाबी-किताबी मन बुद्धों के साथ नहीं चल पाता। हां, मूर्तियों के साथ ठीक है। मूर्तियों की पूजा कर लेता है। अर्चना के फूल चढ़ा आता है। धूप-दीप जला लेता है, आरती उतार लेता है। मूर्ति में क्या खतरा है? फिर महावीर की मूर्ति हो कि बुद्ध की, कोई भेद नहीं पड़ता। किसी की भी मूर्ति हो, सिर पटक आता है। क्या बिगाड़ लेगी मूर्ति? औपचारिकता है। लेकिन जिंदा महावीर के पास जाना खतरे से खाली नहीं है।
एक छोटी सी कहानी मैंने महावीर के संबंध में सुनी है। एक युवक महावीर
को सुन कर घर आया। स्नान करने बैठा है, उसकी पत्नी उसके शरीर पर मालिश कर रही है, नहाता जाता है, बात हो रही है दोनों में। उसकी पत्नी कहने लगी, सुना कि तुम भी आज महावीर को सुनने गए थे। आश्चर्य हुआ, क्योंकि कभी तुम गए नहीं, कभी तुमने रस लिया नहीं। पहली ही दफा गए। मैं तो जिस परिवार से आती हूं, वे सब महावीर के भक्त हैं। और मेरे भाई तो इतने डूब गए हैं महावीर की बातों में कि आज नहीं तो कल संन्यस्त हो जाएंगे, दीक्षा ले लेंगे, कभी न कभी दीक्षा ले लेंगे।
उस युवक ने अपनी पत्नी से पूछा, ऐसा वे कब से सोच रहे हैं? दोनों का विवाह हुए भी कोई पांच-छह-सात साल हो गए हैं। तो कहा कि वे तो मेरे विवाह के पहले से ही सोच रहे हैं। क्यों?
तो उस युवक ने खिलखिलाकर हंस दिया और उसने कहा कि कुछ नहीं, पांच-सात साल से जो आदमी सोच रहा है संन्यास लेने की, वह क्या खाक संन्यास लेगा! तेरा भाई भी नामर्द।

बात बिगड़ गई, झगड़ा हो गया। पत्नी भी जोश में आ गई। उसने कहा कि तुमने
यह किस तरह कहा? अपने शब्द वापस ले लो! मेरे भाई संन्यास लेकर रहेंगे। अरे, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, देर-अबेर की बात और है। मगर उनका निश्चय बिल्कुल दृढ़ है।
लेकिन पति ने कहा, मैं फिर कहता हूं कि तेरा भाई नामर्द। मैंने तो एक
ही बार सुना है--आज पहली बार। लेकिन इतने से मैं इतनी बात समझ गया कि जो आदमी सोच रहा है कि लेंगे संन्यास, वह नामर्द है।
पत्नी ने कहा कि तो तुम बड़े मर्द हो, तो तुम्हीं कुछ करके दिखाओ! जोश में कह गई, उसे पता न था कि बात यूं बिगड़ जाएगी। नग्न ही बैठा युवक स्नान कर रहा था, उठकर खड़ा हो गया। पत्नी ने कहा, कहां जाते हो?
उसने कहा, बात खतम हो गई। पत्नी ने कहा, मैं कुछ समझी नहीं।
वह तो दरवाजा खोलकर बाहर जाने लगा कि नंगे कहां जाते हो?
उसने कहा, बात खतम हो गई। अब नंगा तो होना ही है, तो महावीर के पास जाकर नंगा क्या होना, यहीं से नंगा चला जाता हूं!
पत्नी दौड़ी। घर के लोगों को कहा कि पकड़ो, रोको, इनको क्या हो गया है? बहक गए हैं!
लेकिन उस युवक ने कहा कि अब बात बहुत आगे निकल गई, अब लौट नहीं सकता हूं। उसी दिन महावीर से जाकर उसने दीक्षा ले ली। महावीर भी थोड़े हैरान हुए, क्योंकि और लोग दीक्षा लेने आते थे तो घर से तो कपड़े पहनकर आते ही थे। वहां महावीर के नंगों की जमात थी, वहां कपड़े उतारने में कुछ हर्जा भी न था। लेकिन यह घर से ही नंगा चला आ रहा है! महावीर ने भी पूछा कि भई, मैंने बहुत लोगों को दीक्षा दी, वे सब कपड़े पहनकर आते हैं; बल्कि सच तो यह है, जो उनके सुंदरतम कपड़े होते हैं वे पहनकर आते हैं, क्योंकि अब आखिरी बार, बस अब एक बार और, फिर तो छूटे। और फिर जब छोड़ ही रहे हैं तो सुंदरतम पहनकर, लोग भी देख लें। तो बिल्कुल अपने तगमें इत्यादि लगा कर आते हैं, सुंदरतम वस्त्र पहनकर आते हैं। अगर राजा के बेटे होते हैं... और यह राजा का बेटा था... तो अपना मुकुट भी बांधकर आते हैं, हीरे-जवाहरात के आभूषण पहनकर आते हैं। दिखावा आखिरी कर लें। प्रदर्शन करने की इच्छा तो जाती ही नहीं। तू कैसा आदमी, नंगा ही चला आया!
और उसके पीछे बड़ी भीड़ चली आ रही थी, घर के लोग चले आ रहे, पत्नी रोती चली आ रही कि तुम लौट चलो, मैं अपने शब्द वापस लेती हूं, यह तुम क्या करते हो? कुछ मेरी भी तो सोचो। अरे, यह तो बात ही थी, यूं ही मजाक कर रही थी।
मगर उसने कहा, अब बात बहुत आगे निकल गई। मजाक बहुत हो गई। मैं तो सोच
ही रहा था। तू दुखी न हो। मैं तो पक्का ही कर रहा था। मैं तो तेरा धन्यवाद करता हूं कि तूने अवसर दे दिया, नहीं तो मुझे अपनी तरफ से कहना पड़ता। मैं यह सोच ही रहा था कि नहा-धोकर जाऊं और दीक्षा ले लूं और तूने बात उठा दी। तो निर्णय वहीं मैंने घोषणा कर दिया। तू चिंता न कर। तेरे कारण संन्यास नहीं हुआ है; किसी के कारण कहीं संन्यास होता है! मेरे भीतर ही बात उठी है।
ऐसी हिम्मत चाहिए, एन.आर. बंसल, धार्मिक व्यक्ति के साथ होने के लिए। लेकिन सांप्रदायिक होने के लिए तो कोई हिम्मत चाहिए नहीं। संप्रदाय तो भीड़-भाड़ हैं, भेड़ों की जमातें हैं। सिंहों के नहीं लेहड़े! वह जो जागने का साहस रखता है, वह तो भीड़-भाड़, वह जो समूह है करोड़ों का पृथ्वी पर बसा हुआ, उससे उसे हटकर चलना पड़ता है। उसे तो अपनी लकीर खुद खोजनी पड़ती है। उसे तो इस जीवन के गहन बीहड़ वन में अपना मार्ग खुद चलकर बनाना पड़ता है।
किसी बुद्धपुरुष के साथ होना जीवन को जुए की तरह दांव पर लगाना है। यह काम जुआरियों का है। यह काम शराबियों का है। और किसी बुद्धपुरुष के साथ होने के लिए तैयारी चाहिए, कि वह तुम्हारे एक-एक विचार को खंडन करेगा, एक-एक तुम्हारी प्रतिमा को तोड़ेगा, तुम्हारी एक-एक धारणा को ध्वस्त करेगा। यूं लगेगा कि तुम्हें जला रहा है, अग्नि में तपा रहा है। आग में खड़े रहने की, चोटें सहने की; सहने ही नहीं, सहकर अनुग्रह भी अनुभव करने की जब क्षमता होती है, तब कोई व्यक्ति धार्मिक होता है। नहीं तो धर्म के नाम पर संप्रदाय चलता है और संप्रदाय तो अंधों की भीड़ है, टकराती रहेगी। सदा टकराती रही है, आगे भी यही होने वाला है, इसमें कुछ भेद नहीं पड़ सकता है।

पीवत रामरस लगी खुमारी
तीसरा प्रवचन

रब्ब दा की पाना

पहला प्रश्नः ओशो, संत बुल्लेशाह का वचन है--रब्ब दा की पाना,
एथों पुटिया, ते एथे लाना।
"अर्थात परमात्मा का क्या पाना, यहां से उखाड़ना और वहां लगाना।"
ओशो, क्या इतनी सी ही बात है?

सुरेंद्र सरस्वती, सरल है बात, यही कठिनाई है। कठिन होती तो कठिन न होती, क्योंकि कठिन बात के लिए तो अहंकार बहुत आतुर होता है। कठिनाई में अहंकार को चुनौती है, आमंत्रण है, बुलावा है। जितनी कठिन हो--असंभव हो तो और भी भला--और आदमी करने की ठान लेता है। गौरीशंकर पर चढ़ेगा। पाने को वहां कुछ भी नहीं, मगर अहंकार अद्वितीय होने का मजा लेना चाहता है। चांद पर जाएगा, कंकड़-पत्थर लाएगा। यहीं कुछ कमी है कंकड़-पत्थरों की? मंगल पर पहुंचेगा, दूर के सितारों पर भी एक दिन जाकर रहेगा; हाथ कुछ भी न लगेगा। पर यह दंभ कि मैं हूं पहला व्यक्ति जो गौरीशंकर पर चढ़ा, कि मैं हूं पहला व्यक्ति जो चांद पर चला! जीवनभर लोग न्योछावर करते थे ऐसी ही मूढ़ताओं पर। कोई राष्ट्रपति होना चाहता है, कोई प्रधानमंत्री होना चाहता है। हाथ कुछ भी लगता नहीं। लेकिन सत्तर करोड़ के देश में एक ही व्यक्ति हो सकता है राष्ट्रपति। अहंकार को पोषण मिलता है।
इसलिए इस बात को खयाल में रखनाः कठिन कठिन नहीं मालूम होता। सरल ही कठिन हो गया है। स्वयं को पाना इतना सरल है, इसीलिए तो बहुत कम लोग उसे पा सके।
तुमने भी बुल्लेशाह के वचन के अनुवाद में जरा सी भूल कर दी। मुझे तो बुल्लेशाह की भाषा नहीं आती, लेकिन शहनशाहों की जो भाषा है वह मुझे मालूम है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि तुमने भूल कर दी।
बुल्लेशाह का वचन हैः रब्ब दा की पाना!
परमात्मा का क्या पाना? क्योंकि परमात्मा को तो पाया ही हुआ है। वह तो मिला ही हुआ है। वह तो तुम्हारे भीतर विराजमान ही है। उससे कभी छूटे नहीं। उससे कभी बिछुड़े नहीं। जिससे बिछुड़ न सको उसी का नाम तो परमात्मा है। चाहकर भी जिसे खो न सको, भागकर भी जिससे भाग न सको, उसी का नाम तो परमात्मा है। मछली तो शायद सागर छोड़ भी दे, क्योंकि सागर के बाद और भी कुछ है, बहुत कुछ है; मछुए हैं, मछुओं के जाल हैं; उत्तप्त रेत के तट हैं, चट्टानें हैं। लेकिन आदमी तो परमात्मा के सागर को छोड़कर कहां जाएगा? श्वास है तो उसकी, हृदय की धड़कन है तो उसकी। जीवन अर्थात परमात्मा। जन्मे हो परमात्मा में, जीयोगे परमात्मा में, एक दिन उसी में पिघलोगे और लीन भी हो जाओगे।
मुझसे लोग पूछते हैं, परमात्मा को कहां पाएं? और मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि तुमने खोया कहां, खोया कब? खोया हो तो मैं तुम्हें पाने का रास्ता बता दूं। कहां खोया है, तो उस जगह को हम खोज लें। न खोया है, न खो सकते हो और पाने की पूछ रहे हो! मगर अहंकार पाने की भाषा जानता है। सिर्फ एक भाषा उसे आती है--पाना। तो अहंकार पूछता है, परमात्मा को कैसे पाना? और यह अहंकार ही है जिसने परमात्मा को दूर सात आसमानों के पार बिठा रखा है। उतने दूर बिठाओगे तभी अहंकार को रस आता है, कि चलो, बात चलने जैसी है, पाने जैसी है। सिद्ध होना है, संत होना है, महात्मा होना है, मुक्त होना है। निर्वाण पाना है।
बुल्लेशाह यह कह रहे हैंः रब्ब दा की पाना!
कहां की पागलपन की बातों में पड़े हो? क्या पाना परमात्मा को? अरे, उसे पाया ही हुआ है! इतना जानना भर है। इतना पहचानना भर है। परमात्मा यानी आत्म-परिचय, अपनी पहचान। जैसे कोई दर्पण में अपने चेहरे को देखे तो क्या तुम कहोगे कि उसने चेहरा पा लिया? चेहरा तो सदा से था, दर्पण न था तब भी था। अभी दर्पण को गिरा दोगे और चकनाचूर कर दोगे, हजार टुकड़े हो जाएंगे, तो क्या तुम सोचते हो चेहरे के हजार टुकड़े हो जाएंगे? दर्पण चूर-चूर हो जाएगा,

चेहरा तो अखंड ही रहेगा। दर्पण खो जाएगा, लेकिन चेहरा तो न खो जाएगा।
हालांकि दर्पण ने थोड़ा सा सहारा दिया, बस इतना सहारा कि जो अपना था उसे दिखला दिया कि अपना है। बस, ध्यान इतना ही करता है। ध्यान दर्पण है।
जब सिकंदर भारत से वापस लौटता था तो एक फकीर ने उसे एक भेंट दी थी। भेंट बड़ी अजीब थीः एक छोटा सा दर्पण। कहानी प्यारी है। सिकंदर ने पूछा कि तुम देखते हो, इतने हाथी, इतने ऊंटों, इतने घोड़ों पर हीरे-जवाहरात, सोने- चांदी को लाद कर मैं ले जा रहा हूं, और तुम भेंट दे रहे हो यह छोटा सा दर्पण! दर्पण की कुछ मेरे देश में कमी है?
वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, यह दर्पण कुछ और ही ढंग का है। इसमें जब तुम देखोगे तो देह की छाया न बनेगी, तुम्हारी छाया बनेगी। असली चेहरा दिखाई पड़ेगा। यह चेहरा नहीं जो आंखों की पकड़ में आ जाता है; वह चेहरा जो आंखों की पकड़ के पार रह जाता है।
सिकंदर ने उस दर्पण में देखा और चकित हुआ, हैरान हुआ, भरोसा न कर सका। देह का तो कोई प्रतिफलन नहीं बना था, लेकिन चेतना की झलक थी, चैतन्य की ज्योति थी, आभा थी।
यह तो कहानी है। यह कहानी इतना ही कह रही है कि उस फकीर ने ध्यान की कोई विधि दी होगी सिकंदर को, बस। ध्यान यानी दर्पण। और दर्पण उससे पहचान करा देता है जो तुम्हारे पास है।
रब्ब दा की पाना!
पाने की बात ही छोड़ दो। पाने की भाषा ही लोभ की भाषा है, महत्वाकांक्षा की भाषा है, पागलपन की भाषा है। मिला ही हुआ है। पहले उसे तो देख लो जो मिला ही हुआ है। क्योंकि जिसने उसे देखा उसने सब पा लिया; उसकी पाने की दौड़ ही गिर गई।
लेकिन इस वचन के आधे हिस्से में तुमसे भूल हो गई।
रब्ब दा की पाना, एथों पुटिया ते एथे लाना।
तुमने अनुवाद किया है--परमात्मा का क्या पाना, यहां से उखाड़ना और वहां लगाना। नहीं, यहीं से उखाड़ना और यहीं लगाना। साफ है--
एथों पुटिया ते एथे लाना।
यहीं से यहीं लाना। यहां और वहां में तो तुमने फासला कर लिया। उतने फासले में भी अहंकार को मजा आ जाता है। वह अज्ञान की भाषा है--यहां से वहां। यहां से यहां, वह ज्ञान की भाषा है। और यह साफ है। मुझे भाषा नहीं आती बुल्लेशाह की, लेकिन तुम भी देख सकते हो--
एथों पुटिया ते एथे लाना।
यहीं बैठा है और यहीं लाना है। न कहीं जाना है, न कहीं से उखाड़ना है, न कहीं लगाना है। यहीं लगा है। बस, विस्मरण हो गया है। स्मरण करना है। खोया नहीं है परमात्मा, सिर्फ याद खो गई है।
हजारकतरासही, बहरे-बेकरांसालगे
वो एक दर्दकालम्हाकिजाविदांसालगे
किसेपड़ीथीकिदश्ते-सराबमेंआता
मुझे तो शहर के प्यासोंकाकारवांसालगे
दिलों पे पड़नेलगेमसलहत के साए से खुलूसे-शौकभीअबजिन्से-रायगांसालगे शिकस्ते-ख्वाबकोईतुर्फासानिहाभीनहीं किसी पे गुजरेतोकमबख्त नागहांसालगे न जानेगर्दे-सफरहैकिआंधियोंकागुबार जिधरनिगाहउठाऊं, धुआं-धुआंसालगे बसीहुईहैंहवाएं, जुनूं की खुशबूमें फिरआजदामने-तमकींकाइम्तिहांसालगे ये औरबातहै, यारों ने कम-सुखनजाना मिरा ये हालकिहरलफ्जदास्तांसालगे अजीबवहमकिहरसंगे-आस्तांमुझसे खफा-खफासानजरआए, बदगुमांसालगे जराहतों के चमनजैसे खिलउठे "तांबां

जमानाअहले-मोहब्बत पे मेहरबांसालगे
हजारकतरासही, बहरे-बेकरांसालगे
वो एक दर्दकालम्हाकिजाविदांसालगे
एक बूंद की पहचान हो जाए कि सब सागर पहचान में आ गए।
हजारकतरासही, बहरे-बेकरांसालगे
यूं तो लगता है एक छोटी सी बूंद--अनुभव की, ज्ञान की उस परम प्यारे को पाने की एक छोटी सी बूंद की प्यास। मगर खोजने चलो तो अथाह सागर मिलता है इसी बूंद में।
वो एक दर्दकालम्हाकिजाविदांसालगे
और उसे याद करने का, विरह का, उसके प्रेम में जलने का वह एक छोटा सा क्षण...
वो एक दर्दकालम्हाकिजाविदांसालगे
लेकिन यूं लगता है जैसे शाश्वतता मिल गई। उसके बिना, उसे बिना पहचाने, तुम अनंत काल तक भी जीओ तो केवल मरते हो, सड़ते हो। उसे पाने की आकांक्षा भी उठ आए, उसे खोजने की जिज्ञासा भी जग आए, पीड़ा उठे, दर्द उठे, विरह की अग्नि जगे, तो एक क्षण भी पर्याप्त है, शाश्वत मालूम होगा। क्योंकि उसी क्षण से द्वार खुल जाता है। उसी बूंद से सागर का द्वार खुल जाता है। किसेपड़ीथीकिदश्ते-सराबमेंआता
मुझे तो शहर के प्यासोंकाकारवांसालगे
और यह क्या है दुनिया? और यह क्या है भीड़-भाड़? और यह क्या है संसार? प्यासों की कतारों पर कतारें।
... प्यासोंकाकारवांसालगे
लेकिन प्यासे हैं जरूर, मगर पानी की तलाश नहीं करते। और पानी भीतर भरा है, जल के स्रोत और झरने भीतर हैं। दुनियाभर में खोजते हैं, दौड़ते फिरते हैं--कहां-कहां नहीं दौड़ते! धन में, पद में, प्रतिष्ठा में। कुछ पाते नहीं। जरा भी प्यास मिटती नहीं। जी लेते हैं और मर जाते हैं। कुछ हाथ नहीं, खाली हाथ आते हैं खाली हाथ जाते हैं। थोड़ा गंवाकर ही जाते हैं। क्योंकि बच्चा जब पैदा होता है तो कम से कम मुट्ठी तो बंधी होती है, खाली है तो भी कोई बात नहीं, मगर मुट्ठी बंधी तो होती है। कहते हैंः बंधी तो लाख की और खुली तो खाक की। कम से कम बच्चे की मुट्ठी तो बंद होती है! मरता है आदमी तो वह मुट्ठी भी खुल गई। बंधी थी तो लाख की थी, खुल गई तो खाक की हो गई। कुछ लेकर नहीं आते, कुछ लेकर जाते नहीं। यूं व्यर्थ ही आपाधापी कर लेते हैं। और बहुत आपाधापी!
न जानेगर्दे-सफरहैकिआंधियोंकागुबार
पता नहीं... ! इतनी धूल-धवांस।
न जानेगर्दे-सफरहैकिआंधियोंकागुबार
जिधरनिगाहउठाऊं, धुआं-धुआंसालगे
जरा आंख तो उठाकर देखो, हर आदमी धुंधिया रहा है। किसी की जीवन-ज्योति
जल नहीं रही। इस उपद्रव में, जिसे तुम संसार कहते हो, कुंजी जो सारे तालों को खोल दे, सारे द्वारों को खोल दे, तुम अपने साथ लाए हो। मगर चूंकि साथ लाए हो, इसीलिए भूले बैठे हो। चूंकि जन्म से ही साथ लाए हो, इसलिए स्मरण भी नहीं होता। थोड़ी दूरी चाहिए देखने के लिए। अगर आईने के बिल्कुल पास खड़े हो जाओ, आंखें आईने से ही लगा दो, तो आईने में भी कुछ दिखाई न पड़ेगा; आईना भी दीवाल हो जाएगा। थोड़ा फासला चाहिए। और हमारे और परमात्मा के बीच जरा भी फासला नहीं, कोई फासला करने का उपाय नहीं, क्योंकि हम ही परमात्मा हैं। अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक! उपनिषद कहते हैंः तत्वमसि! तुम वही हो।
नहीं, सुरेंद्र सरस्वती, अनुवाद ऐसा न करना कि परमात्मा का क्या पाना, यहां से उखाड़ना और वहां लगाना! यहां और वहां में पता नहीं कितना फासला हो जाए। यहां और वहां का ही तो उपद्रव है। यहीं, और कहीं नहीं। एथों पुटिया ते एथे लाना। यहीं है और यहीं लाना है। इसलिए तो धर्म की बात बेबूझ मालूम होती है।
सोचना पड़ता है, कैदे-बामो-दर में क्या न था
वहशतों के घर में क्या है, मेरे घर में क्या न था

फासलों की गर्द ने धुंदला दिए मंजर तमाम
वर्ना हम आवारागर्दों की नजर में क्या न था
चंद यादों के अलावा, चंद जख्मों के सिवा
जिंदगी की शाम में क्या है, सहर में क्या न था शोरिशें ही शोरिशें थीं, जिंदगी ही जिंदगी सोचिए
तो एक मुश्ते-बालो-पर में क्या न था
छोड़िए भी, अब तलाशो-जुस्तजू से फायदा!
हां कभी वो दिन भी थे दिल के नगर में क्या न था
अक्ल बेचारी दलीलों में उलझकर रह गई
वर्ना "ताबां" उस निगाहे-मुख्तसर में क्या न था
यह बुद्धि है, यह विचार है, यह तर्क है, जो न मालूम किन झंझटों में उलझकर रह गया है; नहीं तो एक संक्षिप्त सी नजर, एक छोटी सी नजर और सब राज खुल जाएं।
अक्ल बेचारी दलीलों में उलझकर रह गई
वर्ना "ताबां" उस निगाहे-मुख्तसर में क्या न था
उस संक्षिप्त सी नजर में, देखने का एक ढंग, एक सलीका और सब राज खुल जाते हैं।
फासलों की गर्द ने धुंदला दिए मंजर तमाम
यह फासले की ही तो धुंध है। यह फासले की ही तो गर्द है--यहां से वहां,
और फासला हुआ।
फासलों की गर्द ने धुंदला दिए मंजर तमाम
उसी के कारण तो सभी दृश्य धुंधले हो गए हैं। आंखें धुंधली हो गई हैं
तो दृश्य धुंधले हो गए।
वर्ना हम आवारागर्दों की नजर में क्या न था
यूं आवारा गर्द हो गए हैं। यहां से वहां भागे फिर रहे हैं। एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव पर भागे फिर रहे हैं। आवारागर्द हो गए हैं।
वर्ना हम आवारागर्दों की नजर में क्या न था
हमारी आंख में तो सब छिपा है। हमारे देखने के ढंग में तो सब छिपा है। शोरिशें ही शोरिशें थीं...
क्रांति हमारे भीतर है, विप्लव हमारे भीतर है, आग हमारे भीतर है।
शोरिशें ही शोरिशें थीं, जिंदगी ही जिंदगी
और जिंदगी ही जिंदगी तुम्हारे भीतर है। जीवन, और जीवन, और जीवन, अनंत जीवन!
सोचिए तो एक मुश्ते-बालो-पर में क्या न था
एक पक्षी को जब तुम आकाश में उड़ते देखते हो तो कभी सोचा--एक मुट्ठी भर मिट्टी, थोड़े से बाल, थोड़े से पंख, मगर क्या गजब की उड़ान! सारा आकाश उन दो छोटे से पंखों से हार जाता है। यूं तो हम बहुत छोटे हैं--एक मुट्ठी खाक, थोड़े से पंख, थोड़े से बाल। मगर सारा आकाश हमारा हो सकता है। यूं तो हम बूंद हैं, मगर सागर हमारा हो सकता है। उलझ गए हैं लेकिन एक बात में--
अक्ल बेचारी दलीलों में उलझकर रह गई वर्ना "ताबां"
उस निगाहे-मुख्तसर में क्या न था
जरा आंख को बदलो। यहां से वहां की बात की, कि चक्कर में पड़े। फिर यह रुकेगी कहां? तुम जहां पहुंचोगे वहां होगा--यहां। और परमात्मा होगा वहां। तुम जहां भी जाओगे वहीं उसे नहीं पाओगे। क्योंकि वह कभी यहां होगा नहीं और तुम कभी वहां नहीं हो पाओगे। तुम होओगे आज, परमात्मा होगा कल। और जब भी हाथ में आएगा तो आज आएगा; कल तो किसी के हाथ में आता नहीं। तो पाओगे कैसे? वह तो क्षितिज की तरह दूर ही रह जाएगा।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः परमात्मा को बाहर सोचने की दृष्टि ही गलत है। उसे दूर सोचने का भाव ही गलत है। न तो उसे मंदिरों में पूजो, न मस्जिदों में पुकारो, न गिरजों में, न गुरुद्वारों में उसकी तलाश करो। यह जुस्तजू बेकार है। यह खोज व्यर्थ है। अपने भीतर चलो। आंख बंद करो, अपने में डुबकी मारो।
तूफां के बाद बहर-ब-दस्तूर हो गया

टकरा के इक सफीना मगर चूर हो गया
निखरा हुआ है रंग जफाओं का
इन दिनों अब कम-निगाहियों का गिला दूर हो गया दिल यूं भी बेनियाजे-करम-हाए दोस्त था
खाकर शिकस्त और भी मगरूर हो गया
दस्ते-तलब से दूर न था दामने-करम
लेकिन मैं पासे-वजा से मजबूर हो गया
इक जुंबिशे-निगाह ने मंजर बदल दिया
आलम तमाम हुस्न से मामूर हो गया
"ताबां" इताबे-नाज से दिल का मुआमला!
इक हादिसा फिर आज सरे-तूर हो गया
थोड़ा सा तूफान है, मगर तूफान भी तो सागर का हिस्सा है। तूफान के पहले
भी सागर शांत था, तूफान के बाद भी सागर शांत हो जाएगा। यह विचारों का तूफान है हमारी चेतना के सागर में। इसके पहले भी सन्नाटा था, इसके बाद भी सन्नाटा हो जाएगा। विचार के पहले भी ध्यान है, विचार के बाद भी ध्यान है। विचार के पहले भी भगवान है, विचार के बाद भी भगवान है। यह विचार का थोड़ा सा तूफान है, बस इसे बैठ जाने दो।
तूफां के बाद बहर-ब-दस्तूर हो गया
तूफान चला जाता है, सागर फिर पूर्ववत हो जाता है।
तूफां के बाद बहर-ब-दस्तूर हो गया
टकरा के इक सफीना मगर चूर हो गया
लेकिन इस बीच एक सफीना, एक नाव टकराएगी और टूटेगी--वह तुम्हारे अहंकार
की नाव है। अगर तुमने उसको बचाया तो तुम परमात्मा से चूकते रहोगे। डूबना सीखना होगा, मिटना सीखना होगा। यह नाव तभी पार लगेगी जब डूबे। डूबे तो ही पार लगे। जो डूबे वही ऊबरे। अगर डूबने की हिम्मत नहीं है तो कभी उबर भी न सकोगे। मगर अहंकार बचना चाहता है।
दिल यूं भी बेनियाजे-करम-हाए दोस्त थाखाकर शिकस्त और भी मगरूर हो गया
और जितने हारते हो उतना ही अहंकार अकड़ता जाता है, कि चलो कोई बात नहीं,
इस बार हारे तो अगली बार जीतेंगे, एक दांव और सही, एक प्रयास और सही। छोटे-छोटे बच्चों को हम सिखाते हैं कि फिक्र मत करो, अरे, आज हार गए तो
कल जीतोगे; इस बार हार गए तो अगली बार जीतोगे। करते रहो हमला। निराश न होओ, हताश न होओ।
और यही चलता रहता है जिंदगी भर। न कभी कोई जीता है यहां, न कभी कोई जीत सकता है। इस संसार में हार के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगता नहीं।
हां, जीते कुछ लोग, मगर वे संसार में नहीं जीते, वे स्वयं में जीते। कोई बुद्ध जीता, कोई महावीर जीता, कोई लाओत्सु जीता, कोई जरथुस्त्र जीता, कोई कबीर, कोई नानक--मगर भीतर। यह जीत भीतर घटी, बाहर नहीं। यह साम्राज्य भीतर का है, बाहर का नहीं।
दस्ते-तलब से दूर न था दामने-करम
मांगने वाले हाथ से वह देने वाला दामन बहुत दूर नहीं, जरा भी दूर नहीं, बिल्कुल भी दूर नहीं।
दस्ते-तलब से दूर न था दामने-करम
वह कृपा की वर्षा अभी हो जाए, मगर हाथ फैलाने में ही अहंकार को झिझक होती है; मांगने में ही अड़चन आ जाती है।
दस्ते-तलब से दूर न था दामने-करमलेकिन मैं पासे-वजा से मजबूर हो गया लेकिन वह अहंकार की पुरानी आदत हाथ फैलाने नहीं देती। वह अकड़े रखती है। बहुत दूर नहीं है, जरा भी दूर नहीं है। तुम हाथ फैलाओ कि अभी मिल जाए। तुम सरल हो जाओ तो अभी मिल जाए। तुम विनम्र हो जाओ तो अभी पा जाओ।
जीसस ने कहा हैः "धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उनका है।"
और जरा सी बात में सब बदल जाता है।
इक जुंबिशे-निगाह ने मंजर बदल दिया
नजर की हलकी सी थरथराहट!

इक जुंबिशे-निगाह...
इक जुंबिशे-निगाह ने मंजर बदल दिया
सारा दृश्य ही बदल गया।
आलम तमाम हुस्न से मामूर हो गया
सारा संसार उस परमात्मा के सौंदर्य से लबालब हो उठता है। एक जरा सी थरथराहट नजर की, देखने के ढंग का बदल जाना। अभी तुम देखते हो, दूर परमात्मा है--यूं मान कर। जिस दिन यह सोचकर देखोगे कि भीतर है, स्वयं में--बस जरा सी थरथराहट!
"ताबां" इताबे-नाज से दिल का मुआमला!
इक हादिसा फिर आज सरे-तूर हो गया
तूर पर्वत पर हजरत मूसा को परमात्मा का प्रकाश दिखाई पड़ा था। तुम जरा
सी नजर बदलो और तुम्हारे भीतर ही तूर पर्वत प्रगट हो जाए और तूर पर्वत का प्रकाश प्रगट हो जाए। वह तूर का पर्वत कहीं बाहर नहीं है।
"ताबां" इताबे-नाज से दिल का मुआमला! इक हादिसा फिर आज सरे-तूर हो गया तुम्हारे भीतर ही रोशनी हो जाए--वही रोशनी जो तूर पर्वत पर हुई थी। वह पर्वत कहीं बाहर नहीं है। वह तुम्हारी ही ऊंचाई है, तुम्हारी ही चेतना की ऊंचाई है।
सुरेंद्र सरस्वती, ऐसा मत कहो कि यहां से उखाड़ना वहां लगाना। नहीं, यहीं है, यहीं लगाना, यहीं देखना। इस क्षण में ही सब कुछ है। मैं राजी हूं बुल्लेशाह से। ये बुल्लेशाह उन थोड़े से फकीरों में एक हैं, जिनको सच में ही शाह कहा जाए, शहंशाह कहा जाए। ये बादशाहों में से एक हैं।
ठीक कहते हैंः रब्ब दा की पाना, एथों पुटिया ते एथे लाना।

दूसरा प्रश्नः ओशो, हरेकृष्ण आंदोलन के एक स्वामी, स्वामी अक्षयानंद महाराज ने कल पूना में अपने एक प्रवचन में आपकी तथा आपके संन्यासियों की आलोचना की है कि पर-स्त्री संबंध तथा गर्भपात द्वारा हत्या का समर्थन करने वाले आचार्य भगवान नहीं, प्रथम कोटि के राक्षस हैं। स्वामी अक्षयानंद महाराज ने यह भी कहा कि सौभाग्य से हमारे शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि कलियुग में रावण जैसे लोग होंगे, जो कि स्वयं को भगवान घोषित करके सीधे-सादे लोगों को मार्गच्युत करेंगे। अपने प्रवचन में स्वामी अक्षयानंद महाराज ने यह भी कहा कि भटके हुए विदेशी नागरिक संतों जैसे वस्त्र पहनकर सार्वजनिक स्थलों पर प्रणय आदि का निर्लज्ज प्रयोग कर रहे हैं। तथा उन्होंने ऐसे घृणित कार्य के लिए चिंता और आक्रोश प्रगट किया। ओशो, स्वामी अक्षयानंद महाराज की इस परोक्ष टीका पर आप क्या कहेंगे?

चैतन्य कीर्ति,
पहली तो बात यह कि स्वामी अक्षयानंद महाराज अमरीकी हैं, लेकिन कह रहे हैं कि "हमारे शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि कलियुग में रावण जैसे लोग होंगे... ।"
हिंदुओं के अहंकार को इससे बड़ी तृप्ति मिलती है, सफेद चमड़ी का कोई आदमी कह दे कि "हमारे शास्त्र"... हृदय गदगद हो जाता है। एकदम फूल ही फूल खिल जाते हैं, दीए ही दीए जल जाते हैं। काश, मैं भी अपने विदेशी संन्यासियों को यही समझा रहा होता कि इन सड़े-गले शास्त्रों का समर्थन करो, इन लाशों को सिर पर ढोओ, इनका गुणगान करो, स्तुति करो, तो तुम्हें भी पूजा मिलती, तुम्हें भी सम्मान मिलता! भारत तुम्हें सिर-आंखों पर उठा लेता। पलक-पांवड़े बिछ जाते। जगह-जगह वंदनवार बंध जाते। लेकिन तुम पर पत्थर फिकेंगे, तुम्हें गालियां सहनी पड़ेंगी, तुम्हें राक्षस कहा जाएगा। तुम इस देश के सड़े-गले अहंकार को कोई समर्थन नहीं दे रहे हो।
विवेकानंद के साथ सिर्फ एक अमरीकी महिला निवेदिता आ गई थी, सारे भारत में शोरगुल मच गया था कि भारी काम कर दिया विवेकानंद ने! एक विदेशी महिला को रूपांतरित कर दिया, हिंदू बना दिया। मेरे दो लाख संन्यासी हैं सारी दुनिया में, लेकिन हिंदुओं के अहंकार को या भारतीयों के अहंकार को इससे कोई समर्थन नहीं मिल रहा; यही अड़चन है, यही कठिनाई है।

और जिन शास्त्रों की अक्षयानंद महाराज बात कर रहे हैं, इनको उन शास्त्रों का कुछ पता है? अमरीकी भोंदू, इनको क्या शास्त्रों का पता है? मगर इनके जो गुरु थे भक्तिवेदांत प्रभुपाद, वे चमत्कारी पुरुष थे। उनका चमत्कार यही था कि दुनिया में जहां भी भोंदू थे, मूढ़ थे, उनकी तरफ चुंबक की भांति खिंचते थे। इतनी तो मैं बात स्वीकार करूंगा कि प्रभुपाद में इतना गुण तो था, कि कुछ खूबी थी, कि मूर्ख एकदम उनके आसपास इकट्ठे हो जाते थे। सिर घुटाकर, चुटैयों में गांठें बांधकर हरेकृष्णा-हरेरामा का भजन करने लगते थे, ढोल-मंजीरा पीटने लगते थे। और तोतों की तरह भारतीय शास्त्रों को दोहराते थे, जिनका उनको न कुछ अर्थ पता है, न जिनका संदर्भ पता है।
अब ये जिन शास्त्रों की बात कर रहे हैं, थोड़ा उन शास्त्रों का खयाल करो। भारत में जिनको भगवान कहा है, उनकी तरफ थोड़ा ध्यान करो। परशुराम को भगवान कहा है। उनका नाम ही परशुराम पड़ा, क्योंकि वह परसा लिए रहते थे, फरसा लिए रहते थे। परस वाले राम। वे हाथ में फरसा लिए रहते थे। वे सबसे पहले सरदार थे। और कहते हैं उन्होंने पृथ्वी को अठारह बार क्षत्रियों से खाली कर दिया था। गजब के ब्राह्मण थे! अठारह बार पृथ्वी से सारे क्षत्रिय उन्होंने मार डाले। और राक्षस मैं! एक क्षत्रिय मैंने मारा नहीं। क्षत्रिय की तो बात ही छोड़ो, एक तिलचट्टा भी नहीं मारा। लेकिन मैं रावण, मैं राक्षस--और परशुराम भगवान, जिन्होंने अठारह बार सारी पृथ्वी को क्षत्रियों से समाप्त कर दिया! हद दर्जे के दुष्ट आदमी रहे होंगे। बाप को शक हो गया उनकी मां पर और परशुराम को उन्होंने आज्ञा दे दी कि जाकर गर्दन काट दे। बाप की आज्ञा कहीं छोड़ सकते थे! परशुराम गए और मां की गर्दन काट दी। यह आदमी भगवान! और हिंसा क्या होती?
और राम तो धनुर्धारी राम हैं ही, वे तो हिंसा का प्रतीक ही लिए हैं! और लंका में आग लगा दी। लंका को धू-धू कर के जला डाला! और हिंसा मैं करवा रहा हूं! रावण मैं हूं! रामराज्य में आदमी और औरतें बाजारों में गुलामों की तरह बिकते थे, स्त्रियों पर नीलाम लगाए जाते थे, और फिर भी यह सतयुग था! और एक ब्राह्मण का बेटा मर गया तो उस ब्राह्मण ने जाकर राम की अदालत में कहा कि मेरा बेटा मर गया है, जो कि नहीं मरना चाहिए, क्योंकि बाप जिंदा और बेटा मर जाए यह बात ठीक नहीं, कहीं न कहीं कोई अनाचार हो रहा है। तो राम ने कहा कि पता लगाओ कहां अनाचार हो रहा है। पता यह लगा कि उस ब्राह्मण के घर से एक हजार मील दूर एक गांव में एक शूद्र ने वेद का मंत्र सुन लिया था। यह अनाचार हो रहा था! यह अत्याचार हो रहा था, जिसकी वजह से ब्राह्मण का बेटा मरा! वह भी हजार मील दूर मरा। और बीच हजार मील में किसी का बेटा न मरा! स्त्रियां बाजारों में बिक रही थीं, यह पाप न था! आदमी गुलामों की तरह बिक रहे थे, सामानों की तरह बिक रहे थे--यह पाप न था! पूरी लंका को धू-धू कर के जला दिया, यह पाप न था! गर्भवती सीता को राम ने खुद जंगल में फिंकवा दिया, यह पाप न था!
जब रावण के यहां से सीता को बचाकर लौटे तो जो पहले वचन उन्होंने सीता
से कहे, अभद्र हैं। पहले वचन उन्होंने कहे कि याद रख ऐ औरत, मैंने तेरे लिए युद्ध नहीं किया है। मैंने युद्ध किया है अपनी कुल-परंपरा के लिए, रघुकुल के लिए। यह कुल की प्रतिष्ठा का सवाल था, इसलिए युद्ध किया है। कोई एक औरत के लिए मैं युद्ध करने नहीं आऊंगा।
और फिर परीक्षा ली उन्होंने सीता की कि अग्नि से गुजरो। अगर सीता की परीक्षा ली थी तो इतना तो न्याययुक्त होना ही चाहिए था कि खुद भी गुजर जाते अग्नि से, क्योंकि खुद भी इतनी देर बिना पत्नी के रहे थे, क्या भरोसा? जब स्त्री का भरोसा नहीं है तो पुरुष का क्या भरोसा? सच तो यह है कि स्त्रियों का ज्यादा भरोसा किया जा सकता है पुरुषों की बजाय। क्योंकि उस समय कोई संतति-निरोध का सामान तो था नहीं। अगर सीता ने कुछ गड़बड़ की होती तो गर्भवती हो जाती। और राम कुछ गड़बड़ करें तो पकड़ में ही नहीं आते। इसलिए तो कहते हैं कि पुरुष बच्चा, उसकी बात अलग। परीक्षा सिर्फ सीता की हुई। यह बड़ी अजीब परीक्षा हुई, खूब न्याय हुआ! ये दोहरे मापदंड हुए।
और अग्नि-परीक्षा लेने के बाद भी सिर्फ एक धोबी ने कह दिया अपनी स्त्री से कि तू रातभर कहां रही, मैं कोई राम नहीं हूं कि अब तुझे घर में रख

लूं। यह किसी जासूस ने खबर दे दी कि एक धोबी ने यह कह दिया है और गर्भवती सीता को फिंकवा दिया। अग्नि-परीक्षा का क्या हुआ? अन्याय की भी कोई हद होती है। एक तो अग्नि-परीक्षा ली अकेली सीता की, खुद न दी और अग्नि-परीक्षा के बाद भी एक धोबी ने एतराज उठा दिया और सीता को यह भी अवसर न दिया कि कम से कम उससे कह देते कि क्यों तुझे जंगल में फिंकवाया जा रहा है। अगर न्याय ही था तो धोबी को बुलाकर, धोबी की बात सुननी थी अदालत में, सीता की भी बात सुननी थी। सीता को भी हक होना था कि अपनी व्यथा कह सकती। लेकिन उसे तो कोई मौका ही नहीं दिया गया। एकतरफा न्याय हो गया। और यह कोई ऐरा-गैरा-नत्थू- खैरा, यह कोई धुब्बड़, इसने निर्णय करवा दिया। स्त्री-जाति का यह सम्मान हो रहा है! नहीं, लेकिन अहंकार की प्रतिष्ठा। और अगर ऐसा ही था तो खुद भी सीता के साथ जंगल चले जाते। लेकिन राजपाट नहीं छोड़ा, पत्नी छोड़ दी। राजपाट क्यों छोड़ें! धन-दौलत क्यों छोड़ें! प्रतिष्ठा क्यों छोड़ें! प्रतिष्ठा पर दाग न लग जाए, इसलिए स्त्री को छोड़ दिया, जंगल में फिंकवा दिया गर्भवती स्त्री को। न लाज, न शर्म, न संकोच। और फिर भी तुम राम को भगवान कहे चले जाओगे! और उस ब्राह्मण के कहने पर कि एक हजार मील दूर एक शूद्र ने वेद सुन लिया, उसके कान में सीसा पिघलवाकर भरवा दिया। फिर भी तुम राम को भगवान कहे चले जाओगे, मर्यादा-पुरुषोत्तम कहे चले जाओगे!
मैंने किसी के कान में सीसा तो पिघलवाकर भरवाया नहीं। वेद के मंत्र जरूर किसी के कान में मैंने डाले होंगे, मगर सीसा तो पिघलवाकर किसी के कान में डाला नहीं। मैं राक्षस हूं! और जिस कृष्ण के ये भक्त हैं स्वामी अक्षयानंद महाराज और इनके मरहूम गुरु, भक्तिवेदांत प्रभुपाद, उन कृष्ण का जीवन तो जरा गौर से देखो, जिन शास्त्रों की ये बातें कर रहे हैं। ये कृष्ण-आंदोलन चलाते हैं, कृष्ण-भक्त हैं ये सब। ये कृष्ण का गुणगान करते हैं, श्रीमद भागवत दोहराते हैं और गीता का पाठ करते हैं।
कृष्ण के जीवन में जितनी हिंसा है उतनी हिंसा शायद मनुष्य-जाति के जीवन में किसी व्यक्ति के संबंध में उल्लिखित नहीं है। इतिहासज्ञों का अनुमान यह है कि जैसा वर्णन है महाभारत का, अगर सच में वैसा युद्ध हुआ हो, तो उसमें कम से कम एक अरब पच्चीस करोड़ आदमी मरे होंगे, सवा अरब आदमी। अभी पृथ्वी की कुल संख्या जितनी है उसमें से एक तिहाई आदमी मरे होंगे। अभी भारत की कुल संख्या सत्तर करोड़ है, इससे करीब-करीब दो गुने आदमी उस युद्ध में मरे।
अर्जुन तो बेचारा ढोलक लेकर भजन-कीर्तन करने का विचार करता था। वह तो स्वामी अक्षयानंद हो जाना चाहता था। वह तो अपना ढोलक बजाता, हरेकृष्णा- हरेरामा करता। मगर कृष्ण ने उसे रोक लिया। और कृष्ण ने उसे दलीलें क्या दीं? कृष्ण ने दलील जो दीं, अगर वे सच हैं तो... निश्चित सच होनी चाहिए, क्योंकि यह हरेकृष्ण आंदोलन को मानने वाले लोग कृष्ण-भक्त हैं, अगर उनकी दलीलों पर उनको भरोसा है तो ये किस तरह मुझसे कह सकते हैं कि मैं गर्भपात द्वारा हत्या का समर्थन करवा रहा हूं? क्योंकि कृष्ण तो कहते हैं--न हन्यते हन्यमाने शरीरे। शरीर के मरने से मृत्यु होती ही नहीं। अग्नि में जलाने से आत्मा जलती नहीं। नैनं छिन्दंति शस्त्राणि। न तो शस्त्रों से छेदी जा सकती है। नैनं दहति पावकः। और न आग में डालो तो जलाई जा सकती है। यह तो आत्मा मरती ही नहीं। यह तो दलील दी अर्जुन को कि तू क्या फिक्र करता है, मार, बेफिक्री से मार, कोई मरता नहीं। यह जो तेरे सामने कौरवों की फौज खड़ी है, इसको जी भरकर काट, गाजर-मूली की तरह काट। क्योंकि शरीर ही मरता है, आत्मा तो कभी मरती ही नहीं, आत्मा अमर है।
यह तो बुनियादी दलील है गीता की कि आत्मा मरती नहीं। और अगर सवा अरब आदमियों को मारने से हिंसा नहीं होती तो गर्भपात से कैसे हिंसा हो जाएगी? कृष्ण भगवान हैं! अगर हिंसा के आधार पर सोचते हो, तो तो जैन शास्त्र ठीक कहते हैं। उन्होंने कृष्ण को सातवें नर्क में डाला है। अगर अक्षयानंद में थोड़ी भी बुद्धि हो, जिसका मैं जरा भी भरोसा नहीं कर सकता कि हो सकती है... । ये पंचामृत खाने-पीने वाले लोग, इनमें बुद्धि क्या हो सकती है? पंचामृत का मतलब समझते हो? गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घी--इन पांचों को मिलाकर गटक जाओ

तो पंचामृत होता है। यह तो कृष्ण-भक्तों का पुराना आहार, प्रसाद यही है-- पंचामृत! यह गोबर गोबर नहीं है।
इस दृष्टि से तो महात्मा गांधी के एक शिष्य थे भंसाली, वे सच्चे कृष्ण-भक्त थे, वे गोबर ही खाते थे। जैसे मोरारजी देसाई स्वमूत्र पीते हैं, वे गोमूत्र से भी आगे जा चुके हैं। अरे, क्या बाहर पर निर्भर रहना! भंसाली गांधी के बड़े भक्त थे, गांधी के पट शिष्यों में एक थे। वर्धा-आश्रम में उनके जैसा चमत्कारी कोई आदमी नहीं था। वे महीनों तक गोबर ही खाकर रहते थे। और महात्मा गांधी भी उनको मानते थे कि है तो यह तपस्वी! महात्मा गांधी को भी हरा दिया था उन्होंने।
कृष्ण को जैनों ने नर्क में डाला है--इसी कारण कि उन्होंने यह महाहिंसा करवाई। तो पहली तो दलील कृष्ण ने यह दी कि कोई मारने से मरता नहीं। दूसरी दलील यह दी है अर्जुन को--अगर कृष्ण के मानने वाले लोग उनकी दलीलें समझें तो बात बहुत साफ हो जाएगी--दूसरी दलील यह दी है कि परमात्मा जिसको मारना चाहता है वही मरता है। तो अर्जुन, तू तो निमित्त मात्र है। तू थोड़े ही मारने वाला है। मारने वाला तो परमात्मा है। उसने तो पहले ही ये कौरवों को मार डाला है, तू तो सिर्फ निमित्त है, धक्का दे और ये गिर जाएंगे। ये तो मरे ही खड़े हैं। तो अगर परमात्मा ही मारने वाला है और परमात्मा ही जिलाने वाला है, उसके बिना अगर पत्ता भी नहीं हिलता, तो गर्भपात से कोई मृत्यु कैसे हो जाएगी?
और फिर यह भी बड़े मजे की बात है कि मैं गर्भपात नहीं करवा रहा हूं। गर्भपात करवाने वाले लोग महात्मा गांधी, ये कृष्ण आंदोलन के बनाने वाले प्रभुपाद, ये पोप, यह मदर टेरेसा, ये लोग हैं। क्योंकि ये लोग लोगों को संतति-नियमन का उपयोग नहीं करने देते। मैं तो पक्षपाती हूं इसका कि बच्चों को भीतर गर्भ में आने तक की भी कोई जरूरत नहीं, तो गर्भपात का कोई सवाल ही नहीं उठता। गर्भपात तो ये लोग करवा रहे हैं। पहले तो कहेंगे कि जो भी संतति-निग्रह के साधन हैं उनका उपयोग मत करना, क्योंकि उनका उपयोग पाप है। फिर गरीब आदमी बच्चे पैदा कर लेगा या स्त्रियां गर्भवती हो जाएंगी। उन बच्चों को पालने की उसके पास सुविधा नहीं, वह करे क्या? फिर उनका गर्भपात करेगा। और गर्भपात के लिए जिम्मेवार मैं हूं! अगर मेरा वश चले तो दुनिया में एक भी गर्भपात नहीं होगा, क्योंकि मैं तो पूरे विज्ञान का उपयोग करने का समर्थन करता हूं। जब गोली ही लेकर बच्चे को आने से रोका जा सकता है तो बच्चे को पहले लाना और फिर गर्भपात करना, इतना उपद्रव क्यों करना? इसका क्या प्रयोजन?
लेकिन ये महात्मा गांधी तो कहते हैं कि संतति-नियमन का उपयोग मत करना, पोप कहते हैं संतति-नियमन का उपयोग मत करना। अगर बच्चों को रोकना है तो ब्रह्मचर्य से रोको। और महात्मा गांधी भी बच्चे नहीं रोक सके, पांच बच्चे पैदा किए। और महात्मा गांधी के आश्रम में जहां कि ब्रह्मचर्य का नियम था, वहां रोज ब्रह्मचर्य टूटता था। खुद महात्मा गांधी के प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलाल ने ब्रह्मचर्य तोड़ दिया, तो उनको आश्रम से निकाला गया। और प्यारेलाल ने ही महात्मा गांधी की सबसे सुंदर जीवनी लिखी; वही उनके अधिकृत जीवन कथा-लेखक हैं।
गर्भपात कौन करवा रहा है? इसका जिम्मेवार मैं हूं? मेरी बात मानी जाए
तो गर्भपात दुनिया में एक भी नहीं होगा। ये इस तरह के मूढ़ ही गर्भपात करवा रहे हैं।
और दूसरी बात उन्होंने कही कि "पर-स्त्री संबंध... ।"
कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थीं, यह स्वामी अक्षयानंद महाराज को बताना। और ये सोलह हजार स्त्रियां इनकी विवाहित स्त्रियां नहीं थीं, दूसरों की विवाहित स्त्रियां थीं। और ये राजी-खुशी भी इनके साथ नहीं आ गई थीं, ये जबर्दस्ती भगाकर लाई गई थीं। कृष्ण भगवान हैं--और मैं राक्षस! सोलह हजार क्या, मैंने सोलह स्त्रियां भी नहीं भगाईं। अगर भगवान होने के लिए सोलह हजार स्त्रियां दूसरों की उड़ाना जरूरी हो तो निश्चित ही मैं भगवान नहीं हूं और होना भी नहीं चाहता। राक्षस ही भला। अगर राक्षस रावण का कसूर इतना है कि उसने सीता भगाई, तो एक ही स्त्री भगाई थी। और कृष्ण ने सोलह

हजार स्त्रियां भगाईं। अगर एक स्त्री के भगाने से रावण राक्षस हो गया तो कृष्ण सोलह हजार गुने राक्षस हैं। और अगर सोलह हजार स्त्रियां भगाना जरूरी हैं भगवान होने के लिए तो फिर एक बटा सोलह हजार भगवान तो रावण को भी मानना पड़ेगा कृष्ण के हिसाब से। और मैंने एक भी नहीं भगाई। पराए की भगाना तो दूर, अपनी भी नहीं भगाई। इस हिसाब से मैं तो एक बटा सोलह हजार भगवान भी नहीं हूं। राक्षस भी नहीं हूं, क्योंकि किसी की सीता भी नहीं भगाई। बात तो साफ है कि मैं सतयुगी भगवानों के मुकाबले कहीं भी भगवान नहीं ठहरता। मेरे लिए तो अगर भगवान स्वीकार करना हो तो अलग ही कोटि बनानी पड़ेगी। न
तो धनुर्धारी हूं, न फरसा लिए हूं। न कृष्ण जैसा धोखा, बेईमानी, जालसाजी, झूठ, वचन-भंग कि कसम खाई थी कि युद्ध में हथियार न उठाएंगे, फिर सुदर्शन-चक्र उठा लिया। सुदर्शन-चक्र भी मेरे पास नहीं, कुछ भी नहीं मेरे पास।
कई बार मैं सोचता हूं कि यह भगवान शब्द गंदा है। और जैसे ही नया कम्यून स्थापित हो जाए, इस शब्द को त्याग करना है, क्योंकि भगवान के नाम से जो लोगों का संबंध जुड़ा रहा है, उनकी पंक्ति में मैं खड़ा नहीं होना चाहता। बता रहे हैं वे कि "पर-स्त्री संबंध और गर्भपात का समर्थन करने वाले आचार्य भगवान नहीं, प्रथम कोटि के राक्षस हैं।"
होना ही चाहिए प्रथम कोटि का राक्षस, क्योंकि ये तो कोई भी गुण मुझमें नहीं हैं। ये परशुराम की तरह लिए फरसा घूम रहे हैं कि जहां कोई दिखा क्षत्रिय कि सत सिरी अकाल, वहीं खातमा किया! न किन्हीं की स्त्रियों को मैं भगा रहा हूं। और ये सब मांसाहारी थे--ये राम, ये कृष्ण, ये सब मांसाहारी थे।
जैन शास्त्रों में उल्लेख है कि कृष्ण के चचेरे भाई नेमीनाथ, जैनों
के एक तीर्थंकर हैं। नेमीनाथ का विवाह हुआ--विवाह हो रहा था, हो नहीं पाया था, पूरा नहीं हो पाया। नेमीनाथ की जब बारात पहुंची, तो नेमीनाथ ने देखा कि हजारों पशु चिल्ला रहे हैं, मिमिया रहे हैं, क्योंकि वे बरातियों के लिए बांधकर रखे गए थे कि बराती आएं तो काटे जाएं। बरातियों का स्वागत-सत्कार करना है। तो नेमीनाथ ने पूछा, इतने पशु क्यों चिल्ला रहे हैं? क्या बात है? ये क्यों बांधे गए हैं? तो बताया गया कि ये बरातियों के स्वागत के लिए इनकी बलि दी जाएगी। नेमीनाथ के मन को ऐसी चोट पड़ी कि उन्होंने कहा कि मुझे यह विवाह ही नहीं करना। जिस विवाह में इतनी हिंसा शुरुआत में हो रही हो, मैं तो यह चला! उन्हें हिंसा से ऐसी विरक्ति हुई कि उन्होंने बरात छोड़कर जंगल की राह पकड़ी। वे चचेरे भाई थे कृष्ण के। कृष्ण थे तो अहीर। अहीर तो मांसाहारी हैं, कोई शाकाहारी नहीं।
राम भी क्षत्रिय थे, मांसाहारी थे। ये मांसाहारी भगवान हैं; निश्चित
ही मैं शाकाहारी हूं, कैसे भगवान हो सकता हूं। और ये स्वामी अक्षयानंद महाराज शास्त्रों के ज्ञाता हैं, क्या खाक शास्त्र जानते हैं? राम के जीवन में उल्लेख है कि जब वे वन जा रहे हैं तो अहिल्या पत्थर होकर पड़ी है और उनके पैर की प्रतीक्षा कर रही है जन्मों से कि जब उनका पैर पत्थर पर पड़ेगा तो अहिल्या पुनः जीवित हो उठेगी। और इसका खूब गुणगान किया जाता है कि क्या चमत्कार हुआ! राम के पैर का स्पर्श हुआ और चट्टान पुनरुज्जीवित हो उठी! लेकिन कोई यह भी पूछे कि अहिल्या पत्थर कैसे हो गई थी? मैं कुछ मामलों को इतनी आसानी से नहीं छोड़ देता। यह अहिल्या अभिशापित हुई थी पति के द्वारा। और बड़े मजे की कहानी है पुराणों में। कहानी यह है कि इंद्र ने धोखा दिया एक ऋषि की पत्नी को--अहिल्या को। ऋषि गए स्नान को। ऋषियों को पहले से ही बताया गया है कि ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने जाना। क्यों ब्रह्ममुहूर्त में करने स्नान जाना, क्योंकि देवी-देवता इस बीच जो भी उन्हें घूंघर करना हो कर लें। ऋषि महाराज गए स्नान करने ब्रह्ममुहूर्त में और इंद्र ऋषि के घर पहुंच गया--ऋषि का वेश बनाकर। देवता को क्या कमी, कोई भी चमत्कार कर लें! पत्नी को धोखा हो गया। पत्नी को कुछ पता न चला कि यह कोई दूसरा आदमी है जो ऋषि का धोखा बनकर अंदर आ गया है। उसने अहिल्या के साथ भोग किया। और जब ऋषि को पता चला तो उसने अभिशाप दे दिया अहिल्या को। अब तुम थोड़ा अन्याय देखो। अभिशाप देना चाहिए इंद्र को, अहिल्या का क्या कसूर है? अभिशाप देना था इंद्र को कि हो जा पत्थर का। लेकिन इंद्र हैं पुरुष, पुरुष

को तो क्या अभिशाप देना? स्त्री को अभिशाप दिया, जिसका कि कोई कसूर न था। इसका क्या कसूर? अगर कोई आदमी ठीक पति जैसा होकर आ जाए और संभोग करे तो यह स्त्री कैसे मना करती, इसे कैसे पता चलता? इसकी तो कहीं भी कोई भूल नहीं है। इसको अभिशाप दे दिया कि तू पत्थर होकर पड़ी रहेगी तब तक, जब तक राम के चरण तेरे ऊपर न पड़ेंगे।
यह दोहरा मापदंड बेईमानी का प्रतीक है, अन्याय का प्रतीक है। स्त्रियों के साथ जितनी ज्यादती भारतीय पुराणों में हुई है, उतनी ज्यादती दुनिया के किन्हीं शास्त्रों में नहीं हुई। और इन्हीं शास्त्रों की गुणगाथा गाई जाती है और इन्हीं की प्रशंसा की जाती है। ये सड़े-गले शास्त्र जला देने योग्य हैं। मगर हिंदू अहंकार प्रभावित होता है जब भी कोई आकर कह देता है हमारे शास्त्र! और अमरीकी चुटैयाधारी, सिर घुटाए, ढोलक बजाए, हरेकृष्णा-हरेरामा करे और फिर कहे कि हमारे शास्त्र, तो हिंदुओं का हृदय तो एकदम गार्डन-गार्डन हो जाए! एकदम नाच उठे, खुमारी छा जाए, कि क्या बात गहरी कह दी!
जरा अपने शास्त्रों को उठाकर देखो और शर्म से सिर झुक जाएगा। तुम्हारे शास्त्रों में तुम्हारे सारे देवी-देवता निपट लफंगे हैं। मेरी मजबूरी है, क्योंकि जो है मैं उसको वैसा ही कह रहा हूं। तुम्हारा एक देवता ढंग का आदमी नहीं है। और तुम्हारे देवताओं का कुल काम क्या है स्वर्ग में? अप्सराओं को नचाओ, और क्या करोगे! और जब अप्सराओं से ऊब जाते हैं तो यहां ऋषि-मुनियों की स्त्रियों को सताओ। और ऋषि-मुनि अगर तपश्चर्या करें, तो अप्सराओं को भेजो तो उनकी तपश्चर्या डगमगाएं, कि उनको भ्रष्ट करें। गजब का काम तुम्हारे देवताओं के हाथ में लगा हुआ है! खुद स्त्रियों को नचाते रहो--एक काम, दूसरा काम--कोई ऋषि-मुनि तपश्चर्या न कर पाए, इसका ध्यान रखो। खूब देवता हैं, धर्म की रक्षा कर रहे हैं कि कोई ऋषि-मुनि तपश्चर्या न कर पाए। तपश्चर्या में जरा ही ऊंचा उठने लगे कि भेज दो फौरन उर्वशी को, मेनका को, भ्रष्ट करो उसको। क्योंकि इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है कि कोई ऋषि- मुनि कहीं तपश्चर्या में सफल हो गया तो इंद्र न हो जाए। तो यह तो राजनीति हुई, धर्म क्या हुआ? ये देवी-देवता भी राजनीति में ही पड़े हुए हैं, इनका भी सिंहासन डोल रहा है, कि कहीं दूसरा हमारे सिंहासन पर न आ जाए! वही साधारण आदमियों की कथाएं।
और ये देवी-देवताओं के पास सुंदर उर्वशियां हैं, मेनकाएं हैं, जिनकी उम्र हमेशा सोलह साल रहती है। क्या गजब का इंतजाम किया है! जिनके शरीर से पसीना नहीं बहता! जिनके शरीर से सुगंध ही सुगंध उठती है! इन स्त्रियों से भी ये ऊब जाते हैं। कितनी ही स्वादिष्ट हों ये स्त्रियां, मगर वही स्वाद, वही स्वाद, रोज रसमलाई, रसमलाई, रसमलाई! फिर आदमी घबड़ा जाएगा। कभी आदमी का मन भजिया इत्यादि खाने का भी होने लगता है। तो वे चले आते हैं पृथ्वी पर। और यहां दूसरे तो जाते नहीं ब्रह्ममुहूर्त में उठकर, पर पतिदेव घर में ही बैठे रहते हैं ब्रह्ममुहूर्त में भी, ऋषि-मुनि बेचारे जाते ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने। गए गंगा जी। और देवताओं का काम है उनकी पत्नियों को भ्रष्ट करना। और यह बड़े मजे की बात है कि उर्वशी पर प्रभावित हो जाता है मुनि तो भ्रष्ट हो गया और देवता आकर मुनियों की स्त्रियों को भ्रष्ट कर जाते हैं तो भी भ्रष्ट नहीं होते।
तुम जरा अपने शास्त्रों को उठाकर तो देखो। ब्रह्मा ने पृथ्वी बनाई और पृथ्वी को बनाकर वे उस पर मोहित हो गए, क्योंकि पृथ्वी यानी स्त्री। बनाने वाले थे तो पिता थे, पिता बेटी पर मोहित हो गए। शास्त्र कहते हैं कि उनके मन में एकदम कामवासना जग गई। वे लगे पीछा करने। अब इनको अगर मैं लंपट न कहूं तो क्या कहूं? और बेचारी स्त्री लाज-शरम के मारे छिपने लगी। इस तरह सारी सृष्टि का जन्म हुआ है... छिपने की प्रक्रिया से। कैसे छिपी? वह गाय बन गई तो ब्रह्मा सांड बन गए। वे भी पीछा न छोड़ें। वह घोड़ी बन गई तो वे घोड़ा बन गए। वह गधी बन गई तो वे गधा बन गए। बनते ही चले गए। वह बाई बनती गई, वे भैया बनते गए। ऐसे सारे जगत का फैलाव हुआ।
ये तुम्हारे पुराण, ये तुम्हारे शास्त्र और इनका तुम गुणगान करते नहीं थकते! और तुम थक गए हो अब तो यह बाहर से उधार मूढ़, जिनको कुछ पता नहीं

शास्त्रों का, ये आकर यहां शास्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं। और मुझको कह रहे हैं राक्षस! तो राक्षस की परिभाषा एक दफे ठीक से कर लो, तो तुम्हारे सारे देवता राक्षस सिद्ध होंगे और तुमने जिनको भगवान कहा है अब तक, उनमें कोई भगवान कहने योग्य न बचेगा। महावीर में कुछ भगवत्ता है, लेकिन हिंदू शास्त्रों ने महावीर का उल्लेख भी नहीं किया। बुद्ध में भगवत्ता है, लेकिन हिंदू शास्त्रों ने बुद्ध का ऐसा उल्लेख किया है कि जो बेईमानी से भरा हुआ है। उल्लेख ऐसा किया कि ब्रह्मा ने नर्क बनाया, स्वर्ग बनाया; नर्क में कोई जाए ही न, क्योंकि कोई पाप ही न करे। आखिर नर्क के जो काम करने वाले कार्यकर्तागण थे, उन्होंने जाकर परमात्मा से प्रार्थना की, हमें किसलिए बिठा रखा है? खाली बैठे हैं। न कोई कभी आता, न कभी कोई जाता, कोई पाप ही नहीं करता। तो उन पर दया करके परमात्मा ने कहा कि घबड़ाओ मत, जल्दी ही मैं गौतम बुद्ध की तरह अवतार ग्रहण करूंगा और लोगों को मार्ग से भ्रष्ट करूंगा।
सो वे गौतम बुद्ध की तरह अवतरित हुए--नर्क के अधिकारियों पर दया करने
के लिए। नर्क ही मिटा देते, क्या जरूरत थी नर्क को बनाए रखने की? अगर कोई पाप नहीं कर रहा था तो कोई जबर्दस्ती पाप करवाने की आवश्यकता है? तो उनको छुट्टी दे देते नर्क के कार्यकर्ताओं को। उनको कह देते, तुम भी स्वर्ग में आ जाओ, यहीं कोई काम सम्हाल लो। नर्क का काम ही बंद कर दो। सीधी सी बात थी। किसी भी छोटी-मोटी बुद्धि के आदमी को समझने में आ जाए कि बात ठीक थी, दुकान नहीं चल रही तो क्या जरूरत कि जबर्दस्ती ग्राहक पैदा करो?
तो बुद्ध की तरह अवतार लिया भगवान ने--लोगों को भ्रष्ट करने के लिए! और लोगों को भ्रष्ट किया। और तब से नर्क में ऐसी भीड़म-भाड़ मची हुई है, कतारें लगी हुई हैं, लोगों को प्रवेश नहीं मिलता। तब से स्वर्ग में अड़चन हो गई होगी। तब से कोई स्वर्ग जाएगा ही क्यों?
गौतम बुद्ध में भगवत्ता एक दफे प्रगट हुई है, बड़ी प्रगाढ़ता से। न तो राम में वह खूबी है, न परशुराम में वह खूबी है, न कृष्ण में वह खूबी है--जो बुद्ध में है। लेकिन बुद्ध को उन्होंने क्या कहानी गढ़ी! इस देश में ब्राह्मण, पुरोहितों और पंडितों ने इस तरह की जालसाजी रची है, इस तरह की दकियानूसी और अंधविश्वास पैदा किया है कि जिसका कोई अंत नहीं। जिनको भगवान कहा जा सकता था उनको भगवान कहा नहीं, और जिनको भगवान कहा है उनमें भगवत्ता जैसे कोई लक्षण नहीं।
अब वे कहते हैं कि मेरे संन्यासियों की उन्होंने आलोचना की। और आलोचना करने का कारण क्या है?
"क्योंकि भटके हुए विदेशी नागरिक संतों जैसे वस्त्र पहन कर... ।"
कौन भटका हुआ है? जैनों के हिसाब से हिंदू भटके हुए हैं; हिंदुओं के हिसाब से जैन भटके हुए हैं; जैनों-हिंदुओं, दोनों के हिसाब से बौद्ध भटके हुए हैं; बौद्धों के हिसाब से जैन-हिंदू भटके हुए हैं। मुसलमानों के हिसाब से ईसाई भटके हुए हैं। ईसाइयों के हिसाब से मुसलमान भटके हुए हैं। ईसाइयों और मुसलमानों, दोनों के हिसाब से जैन, हिंदू, बौद्ध, सब भटके हुए हैं। कौन भटका हुआ है?
मेरे पास जो लोग हैं, इनको वे कह रहे हैं कि ये सीधे-सादे लोग मेरे कारण मार्गच्युत हो रहे हैं और भटक रहे हैं।
यह भ्रांति छोड़ दो, मेरे पास सीधे-सादे लोग इकट्ठे नहीं हुए हैं। मेरे पास अति विचारशील लोग इकट्ठे हुए हैं। भोंदू तो बचे ही नहीं, वे तो सब हरेकृष्ण आंदोलन में सम्मिलित हो गए।
इस देश में तीन बड़े महापुरुष--एक प्रभुपाद; एक मोरारजी देसाई; एक मुक्तानंद। इन तीन से तो कोई बाजी नहीं ले सकता। प्रभुपाद तो मर गए, मगर इससे कुछ नहीं होता। उल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए! अब ये औलाद घूंघर कर रही है। स्वामी अक्षयानंद महाराज, उनकी औलाद। न इनके गुरु को कोई अक्ल थी--अक्ल जैसी चीज से कोई वास्ता ही न था--न इनको कोई अक्ल है।
मेरे पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं, ये सुशिक्षित लोग हैं। इनमें सैकड़ों ग्रेजुएट हैं, पी.एचड़ी. हैं, डी.लिट हैं, पश्चिम के बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में शिक्षित हुए लोग हैं। इनमें प्रोफेसर्स हैं,

मनोवैज्ञानिक हैं, डाक्टर हैं, इंजीनियर हैं, वैज्ञानिक हैं। ये कोई सीधे- सादे लोगों की जमात नहीं है। ये सब तरफ से सुशिक्षित-सुसंस्कृत लोग हैं। और अगर आज इन्होंने सीधा-सादा होना चाहा है तो ये जीवन के सारे तिरछेपन को जीकर सीधे हो रहे हैं, अनुभव से सीधे हो रहे हैं। इनकी सादगी मूढ़ता का प्रतीक नहीं है; इनकी सादगी इनकी साधुता का प्रतीक है।
और उन्होंने आलोचना में जो कहा वह यह कि "चूंकि यह सार्वजनिक स्थलों
पर प्रेम का निर्लज्ज प्रदर्शन करते हैं... ।"
और ये कृष्ण को मानने वाले लोग कहें, तब तो जरा हद हो जाती है। कम से कम मेरे कोई संन्यासी नदी में स्नान करती हुई स्त्रियों के कपड़े लेकर झाड़ों पर नहीं बैठते। और कृष्ण क्या करते थे? यह वंशीवट में और बांसुरी बजाना और यह लीला और यह रासलीला और स्त्रियों का नाच! ये सब सार्वजनिक स्थल नहीं थे तो क्या थे वृंदावन में? ये नदी के घाट, यह वंशीवट! और कृष्ण को मानने वाला कोई व्यक्ति ऐसी बात करे तो फिर बेहूदगी की हद हो गई। फिर मेरे संन्यासी किसी और की स्त्रियों के साथ छेड़खान नहीं कर रहे हैं; अपनी प्रेयसी को अगर हाथ पकड़कर चल रहे हैं तो इसमें किसी को क्या एतराज? अगर अपने प्रिय को गले मिलते हैं तो इसमें किसी को क्या एतराज? जिनको एतराज है वे विकृत हैं, कुरूप हैं; उनके भीतर दमित वासनाएं हैं।
और ये बेचारे हरेकृष्ण आंदोलन में सम्मिलित लोग एकदम दमित वासनाओं से भरे हुए हैं, क्योंकि इनको भारत में जो मूर्खता सदियों तक चलती रही है वही इनको सिखाई गई है। इनको सिखाया जा रहा है दमन। और दमन के परिणाम कितने भयंकर हो सकते हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
कल मैंने एक खबर पढ़ी कि एक कैथलिक नन, साध्वी, चालीस साल साध्वी रहने
के बाद, सड़सठ साल की उम्र में--और साधारण साध्वी नहीं थी, कैथलिक साध्वियों के आश्रम की प्रधान थी, मदर सुपीरियर थी, जैसे मदर टेरेसा--वह भाग गई और उसने विवाह कर लिया एक बूढ़े से। चालीस साल साध्वी रहने के बाद सड़सठ साल की उम्र में भागना और विवाह कर लेना एक बूढ़े से! जब मैं पढ़ रहा था तो मैं थोड़ा हैरान हुआ। कभी-कभी मुझे ऐसे खयाल आते हैं, अच्छे-अच्छे खयाल आते हैं। जैसे कभी-कभी मैं सोचता हूं कि अगर मदर टेरेसा मोरारजी देसाई का विवाह हुआ होता, तो संतान कैसी होती! खयाल की बात, कल्पना की बात, कविता की बात समझो। पृथ्वी वंचित रह गई। कहावत तो हमारे पास है--राम मिलाई जोड़ी, कोई अंधा कोई का.ेढी। मदर टेरेसा और मोरारजी देसाई जैसी जोड़ी, और इनसे जो संतान पैदा होती, दर्शनीय होती, अद्वितीय होती!
सड़सठ साल की उम्र में कोई साध्वी भाग जाए और विवाह करे, यह किस बात का सबूत होगा? यह इस बात का सबूत होगा कि चालीस साल तक गरीब औरत ने दमन किया, भारी दमन किया और दमन का यह परिणाम है।
"उन्होंने चिंता और आक्रोश प्रगट किया है।"
करो चिंता प्रगट, करो आक्रोश प्रगट। मुझे न तो चिंता होती इस तरह के लोगों पर, न आक्रोश होता, सिर्फ हंसी आती है। यह व्यक्ति हास्यास्पद है, और कुछ भी नहीं। मगर इस तरह के लोग प्रभावित करते रहते हैं, इस तरह के लोग व्यर्थ की बकवासों में लगे रहते हैं। और इस तरह के लोग लोगों को चलाते रहते हैं, मार्गदर्शन करते रहते हैं। बेईमान हैं, धोखेबाज हैं। न सोचा है, न समझा है, न विचारा है; ध्यान तो बहुत दूर। मगर दुकानदारियां हैं।
और हिंदू मन बहुत प्रताड़ित है। बड़ी आकांक्षा उसकी होती है कोई उसके अहंकार को थोड़ा सा भी मक्खन लगा दे। हमारे शास्त्र, हमारा धर्म, हमारे भगवान!
मैं तो वही कहूंगा जैसा है, चाहे कोई भी परिणाम हों। जो गलत है उसको गलत कहूंगा; जो सही है उसको सही कहूंगा। मैं तो दो और दो चार, उतना स्पष्ट हूं। फिर इसके जो भी परिणाम हों। सत्य के ऊपर सब कुछ दांव लगा देने की मेरी तैयारी है। और जो मेरे साथ हैं, उनको भी इतनी ही तैयारी रखनी होगी। मेरे साथ होना आग के साथ होना है। लेकिन इस आग में जल जाना सौभाग्य है, क्योंकि इसमें वही जल जाएगा जो व्यर्थ है, असार है और वही बच रहेगा जो खालिस सोना है।
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
चौथा प्रवचन

संन्यास तो आईना है

पहला प्रश्नः ओशो, क्या हमारा अंधकार कभी न कटेगा? क्या हम सदा-सदा मूढ़ता में ही डूबे रहेंगे? स्वामी अक्षयानंद महाराज ने यह भी कहा है कि ओशो जो शिक्षा दे रहे हैं उसे वे भारतीय संस्कृति कहकर लोगों को भ्रमित कर रहे हैं। उनकी शिक्षा भारतीय संस्कृति या शास्त्रों के अनुसार नहीं है। आचार्य रजनीश कलियुगी हैं। क्या आप इस संबंध में कुछ कहेंगे?

आनंदमूर्ति, यूं न कहो। अंधकार है तो आलोक भी हो सकता है। अंधकार सबूत
है इस बात का कि आलोक की संभावना है। मूढ़ता है तो टूट भी सकती है। जड़ता है तो मिट भी सकती है। श्रम की जरूरत है, अथक श्रम की जरूरत है। चूंकि जड़ता बहुत पुरानी है, उसकी जड़ें गहरी चली गई हैं। हमारे प्राण उस जहर से सदियों से सींचे गए हैं। हमारी हड्डी-मांस-मज्जा में उसका प्रवेश हो गया है। लेकिन फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं, हताश होने की कोई बात नहीं। बल्कि ठीक इसके विपरीत, इसे चुनौती समझो। इसे एक निमंत्रण समझो--एक पुकार। यह संघर्ष प्यारा है। इस संघर्ष में मिट भी जाना पड़े तो भी अहोभाग्य है। ध्यान रहे, असत्य के मार्ग पर सफलता भी मिल जाए तो व्यर्थ है और सत्य
के मार्ग पर असफलता भी मिले तो सार्थक है। सवाल मंजिल का नहीं। सवाल कहीं पहुंचने का नहीं, कुछ पाने का नहीं--दिशा का है, आयाम का है। कंकड़-पत्थर इकट्ठे भी कर लिए किसी ने, तो क्या पाएगा? और हीरों की तलाश में खो भी गए, तो भी बहुत कुछ पा लिया जाता है--उस खोने में भी! अनंत की यात्रा पर जो निकलते हैं, वे डूबने को भी उबरना समझते हैं।
माना कि अंधकार है, और अंधकार है तो उल्लू भी बोलेंगे। रात जितनी अंधेरी होगी उतनी ही उल्लुओं की बन आएगी। और उल्लू डरेंगे भी सुबह के होने से। सुबह का आभास भी, उसकी पगध्वनि भी, उनके प्राणों को झकझोर देगी। और स्वभावतः इसी तरह के लोग बेचैन हैं। पर इससे आनंदमूर्ति, तुम्हें बेचैन होने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे भीतर कुछ है, जिसे मिटा कर भी नहीं मिटाया जा सकता है।
बोली खुदसरहवा एक जर्राहैतू
यूंउड़ादूंगीमैं, मौजे-दरिया बढ़ी
बोलीमेरेलिए एक तिनकाहैतू
यूंबहादूंगीमैं, आतिशे-तुंद की
इकलपट ने कहा, मैंजलाडालूंगी
औरजमीं ने कहामैंनिगलजाऊंगी
मैंनेचेहरेसेअपनेउलटदीनिकाब
औरहंसकरकहा--मैंसुलेमानहूं
इब्ने-आदमहूंमैं, यानीइंसानहूं
मिटा-मिटाकर भी मिटा न पाओगे। सत्य मिटता नहीं, छिप जाए; फिर-फिर उभर आएगा। न तो हवा मिटा सकती है, न आग। न दरिया मिटा सकता है, न जमीन लील सकती है, न आकाश पोंछ सकता है।
मैंनेचेहरेसेअपनेउलटदीनिकाब
औरहंसकरकहा--मैंसुलेमानहूं
इब्ने-आदमहूंमैं, यानीइंसानहूं
हताश नहीं होते हैं। इसलिए यूं न कहो कि "क्या हमारा अंधकार कभी न कटेगा?"
दीए की जरा सी ज्योति भी पुराने से पुराने अंधकार को, गहन से गहन अंधकार को, अमावस की रात को तोड़ देती है। सवाल अंधकार का नहीं है, सवाल दीए के जलाने का है। उसी श्रम में हम लगे हैं। और यह सौभाग्य का श्रम है। इसमें पुरस्कार अलग नहीं है--श्रम में ही समाया हुआ है।
इसलिए कहता हूं--
यूं न कहो

कभी न इसके भाग खुलेंगे प्यासी मिट्टी रहेगी प्यासी यूं न कहो मुर्झाए पौधे यूं ही सदा मुर्झाए रहेंगे चलते-चलते इस मंजिल में आकर धरती रुक जाएगी
यूं न कहो गहनाए सूरज यूं ही सदा गहनाए रहेंगे
तुम तो शफक के घुलते-मिलते रंगों की इक गुलकारी हो
तुम तो सहर का हल्का-हल्का नूर हो जिससे दुनिया जागे
तुम तो महक हो खिलते फूल की चढ़ते दिन का उजलापन हो
तुमने तो सुलझाए हैं आकर जहन के कितने उलझे धागे
तुमको हमने अपना कहा है, तुम तो यूं न कहो जिंदां के
कभी न भारी कुफ्ल खुलेंगे, कभी न जंजीरें टूटेंगी
यूं न कहो कभी न इसके भाग खुलेंगे प्यासी मिट्टी रहेगी प्यासी
यूं न कहो मुर्झाए पौधे यूं ही सदा मुर्झाए रहेंगे
ये पौधे मुर्झा तो गए हैं, लेकिन सदा ही मुर्झाए रहेंगे ऐसा कहो ही मत, सोचो ही मत। क्योंकि तुम्हारे सोचने में ही खतरा है। ऐसा तुम्हारे कहने में ही खतरा है। ऐसा कहकर कहीं तुम, जिस सम्यक श्रम के लिए मैंने आमंत्रण दिया है, तुम्हें पुकार दी है और तुम मेरे पास आ गए हो, इकट्ठे हो गए हो, वह श्रम ही बंद हो जाएगा। तोड़ेंगे चट्टानों को! फोड़ेंगे झरनों को! मुक्त करेंगे। और यह आह्लादपूर्ण है। यह परमात्मा का काम है। यही तो प्रार्थना है। इतनी ही तो प्रार्थना है।
और सब प्रार्थनाएं झूठी हैं। और मंदिर-मस्जिद, गिरजे-गुरुद्वारे थोथे हैं। प्रार्थना तभी सत्य होती है जब तुम किसी ऐसे श्रम में संलग्न होते हो, जिससे परमात्मा का पदार्पण हो सके। जब तुम एक ऐसा द्वार खोलते हो, एक ऐसी दीवाल तोड़ते हो, जहां से सूरज आ सके, स्वच्छ हवाएं प्रवेश कर सकें। तुमने पूछा कि स्वामी अक्षयानंद महाराज ने यह भी कहा है कि "आचार्य रजनीश जो शिक्षा दे रहे हैं, उसे वे भारतीय संस्कृति कहकर लोगों को भ्रमित कर रहे हैं।"
यह बात सरासर झूठ है। क्योंकि मैंने कभी नहीं कहा कि मैं जो शिक्षा दे रहा हूं वह भारतीय संस्कृति है। लेकिन इस देश में तो लोग पता नहीं सपनों में सुन लेते हैं, सपनों में देख लेते हैं और उस पर भरोसा कर लेते हैं। राजा हरिशचंद्र की कथा है ही कि उन्होंने स्वप्न में एक ब्राह्मण को दान दे दिया राज्य। स्वप्न में! और फिर ढुंढवाया उस ब्राह्मण को। बड़ी गजब की दुनिया थी! सपने में जो ब्राह्मण देखा था, इस बड़ी पृथ्वी पर उसको कैसे खोज लिया! ऐसा लगता है कि उन दिनों सपनों की भी तस्वीरें ली जाती होंगी। कैसे खोज लिया उस ब्राह्मण को जिसको सपने में देखा था! और उसे राज्य दे दिया।
एक राजा हरिशचंद्र हुए, उनकी महिमा गाई जाती है। कोई यह भी नहीं पूछता
कि सपने में भरोसा करने वाले लोग विक्षिप्त हैं या उनको समझदार कहें? पागल हैं! अरे, जिंदगी भी सपना है, यह भी भरोसे के योग्य नहीं। और ये राजा हरिशचंद्र हैं, जिन्होंने सपने को भी जिंदगी समझ लिया और उस पर भरोसा कर लिया! लेकिन कहानियां ही जिनको माननी हों उन्हें क्या अड़चन?
अभी कुछ दिन पहले ब्रेजनेव का भारत आगमन हुआ तो मोरारजी देसाई ने कहा
कि ब्रेजनेव ने मुझसे कहा था कि पाकिस्तान को अच्छा पाठ पढ़ा दो। अब मोरारजी देसाई--राजा हरिशचंद्र ही समझो! क्योंकि ब्रेजनेव ने इनकार किया, रूस से इनकार किया गया, सब तरफ से इनकार किया गया। लेकिन वे डटे रहे। सुन लिया होगा सपने में। हो सकता है सपने में ब्रेजनेव ने कह दिया हो। मगर सपने में जो कहा हो उसके लिए ब्रेजनेव जिम्मेवार तो नहीं।
अभी कल उन्होंने बात सच्ची कही। कल उन्होंने कहा कि ब्रेजनेव ने नहीं कहा था, किसी और ने कहा था जिसका नाम लेना मैं अभी ठीक नहीं समझता। लेकिन देश के हित के लिए मैंने ब्रेजनेव का नाम ले दिया था।
ये गांधीवादी, सत्यवादी, सत्याग्रही, अहिंसक! ये सब झूठ के ठेकेदार!
ये सब बेईमान! ये सरासर गलत तरह के लोगों के हाथ में इस देश की नीति का निर्धारण पड़ा हुआ है। और ये वे कह भी गए और सारा देश चुपचाप सुन रहा है।

अक्षयानंद महाराज को पता नहीं किस सपने में यह सुनाई पड़ गया। मैंने
तो कभी कहा नहीं। मैं तो कह भी कैसे सकता हूं? मेरी तो पूरी जीवन-दृष्टि के यह बात विपरीत है। मेरा भरोसा न भारत में है, न चीन में है, न जापान में है। मेरा भरोसा राष्ट्रों में नहीं है। राष्ट्रों के नाम पर बहुत पाप हो चुका, बहुत युद्ध हो चुके, बहुत हिंसा हो चुकी। और जब तक राष्ट्र रहेंगे तब तक युद्ध रहेंगे। अगर युद्धों को जाना है तो राष्ट्रों को जाना होगा। अगर मनुष्य-जाति को बचाना है तो इस पृथ्वी को एक भाईचारे में बदलना होगा। इसलिए मुझे भारत इत्यादि में कोई श्रद्धा नहीं है। और यह तो मैं कह ही नहीं सकता--भारतीय संस्कृति! सभ्यताएं कही जा सकती हैं भारत की, चीन की, रूस की, अमरीका की--सभ्यताएं। क्योंकि सभ्यता का अर्थ होता है बाहर की बात।
सभ्यता शब्द समझने जैसा है। सभ्यता बनता है--सभा से। सभा में बैठने की योग्यता जिसमें हो उसको सभ्य कहा जाता है। इसलिए सभ्य का एक अर्थ सदस्य भी होता है। सभा में बैठने की योग्यता, चार लोगों में उठने-बैठने की तरतीब जिसको आ गई, उसको सभ्य कहते हैं। सभ्यता का संबंध औरों से संबंध में है। सभ्यता का अर्थ है दूसरों से हम किस भांति व्यवहार करें, कैसे उठें, कैसे बैठें, कैसे कपड़े पहनें, क्या कहें, क्या न कहें, क्या भोजन... । इस तरह की बातों का नाम सभ्यता है।
निश्चित ही अलग-अलग देश की अलग-अलग होंगी। गर्म देश की परिस्थिति अलग होगी, ठंडे देश की परिस्थिति अलग होगी। तिब्बत में अगर तुम ब्रह्ममुहूर्त में उठकर और ठंडे पानी से स्नान करोगे तो आत्महत्या के भागीदार बनोगे। और भारत में अगर ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ठंडे पानी से स्नान न किया तो तुम भारत में जो सुंदरतम क्षण हैं सुबह के, उनसे वंचित रह जाओगे। जो भारत में स्वास्थ्यप्रद है वही तिब्बत में हानिकर हो जाएगा। भारत में उघाड़े बदन बैठा जा सकता है, लेकिन साइबेरिया में नहीं। अगर महावीर साइबेरिया में होते तो नग्न नहीं खड़े होते, इतना मैं भरोसा दिलाता हूं। भारत जैसे देश में, जहां आग बरसती हो, नग्न होने में कोई कठिनाई नहीं है। यही तो कारण है कि जैन धर्म भारत के बाहर नहीं जा सका।
तुम चकित होओगे यह जानकर कि बुद्ध धर्म सारे एशिया पर फैल गया और जैन धर्म भारत के बाहर न जा सका। बुद्ध धर्म ने करोड़ों लोगों को प्रभावित किया और जैन धर्म आज भी पांच हजार सालों के बाद केवल पैंतीस लाख लोगों का धर्म है भारत में। बुद्ध धर्म से ढाई हजार साल पुराना धर्म है। महावीर तो जैनियों के अंतिम तीर्थंकर थे, चौबीसवें तीर्थंकर थे। बुद्ध के समसामयिक थे। लेकिन बुद्ध ने सारे एशिया को रूपांतरित कर दिया। और महावीर जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति वंचित क्यों हो गया? नग्नता ने दिक्कत दे दी। वह नग्नता तिब्बत न ले जा सकी, हिमालय के पार न ले जा सकी। ठंड ही बाधा नहीं थी। नग्न आदमी को न कोई देश स्वीकार कर सकता था, न नग्न आदमी कहीं जा सकता था। वह आबद्ध हो गया, यहीं सिकुड़कर रह गया।
सभ्यता बाहर की चीज है और इसलिए प्रत्येक देश की अलग होगी, प्रत्येक समय की अलग होगी। लेकिन संस्कृति भीतर की बात है। संस्कृति का अर्थ होता हैः ध्यान। क्योंकि ध्यान है कीमिया आत्मपरिष्कार की। और भीतर कोई भारतीय होता है कि चीनी होता है कि अरबी होता है कि ईरानी होता है? क्या तुम सोचते हो भीतर भी भूगोल है? क्या तुम सोचते हो भीतर भी इतिहास है? क्या तुम सोचते हो यही उपद्रव भीतर भी हैं? भीतर सन्नाटा है। भीतर परमात्मा है। भीतर तो परम मौन है, निःशब्द निराकार है। वहां कैसी सीमाएं और कैसे विशेषण?
यह स्वामी अक्षयानंद महाराज को अभी यह भी बोध नहीं है कि संस्कृति और सभ्यता में भेद होता है। सभ्यता तो अलग-अलग होगी ही, सदा होगी। लेकिन संस्कृति कभी भिन्न नहीं हो सकती। जीसस की और बुद्ध की, महावीर की और लाओत्सु की, जरथुस्त्र की और अलहिल्लाज की संस्कृति में कोई भेद नहीं। सभ्यता में तो भेद है। सभ्यता में तो भेद होगा ही, होना ही चाहिए।
लेकिन मूढ़ों को इन बारीकियों से क्या लेना-देना!

तो मैं तो यह कभी कह ही नहीं सकता कि मैं जो शिक्षा दे रहा हूं वह भारतीय संस्कृति की शिक्षा है। पहले तो इसलिए नहीं कह सकता कि मुझे भारत और अभारत में कोई भेद नहीं। दूसरे इसलिए नहीं कह सकता कि संस्कृति आंतरिक यात्रा है। सभ्यता भिन्न होती है, संस्कृति अभिन्न है। संस्कृति तो एक ही होती है, अनेक नहीं।
और इसलिए भी नहीं यह बात सही है, क्योंकि मैं तो कोई शिक्षा दे ही नहीं रहा हूं। मेरा काम तो शिक्षा से ठीक उलटा है। मेरा काम है कि तुम जो सीखकर बैठे हो उसको तुम से छीन लूं; तुम जो पकड़कर बैठे हो उससे तुम्हारे हाथ खाली कर दूं। वह जो तुम्हारे प्राणों पर जमाने भर की गर्द इकट्ठी हो गई है, उसे झाड़ दूं। तुम्हारे चित्त के दर्पण पर जो धूल जम गई है, उसे पोंछ दूं। मैं तुम्हें कुछ सिखा नहीं रहा हूं, तुम्हें मिटा रहा हूं। कुछ भुलाना है, सिखाना नहीं है। मेरा काम शिक्षा से ठीक उलटा है और उस उलटे काम को ही मैं धर्म कहता हूं।
महर्षि रमण के पास एक जर्मन प्रोफेसर ने जाकर कहा कि मैं सीखने आया हूं आपके पास धर्म। रमण ने कहा, फिर कहीं और जाओ। सीखना हो तो कहीं और जाओ। यहां तो भूलना हो तो रुको।
सीखने के लिए तो कोई अड़चन नहीं है, विश्वविद्यालय हैं, पुस्तकालय हैं, शास्त्र हैं, शिक्षक हैं। सीखने के लिए तो बहुत फैलाव है। कुछ चाहिए लोग जो भुलाएं भी। तुम्हारी स्लेट पर गूदने वाले तो बहुत हैं। तुम पर गुदना खोदने वाले तो बहुत हैं। कुछ ऐसे लोग भी चाहिए जो तुम्हें फिर तुम्हारे बचपन का निर्दोष, निर्विकार चित्त दे दें; वह चेतना दे दें जो तुम लेकर आए थे; संस्कारों के जो पहले तुम्हारे पास थी। तुम्हारे संस्कारों को पोंछ डालें, ताकि तुम पुनः एक बार उसी आश्चर्य, उसी रहस्य से भरकर जगत को देखने में समर्थ हो पाओ। वे ही आंखें, जो छोटे बच्चों के पास होती हैं। वही आह्लाद, वही विस्मय, वही आश्चर्य-विभोर चित्त की दशा!
तो मैं शिक्षा तो दे ही नहीं रहा हूं। मैं तो, तुम शिक्षित बैठे हो, तुम्हारी शिक्षा पोंछ रहा हूं। तुम्हारे प्रमाण-पत्र जलाने हैं। अपने जला चुका हूं, अब तुम्हारे जला रहा हूं। तुमसे तुम्हारे शास्त्र छीनने हैं। अपने गंवा चुका हूं, अब तुम्हारे पर हमला कर रहा हूं।
स्वामी अक्षयानंद महाराज को कुछ पता नहीं कि वे क्या कह रहे हैं। मेरे संबंध में अफवाहें सुनी होंगी। और अफवाहों पर जो भरोसा कर लेते हैं, उनकी गिनती मैं समझदारों में नहीं करता।
और तुमने पूछा आनंदमूर्ति, "उन्होंने यह भी कहा कि आपकी शिक्षा भारतीय संस्कृति या शास्त्रों के अनुसार नहीं है।"
मैंने कहा कब कि है? मैं तो शास्त्र-विरोधी हूं। जरूर मैं उन सत्यों
का समर्थन करता हूं जो मैंने अनुभव किए हैं। शास्त्रों में हैं, इसलिए समर्थन नहीं करता। मैंने अनुभव किए हैं और अगर शास्त्र भी उनके समर्थन में हैं, तो जरूर मैं शास्त्रों की पीठ भी ठोंक देता हूं कि बच्चा, ठीक कहते हो! बाकी जो मैं कह रहा हूं, अपना अनुभव है। अपने अनुभव के अतिरिक्त मुझे और किसी बात पर भरोसा नहीं है। जो मैंने नहीं जाना है, जो मेरा स्वानुभव नहीं है, वह मैं तुमसे नहीं कहूंगा। शास्त्रों से मुझे क्या लेना-देना?
इसलिए मुझे सुनने वाले थोड़ी अड़चन में भी पड़ते हैं, थोड़ी झंझट में भी पड़ते हैं। क्योंकि कभी मैं उसी शास्त्र के एक वचन का समर्थन कर देता हूं और कभी उसी शास्त्र के दूसरे वचन का खंडन कर देता हूं। स्वभावतः उनकी समझ में यह बात नहीं आती। उनको समझ में आती है यह बात कि या तो मैं पूरे शास्त्र का समर्थन करूं या पूरे शास्त्र का विरोध करूं। नहीं, मुझे पूरे का विरोध या समर्थन इसमें रस नहीं है। मेरी कसौटी पर जो सच उतर आता है, वह फिर कहीं भी हो, वह कुरान में हो कि बाइबिल में हो, कि जेंदावेस्ता में हो कि वेद में हो, कि ताओ-तेह-किंग में हो कि धम्मपद में हो, मुझे कोई अड़चन नहीं। मैं उसके समर्थन में खड़ा हूं। लेकिन अगर तुम गौर से समझोगे तो तुम पाओगे कि मैं उसका समर्थन इसलिए कर रहा हूं कि वह मेरा समर्थन कर रहा है, अन्यथा जहां मुझसे भिन्न कोई बात हुई, फिर मैं संकोच नहीं करता। फिर सत

सिरी अकाल! फिर वाहे गुरुजी की फतह, वाहे गुरुजी का खालसा! फिर मैं कोई शिष्टाचार नहीं मानता, कोई सभ्यता नहीं मानता।
मेरे लिए तो सत्य के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। सत्य जहां भी प्रतिध्वनित हुआ हो, मेरा समर्थन है। मगर वह सत्य मेरा अनुभूत सत्य हो, तो ही। मैं उधार सत्यों का समर्थन नहीं करता हूं। इसलिए वे क्यों चिंता में पड़ रहे हैं कि मेरी बातें शास्त्रों के अनुसार नहीं हैं? मैंने कभी कहा ही नहीं। होनी चाहिए, यह भी नहीं कहा। तुम्हारे शास्त्रों का सौभाग्य है अगर कोई बात उनकी मेरे अनुसार पड़ती हो, अन्यथा उनका दुर्भाग्य। जीवित आदमी हूं मैं, मैं मुर्दा शास्त्रों में अपना समर्थन खोजूंगा? मुर्दे खोजते हैं, मुर्दा शास्त्रों में समर्थन। जिनका अपना अनुभव नहीं है वे खोजते हैं।
कालिदास का यह प्रसिद्ध वचन है--
पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
संतः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
म.ूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।
अर्थात कोई वस्तु पुरानी होने से ही अच्छी नहीं हो जाती; न ही कोई काव्य नया होने से निन्दनीय हो जाता है। सतपुरुष नए-पुराने की परीक्षा करके दोनों में से जो गुणयुक्त होता है, उसको ग्रहण करते हैं; मूढ़ की बुद्धि तो दूसरे के ज्ञान से ही संचालित होती है।
मूढ़ः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।
मूढ़ ही केवल दूसरों के ज्ञान से संचालित होते हैं। जिनके पास अपनी प्रज्ञा की कसौटी है, वे तो परीक्षा करते हैं, वे तो जांचते हैं, वे तो प्रयोग करते हैं। सच को सच कहते हैं, झूठ को झूठ कहते हैं। इसलिए तो हमने ऐसे व्यक्तियों को परमहंस कहा है, क्योंकि वे दूध को जल से अलग कर देते हैं; सार को सार, असार को असार कह देते हैं।
और तुम्हारे शास्त्रों में निन्यानबे प्रतिशत असार है, एक प्रतिशत सार है। यह भी चमत्कार है, क्योंकि एक प्रतिशत सत्य भी बच रहा है यह भी अनहोनी घटना है। यह भी कुछ कम नहीं। यह भी न होता तो कोई आश्चर्य की बात न होती। यह है, यही आश्चर्य है। क्योंकि तुम्हारे शास्त्र सदियों-सदियों तक लिखे गए हैं; और किन्हीं एक व्यक्ति ने तो लिखे नहीं हैं, न मालूम कितने व्यक्तियों ने लिखे हैं। उनमें जोड़ होता चला गया है। उनमें जानकारों के वचन हैं, उनमें अज्ञानियों के वचन हैं। उनमें प्रज्ञावानों के वचन हैं, उनमें पंडितों के वचन हैं। और आज उस खिचड़ी में से छांटना बहुत मुश्किल मामला है।
मेरा शास्त्रों में कोई रस नहीं है। हां, जरूर अगर मेरे सत्य से कोई शास्त्र अनुकूल पड़ जाता है तो मैं तुम्हें उसकी याद दिला देता हूं। जैसे कालिदास के इस वचन से मैं राजी हूं कि कोई वस्तु पुरानी होने से ही अच्छी नहीं होती। पुराना होना सत्य होने का कोई प्रमाण नहीं है। और न ही कोई वस्तु नई होने से गलत होती है। नया होना गलत होने का प्रमाण नहीं है। इससे उलटी बात भी सच है। नए होने से ही कोई बात सच नहीं होती और पुराने होने से ही कुछ गलत नहीं होती। गलत और सही का नए और पुराने से क्या लेना-देना है? शराब तो जितनी पुरानी हो उतनी अच्छी होती है और फूल जितना ताजा हो उतना अच्छा होता है। कुछ चीजें पुरानी अच्छी होती हैं, कुछ चीजें नई अच्छी होती हैं। और हमें दोनों में भेद कर लेने चाहिए। और हमारी निष्ठा सत्य के प्रति होनी चाहिए; न तो शास्त्रों के प्रति होनी चाहिए, न अतीत के प्रति होनी चाहिए।
मेरी निष्ठा अतीत में नहीं है। मेरी निष्ठा वर्तमान में है। मेरी निष्ठा शब्दों में नहीं है, अनुभूति में है। मेरी निष्ठा मन में नहीं है, ध्यान में है--अमनी दशा में है।
लेकिन ये बेचारे स्वामी अक्षयानंद महाराज जैसे लोग, इन्हें न तो कुछ पता है कि मैं क्या कर रहा हूं, क्या कह रहा हूं। न आते हैं, न सुनते हैं, न समझते हैं। अफवाहों पर जीते हैं। और अपनी मनगढ़ंत धारणाओं को मुझ पर

आरोपित करते रहते हैं और फिर उन्हीं का खंडन करते रहते हैं। खुद ही धारणाएं बना लेते हैं, खुद ही उनका खंडन कर लेते हैं। खूब खेल है! जो बात मैंने कभी कही ही नहीं, वह मेरे ऊपर थोप देते हैं। खंडन करना हो तो मैं जो कह रहा हूं उसका खंडन करो। और मैं जो कह रहा हूं उसका अगर खंडन तुम करो तो तुम्हें सारे सत्यों का खंडन करना पड़ेगा। क्योंकि मैं तो सिर्फ सत्य के अतिरिक्त और किसी चीज के प्रति श्रद्धा नहीं रखता हूं।
फिर उन्होंने यह भी कहा कि "आचार्य रजनीश कलियुगी हैं।"
इस धारणा का भी तुम्हें विचार कर लेना चाहिए। भारत में यह धारणा है कि सबसे पहले हुआ सतयुग-स्वर्णयुग। फिर हुआ त्रेता। फिर हुआ द्वापर। फिर हुआ कलियुग। सतयुग में यूं समझो कि आदमी के चार पैर थे, त्रेता में तीन पैर, द्वापर में दो। और कलियुग में बिल्कुल लंगड़ा गया है, एक ही पैर बचा। हिंदुओं की यह धारणा ह्नास की धारणा है। पहले सब श्रेष्ठ था, फिर गिरता गया, फिर भ्रष्ट होता गया। यह धारणा ही रुग्ण है। यह रुग्णचित्त की ही प्रतीक है। मेरी धारणा उलटी है। कलियुग पहले थे, फिर आया द्वापर। लंगड़ा आदमी फिर दो पैर से खड़ा हुआ। फिर आया त्रेता। और अब है सतयुग। अब आदमी पूरा संतुलित है, पूरा प्रौढ़ है। और यही जीवन की व्यवस्था है। सारा विज्ञान मुझसे सहमत है। विज्ञान है विकासवादी और भारतीय धारणा है ह्नासवादी, विकास-विरोधी। विज्ञान है प्रगतिशील और भारत की धारणा है प्रतिक्रियावादी, अप्रगतिशील। ह्नास हो रहा है। और जब ह्नास होता हो, ऐसा हम मानकर ही बैठ गए हों, तो फिर ह्नास होगा। फिर कैसे विकास होगा? विकास आएगा कहां से? विकास करेगा कौन? हारे हुए लोग, पराजित लोग निश्चित ही ह्नासमान हो जाएंगे।
हम सदियों से गुलामी में सड़ रहे हैं, गरीबी में सड़ रहे हैं, दुख-दारिद्य्र में सड़ रहे हैं। और कारण? कारण हैं हमारी धारणाएं। जब तुमने यह मान ही लिया कि आगे-आगे बात बिगड़ती ही चली जाएगी। जब तुम इस बात को बिल्कुल दृढ़ता से पकड़ लिए तो जब बात बिगड़ेगी तब तुम कहोगे, हमने पहले ही कहा था कि बात तो बिगड़नी ही है, सुधारने का तो सवाल उठता ही नहीं।
यह हताशा तोड़नी है। आगे-आगे बात बिगड़ेगी क्यों? आगे-आगे बात सुधरेगी, क्योंकि सारा अनुभव हमारे पास होगा अतीत का, उस अनुभव से हम ऊपर चढ़ेंगे। उन भूलों से हम सीखेंगे। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि परशुराम जैसे व्यक्तियों को हम आज भगवान नहीं कह सकते; जिस समय कहा गया होगा, कलियुग रहा होगा। जिस व्यक्ति ने इतनी हिंसा की और हत्या की, जो परशु लिए घूमता रहा और पृथ्वी को अठारह बार क्षत्रियों से नष्ट कर दिया... और इसका परिणाम तुम समझते हो क्या हुआ? सारे क्षत्रिय तो मार डाले, लेकिन उनकी स्त्रियां बच गईं। तो व्यभिचार फैला, भ्रष्टाचार फैला, वेश्यागामी लोग हुए, क्योंकि उन स्त्रियों का क्या हो? और क्षत्रिय मिटे तो नहीं, फिर क्षत्रिय आए कहां से? जब सब क्षत्रिय अठारह बार मार डाले तो बार-बार क्षत्रिय आते कैसे रहे? ये स्त्रियां जो बच रहीं, उनसे पैदा होते रहे। इसलिए तो अब कोई क्षत्रिय नहीं है--सब खत्री हैं। क्ष कभी का ख हो चुका, खराब हो चुका। यह खत्रियों की जमात है, जो आज दुनिया में दिखाई पड़ती है। अगर परशुराम ने अठारह बार साफ ही कर दिया मामला, तो ये कोई साधारण खत्री भी नहीं हैं; अठारह बार खतम हो चुके, मगर फिर-फिर लौट आए। तो जरूर दूसरों ने लौटाया।
तो उस समय एक अच्छी प्रथा थी। कलियुग में ही हो सकती है ऐसी प्रथा। उस प्रथा को कहते थेः नियोग। कोई भी स्त्री ऋषि-मुनियों के पास जाकर निवेदन कर सकती थी कि मुझे बच्चा चाहिए और ऋषि-मुनियों का काम ही यही था कि स्त्रियों को बच्चों की जरूरत पड़ जाए, कोई विधवा हो जाए, बच्चा न हो या किसी जोड़े को बच्चा न होता हो, तो ऋषि-मुनि बेचारे सेवा कर देते थे। अरे, जो सेवा करे वह मेवा पाए! तो थोड़ा मेवा उनको मिलता था, थोड़ी सेवा वे कर देते थे। ऋषि-मुनि क्या हुए, महादेव जी के सांड हुए! ये वेटरिनरी डाक्टर तो अब जो कर रहे हैं, यह कलियुग में जब परशुराम भगवान थे तब होता ही रहा। इसको नियोग कहते थे। मगर ऋषि-मुनि जो करें सो ठीक! इसमें कुछ पाप नहीं। इस तरह क्षत्रिय फिर-फिर बनते रहे।

आज परशुराम को तुम हत्यारा कहोगे, महाहत्यारा कहोगे। चंगेजखां और तैमूरलंग और नादिरशाह और एडोल्फ हिटलर और स्टैलिन और माओत्से-तुंग सब फीके पड़ जाएंगे। ये सब मिलकर भी इतनी हत्या नहीं किए जितनी उस अकेले आदमी ने की, अगर तुम्हारे पुराणों पर भरोसा किया जाए--तो परशुराम जैसा बड़ा हत्यारा कभी हुआ ही नहीं। और जब परशुराम को भगवान माना जा सका तो तुम समझ सकते हो कि लोगों की बुद्धि क्या रही होगी, कितनी अपरिष्कृत रही होगी, कितनी जड़ रही होगी।
कृष्ण को भगवान माना जा सका, दूसरों की सोलह हजार स्त्रियां उठा लाए। इनके बच्चे तड़फे होंगे, इनके पति तड़फे होंगे, इनके परिवार नष्ट हुए होंगे। और ये स्त्रियां सब अपने मन से नहीं आ गई होंगी; इनको जबर्दस्ती छीन-झपटकर लाया गया था। और फिर भी कृष्ण को भगवान माना जा सका! यह कलियुग में ही संभव है। यह सतयुग में कैसे संभव हो सकता है?
और फिर कृष्ण के जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसमें भगवत्ता जैसी बात झलकती हो। और कृष्ण ही जिम्मेवार हैं महाभारत के। महाभारत में ही भारत की रीढ़ टूट गई, उसके बाद भारत फिर कभी उठा नहीं। जो गिरा सो आज तक नहीं उठ सका है। ये पांच हजार साल जो भारत की दुर्दशा के साल हैं, इनके लिए अगर कोई एक व्यक्ति सर्वाधिक जिम्मेवार है तो वह कृष्ण। उनको अगर भगवान माना जा सका तो जरूर लोगों की भगवान की धारणा बताती है कि लोग किस बुद्धि के रहे होंगे।
मेरे हिसाब में, मैं विकासवादी हूं, ह्नासवादी नहीं। मेरे लिए तो बाद-बाद में लोग अच्छे आए। परशुराम से बुद्ध तक आते-आते भगवत्ता निखरी। बुद्ध को भगवान कहा जा सकता है, परशुराम को नहीं। मैं कबीर को भगवान कह सकता हूं, राम को नहीं। भगवत्ता निखरती आई, निखरती आई। आज हम सतयुग में जी रहे हैं, आज पहली दफा पृथ्वी पर मनुष्य प्रौढ़ हुआ है। और आगे-आगे दिन और सुंदर होंगे। आगे-आगे और फूल खिलेंगे इस बगिया में।
और पूरा विज्ञान मेरे समर्थन में है। पूरा विज्ञान विकास की धारणा पर खड़ा हुआ है। मगर अभी भी मूढ़जन दोहराए चले जा रहे हैं कि यह कलियुग है और आशा कर रहे हैं कि और चीजें बिगड़ेंगी, और बिगड़ेंगी, सब नाश होगा। यह सड़ी- गली धारणा, यह रुग्ण-जर्जर चित्त त्याग देने योग्य है, मुक्त हो जाने योग्य है। तो मैं इस तरह की धारणाओं का समर्थन नहीं कर सकता हूं। आनंदमूर्ति, स्वामी अक्षयानंद महाराज को कहना कि मैं उनकी हर बात से राजी हूं--अर्थात न तो मैं भारतीय संस्कृति का समर्थक हूं, न शास्त्रों का समर्थक हूं और न ही किसी को धोखा दे रहा हूं कि जो मैं सिखा रहा हूं वह भारतीय संस्कृति है, या भारतीय धर्म है। मेरी बात तो दो टूक साफ है कि जो मैं सिखा रहा हूं वह मेरा अनुभव है; उस पर मेरे हस्ताक्षर हैं; उस पर किसी की बपौती नहीं है। जो मैं सिखा रहा हूं वह शिक्षा जैसी चीज नहीं है; वह शिक्षा से बिल्कुल उलटी है, विपरीत है। उसे तुम ज्ञान से मुक्ति तो कह सकते हो, लेकिन ज्ञान का देना नहीं कह सकते हो। ज्ञान दिया नहीं जाता। तुम्हारा थोथा ज्ञान गिर जाए तो तुम्हारे भीतर से ज्ञान के झरने फूटते हैं। बाहर से नहीं आता ज्ञान। ज्ञान तुम्हारा स्वभाव है।
देखा न कल, बुल्लेशाह ने कहा कि परमात्मा को क्या खोजना? अरे, यहां का यहां! कहां जाते हो खोजने? न शास्त्रों में है, न शब्दों में है, न सिद्धांतों में है--तुम्हारे भीतर की शून्यता में है। उस शून्य को ही मैं ध्यान कहता हूं, समाधि कहता हूं, निर्वाण कहता हूं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं प्रश्नों से भरा हूं, आप उत्तरों से। क्या मैं आशा करूं कि आप मेरी सारी जिज्ञासाओं का समाधान कर देंगे? यदि आप आश्वासन दें तो मैं संन्यास तक लेने को तैयार हूं।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
मैं प्रश्नों से भरा हूं, आप उत्तरों से।
क्या मैं आशा करूं कि आप मेरी सारी जिज्ञासाओं का समाधान कर देंगे?
यदि आप आश्वासन दें तो मैं संन्यास तक लेने को तैयार हूं।

भाईदास भाई, भाई, कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो! संन्यास तक! जैसे कि कोई कहे कि जहर तक पीने को तैयार हूं! ऐसी झंझट में न पड़ो। अच्छे-भले आदमी, चंगे आए, चंगे ही जाओ! क्या बिगड़ना है?
और तुमसे किसने कहा कि मैं उत्तरों से भरा हूं। हां, प्रश्नों से खाली
हो गया हूं। तुम प्रश्नों से भरे हो, मैं प्रश्नों से खाली हूं। उत्तरों से मैं भरा हूं, इस भ्रांति में न रहो। मैं कोई पंडित नहीं हूं। हां, तुम्हें भी प्रश्नों से खाली होना हो तो मुझसे जुड़ सकते हो--वही संन्यास है। प्रश्नों के उत्तर नहीं होते।
सदगुरु प्रश्नों के उत्तर नहीं देता है, प्रश्नों को तोड़ता है। तुम जरा गौर तो करो कि मैं तुम्हारे जो प्रश्नों के उत्तर देता हूं, वे उत्तर हैं? कि इधर से लंगड़ी मारी, उधर से एक दचका दिया, इधर खोपड़ी पर लट्ठ मारा! एक हुद्दा आगे से, एक पीछे से। इसको तुम उत्तर कहते हो? उत्तर होते हैं शास्त्रों में। यहां तो कुटाई-पिटाई हो जाती है।
और तुम कह रहे हो कि "आप मेरी जिज्ञासाओं का समाधान कर देंगे। यदि आप आश्वासन दें... !"
गारंटी चाहते हो! एक ही बात की गारंटी दे सकता हूं कि तुम्हारे प्रश्नों को नष्ट कर दूंगा। एक-एक प्रश्न को उखाड़कर फेंक दूंगा। और उत्तर बाहर से नहीं आते। जब सारे प्रश्न गिर जाते हैं तो तुम्हारे भीतर ही उत्तरों का उत्तर, समाधानों का समाधान। इसीलिए तो हम उस अवस्था को समाधि कहते हैं, क्योंकि वह समाधानों का समाधान है। उत्तर नहीं है। जिंदगी कोई स्कूल की परीक्षा नहीं है कि प्रश्न पूछे और उत्तर दे दिए। लेकिन आदतें हमारी खराब हैं; सड़ी-गली आदतें हैं; दकियानूसी आदतें हैं।
गुलाम रूहों के कारवांमें
जरस की आवाजभीनहींहै
उठो, तमद्दुन के पासबानो!
तुम्हारेआकाओंकीजमींसे
उबलचुकेजिंदगीकेचश्मे
निशानसिजदों के अब
जबींसेमिटाओ, देखोछुपा न ले वो लहूटपकताहैआस्तींसे
गुलाम रूहों के कारवांमें
नफस की आवाजभीनहींहैउठो,
मुहब्बत के पासबानो!
ये कोहरो-सहरा, ये दश्तो-दरिया तुम्हारेअजदादगाचुकेहैं
यहां पे वो आतिशींतराना
जोगर्मिए-बज्मथा, मगरअबगुजरगयाउसकोइकजमाना समंदे-अय्यामबर्क-पाहै
उठोकितारीख हरवरकपर
तुम्हारा शुभनामढूंढतीहै
न देंगेआवाजउसके शहपर
जोवक्तउड़ताचलागयाहै
जमीनआंखोंसेमतकुरे
दोन मिल सकेंगी वो हड्डियांजो जमींकातारीकगहरासीना
निगलचुकाहै--नयाकरीना
सिखाओपामालजिंदगीको
उठो, मजारों के पासबानो!
चलो न गर्माओजिंदगीको ये ढेरसूनेपड़ेहैं, इनपरकहींसेदोफूलही चढ़ाओ
गुलाम रूहों के कारवांमें
जरस की आवाजभीनहींहै

यह देश क्या है--एक गुलाम रूहों का कारवां हो गया है, जिसमें कोई जीवन
की घंटियां भी नहीं बजतीं!
गुलाम रूहों के कारवांमें
जरस की आवाजभीनहींहै
गुलाम रूहों के कारवांमें
नफस की आवाजभीनहींहै
घड़ियाल तो क्या बजेंगे, यहां सांस की आवाज तक खो गई है! उठो, तमद्दुन के पासबानो!
हे संस्कृति के पागलो!
उठो, मुहब्बत के पासबानो!
बहुत हो चुकीं प्रेम की बातें, अब उठो!
उठो, मजारों के पासबानो!
पूज चुके कब्रों को बहुत, उठो अब थोड़े जिंदगी को जीओ।
ये ढेर सूने पड़े हैं, इन पर
कहीं से दो फूल ही चढ़ाओ
भाईदास भाई, तुम कहते हो कि प्रश्नों से भरे हो। तुम्हारे प्रश्न तुम्हारे ही प्रश्न होंगे न। और अज्ञान में क्या प्रश्न हो सकते हैं? और ज्ञान में तो प्रश्न होंगे ही क्यों? अज्ञान में व्यर्थ के कुतूहल होते हैं या चालबाजियां होती हैं या धोखा होता है या पाखंड होता है। तुम्हारे प्रश्नों में तुम्हारी ही छाप होगी न! तुम्हारे प्रश्न तुम्हारे ही प्रतिबिंब होंगे न! तुम्हारे प्रश्न आखिर तुम्हारे भीतर ही से तो आएंगे। अब बबूल में कोई गुलाब के फूल तो न लगेंगे। अब बबूल के कांटों को मैं बैठा रहूं, तोड़ता रहूं, इससे भी क्या होगा? नए कांटे उगते रहेंगे।
इसलिए मैं तो जड़-मूल से तुम्हें मिटा दूंगा। भाईदास भाई, अगर तैयारी
हो बिल्कुल मिटने की तो संन्यासी हो जाओ। आश्वासन एक देता हूं कि मिटाऊंगा, बिल्कुल मिटा दूंगा, जड़ों से उखाडूंगा। कहीं कुछ शेष न रहेगा तुम्हारा तुम में। और जब तुम्हारा तुम में कुछ भी शेष न रहेगा तो पा जाओगे तुम सभी समस्याओं का समाधान।
दादा चूहड़मल फूहड़मल बीमार थे। डाक्टर के यहां गए। डाक्टर ने सब जांचा-परखा और दो दवा की गोली देकर कहा, एक सुबह एक शाम खाना। बस एक ही दिन में बिल्कुल चंगे नजर आओगे।
दादा घबराकर बोले, क्या बोले बरी डाक्टर, नंगे नजर आओगे!
डाक्टर ने कहा कि नहीं-नहीं, मैंने कहा, चंगे हो जाओगे। यानी मेरी दवा इतनी बढ़िया है कि एक ही दिन में बिल्कुल ठीक हो जाओगे।
दादा बोले, अच्छा-अच्छा, यह बात है! बरी यह तो बताओ कि दवा काहे के साथ खानी है?
जवाब मिला, चाय या दूध के साथ खाइएगा। दादा को संतोष न हुआ--बरी डाक्टर हमको तो एक बात बोल दो--या चाय या दूध। हमको दोहरी बातें ठीक नहीं लगतीं। डाक्टर ने कहा, अच्छा तो दूध के साथ गोली लीजिएगा।
दादा ने पूछा, दूध गाय का या भैंस का?
डाक्टर ने कहा, माफ करिए, मुझे और भी मरीज देखने हैं। अब आप ही अकेले
तो नहीं कि आप से ही थोड़े ही सिर मारता रहूं। आपको जो दूध मिल जाए उसी के साथ ले लेना, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।
दादा बोले, बरी डाक्टर, गुस्सा क्यों होते हो? हम आज पहली बार ही ऐलोपैथी का इलाज करवा रहे हैं, इसलिए सब बातें क्लियर-क्लियर जानना चाहते हैं। न हमारे घर गाय है न भैंस, बकरियां हैं। यदि बकरी के दूध के साथ गोली खा लूं तो कोई नुकसान तो नहीं है न?
उत्तर मिला, नहीं।
मगर दादा की जिज्ञासा अभी समाप्त न हुई--बरी, एक बार और बताओ न! दूध गर्म चाहिए या ठंडा?
डाक्टर ने पिंड छुड़ाने के लिहाज से कह दिया, कुनकुना।
दादा बोले, ठीक। दूध गिलास में पीना कि कटोरी में?

डाक्टर को गुस्सा आ गया--साईं अब घर भी जाइए न! आपको कुछ और काम नहीं है क्या?
दादा बोले, काम क्यों नहीं है। पर जब हमने आपको पूरी फीस दी है तो बदले में हमें भी पूरी-पूरी जानकारी तो दीजिए। बताइए कि दूध खड़े-खड़े पीना है कि बैठकर पीना है?
डाक्टर ने अपना माथा ठोंक लिया--साईं आप यह लीजिए अपनी फीस वापस। दस
का नोट पकड़ाते हुए उसने कहा--खुदा के वास्ते अब मेरा पीछा छोड़िए।
दादा बोले, लेकिन बरी तुम तो नाराज होते हो। हम तो सीधा-सादा आदमी है। कभी ऐलोपैथी का इलाज नहीं करवाया, इसलिए पूछता है कि दूध खुद अपने हाथ से पीना है या मेरे मुन्ने की अम्मा यदि पिला दे तो कोई नुकसान है?
डाक्टर को भी हंसी आ गई। बोला, साईं, तुम तो बड़ा जानदार आदमी है! जा अब अपने घर और मुन्ने की अम्मा के हाथ से दूध पी।
दादा ने कहा, अच्छा तो जाता हूं बरी डाक्टर, मगर एक बात तो बताओ कि घर
तक पैदल जाऊं या रिक्शे में बैठकर?
डाक्टर ने कहा, रिक्शे में जाओ, इस बुखार में पैदल चलना ठीक नहीं।
दादा डाक्टर से राम-राम बरी साईं कहकर चल दिए। डाक्टर ने संतोष की सांस ली, लेकिन आश्चर्य की बात तो तब घटी जब आधा घंटे बाद दादा लौट आए और बोले, बरी डाक्टर, तुम कैसा इंसान है! हमको यह नहीं बताया कि कौन सी गोली सुबह खानी है और कौन सी शाम को खानी है। हमारा मुन्ने की अम्मा ने हमको बहुत डांटा।
डाक्टर ने संयम साधकर कहा, यह सुबह खाइए और यह शाम को।
दादा बोले, तुम्हारी भूल के कारण हमको वापस आना पड़ा बरी, हमको फिर से
घर जाने के लिए दस रुपए रिक्शा का भाड़ा दो, वर्ना हम कैसे जाएंगे?
डाक्टर ने आधा मिनट गंभीरता से सोचा और चुपचाप दस का नोट दादा के हाथ में थमा दिया, इसी में ज्यादा भलाई थी। दादा मुस्काते बाहर आए और वेटिंग रूम में बैठी अपनी बीबी को आंख मारकर बोले कि लोग कहते हैं कि "जाको राखे साइयां, मार सके न कोय", ऐसा कहने वाले निरे मूर्ख हैं, गधे हैं। उनको कहना चाहिएः जाको लूटे साइयां, बचा सके न कोय। बीबी हंसती हुई उठी और बोली, तो फिर आज कौन सी पिक्चर चला जाए मुन्ने के पापा? इस डाक्टर से आज कितने रुपए वसूल करे? अरे, बरी बोलो न!
तुम्हारी जिज्ञासाएं, भाईदास भाई, किसी काम न आएंगी। यहां तो जिज्ञासाएं तोड़नी हैं। यहां तो प्रश्न गिराने हैं। उत्तर मेरे पास कोई नहीं है। उत्तरों का उत्तर है, और वह तुम्हारे भीतर है; उसे खोजने का रास्ता बता सकता हूं।

आखिरी प्रश्नः ओशो, मैं संन्यासी क्या हो गया हूं, लोग मुझे पागल समझने लगे हैं--अपने ही लोग। मैं जीवन में पहली बार आनंदित हूं और मेरे परिवार के लोग दुखी। यह पहेली मेरी कुछ समझ में नहीं आती। वे यदि मुझे प्रेम करते हैं, जैसा कि वे कहते हैं, तो उन्हें भी आनंदित होना चाहिए न!

आखिरी प्रश्नः भगवान,
मैं संन्यासी क्या हो गया हूं, लोग मुझे पागल समझने लगे हैं--अपने ही लोग।
मैं जीवन में पहली बार आनंदित हूं और मेरे परिवार के लोग दुखी।
यह पहेली मेरी कुछ समझ में नहीं आती।
वे यदि मुझे प्रेम करते हैं, जैसा कि वे कहते हैं, तो उन्हें भी आनंदित होना चाहिए न
कृष्णप्रेम भारती, इसमें कुछ पहेली नहीं। बात बिल्कुल सीधी है। प्रेम
के नाम पर और सब चलता है, प्र्रेम नहीं। प्रेम के नाम पर बहुत कुछ चलता है-- प्रेम को छोड़कर। बातें करते हैं लोग कि हम चाहते हैं तुम आनंदित होओ; मगर जब तुम आनंदित होओगे तब तुम अड़चन अनुभव करोगे। क्योंकि जैसे ही तुम आनंदित हुए कि लोगों को तुम कांटे की तरह गड़ोगे और खटकोगे। तुम तो फूल बनोगे, मगर लोगों के लिए कांटों की तरह अटकोगे, गड़ोगे। क्यों? क्योंकि वे

दुखी हैं। और तुम्हें आनंदित देखकर ईर्ष्या जगती है, वैमनस्य पैदा होता है, बैर जगता है। तुम्हें आनंदित देखकर वे यह नहीं मान सकते कि तुम सच में आनंदित हो गए हो। वे यही मानेंगे कि तुम पागल हो गए हो। और अगर तुम फिर भी उनकी न सुने और दुखी न हुए जैसे कि वे दुखी हैं, अगर तुम उन जैसे ही नहीं हो गए, उनकी ही भीड़ में सम्मिलित नहीं हो गए, तो फिर वे तुम्हें जितना भी कष्ट दे सकते हैं, वह भी देंगे। और कहेंगे यही कि तुम्हारे भले के लिए दे रहे हैं कि तुम पागल जो हो गए हो।
संन्यास आनंदित तो करेगा और आनंदित होने में खतरे आते हैं।
एक बारपहलेभीनग्मा-बारथीं शाखेंबर्गो-बारआए थे,
नख्ल फूललायाथालदगईथींफूलोंसे खाके-बेसरो-सामां
एक बारपहलेभीमैंने घरबसायाथाएकबारपहलेभीमैंने घरसजायाथा
एक बारपहलेभीकाफिलेबहारों के
ओढ़कर रु-ए-गुलइसतरफसेगुजरेथे
आपही न जानेक्योंबुझ गए दीए घर के
एक शोला-ए-गमसे खाकहोगईमहफिल
नेशे-खारफूलोंकेदिल में चुभगयाजाकर
काफिलेबहारों के लुट गए सरे-मंजिल
एक बारपहलेभीतीरगी के दामनमें
मर्गे-नग्मा-ओ-गुलपरआंसुओंसे खेलाहूं
आजतुमनेफिरआकरसबदीए जलाए हैं
गमकदे की दीवारेंजगमगाउठीहैंफिर
संन्यास तो तुम्हारे जीवन में एक दीया है। संन्यास तो तुम्हारे कारागृह में खुले आकाश का आगमन है। संन्यास तो तुम्हारे दुख से भरी हुई दुनिया में आनंद की बरखा है।
मैं न तो तुमसे कहता हूं परमात्मा को खोजो, न तुमसे कहता हूं मोक्ष को खोजो। मैं तो तुमसे कहता हूं कि तुम अगर अभी शांत हो जाओ तो मोक्ष तुम्हारे भीतर उतर आता है और परमात्मा तुम्हें खोजता चला आता है। संन्यस्त होते ही तुम्हारे जीवन की शैली बदलती है, नया घर बसता है। यूं तुमने बहुत घर बसाए पहले भी, मगर ऐसा घर कभी नहीं बसाया। पहली बार तुम्हारा घर मंदिर बनता है। पहली बार तुम्हारे जीवन में संगीत-बजता है और पहली बार तुम्हारे जीवन में फूल आते हैं, पहली बार मधुमास उतरता है! निश्चित ही चारों तरफ ईर्ष्या जगेगी, चारों तरफ विरोध होगा। दुखी लोग चाहते हैं कि तुम भी दुखी रहो। दुखी आदमी के साथ उन्हें कोई अड़चन नहीं। सच तो यह है, दुखी आदमी को देखकर उन्हें अच्छा लगता है कि वे इतने दुखी नहीं जितने दुखी तुम हो--तुलना में। उनको लगता है हम अच्छी हालत में हैं। इसलिए दुखी आदमी से हर आदमी सहानुभूति दिखाता है और सुखी आदमी से हर आदमी ईर्ष्या करता है। यह गणित बहुत साफ है, इसमें उलझन कुछ भी नहीं।
तुम जब दुखी आदमी से सहानुभूति दिखाते हो, तब जरा भीतर गौर करना तुम्हारे भीतर सुख आ रहा है। क्योंकि अगर तुम सच में ही दुखी आदमी के दुख में सहानुभूति प्रगट करते हो तो सुखी आदमी के सुख में तुम्हें उत्सव भी मनाना चाहिए; वह कठिन है। तुमसे बहुत बार कहा गया है, सदियों-सदियों में कहा गया है कि दुखी आदमी के साथ सहानुभूति प्रगट करो। मैं तुमसे कहता हूंः सुखी आदमी के उत्सव में उत्सव मनाओ, तब मैं समझूंगा कि तुम धार्मिक हो। वह तो कोई भी मूढ़ कर लेता है। वह तो कोई भी बेईमान कर लेता है। दुखी आदमी के दुख में सहानुभूति प्रगट करने में अहंकार को तृप्ति मिलती है, मजा आता है। किसी के घर में आग लग जाती है तो तुम सब इकट्ठे हो जाते हो सहानुभूति प्रगट करने, कि बहुत बुरा हुआ भाई, कैसा दुर्भाग्य! ऐसा नहीं होना था। कैसे हो गया! तुम्हारी आंखों में आंसू दिखाई पड़ते हैं, लेकिन भीतर तुम्हारे रस बह रहा है। और जब तुम्हारे पड़ोस में कोई आदमी एक नया आलीशान मकान बनाता है, तब तुम प्रसन्न होते हो? अगर सच में ही तुम किसी के मकान में लगी आग के कारण दुखी हुए थे, तो किसी के बने नए मकान को देखकर तुम्हें भी नाच उठना चाहिए। लेकिन कोई नाच नहीं उठता, ईर्ष्या भरती है। तुम उस रास्ते से निकलना छोड़ देते हो; तुम दूसरे रास्ते से, लंबे रास्ते से चले जाते हो।

तुम्हें उसके महल देखकर पीड़ा उठती है, घाव तुम्हारे ताजे हो जाते हैं कि अरे, मैं कुछ न कर पाया और इस आदमी ने मकान बना लिया!
मैं तुमसे कहता हूं, फिर से कहता हूंः सच्चा धार्मिक आदमी दूसरे के सुख में सुखी होने की कला जानता है। और जो दूसरे के सुख में सुखी हो सकता है, उसकी ही सहानुभूति सार्थक है, अन्यथा बेईमानी है।
तुम आनंदित हो रहे हो कृष्णप्रेम भारती, इससे तकलीफ तो आएगी। आनंदित होना इस दुनिया में बड़ी खतरनाक बात है। जहां हजारों-हजारों वृक्षों पर फूल न हों, वहां एक वृक्ष पर फूल आ जाएं तो सारे वृक्ष टूट पड़ेंगे उस वृक्ष पर, तोड़ डालेंगे उसे। सारे वृक्ष कुल्हाड़ियां उठा लेंगे, काट डालेंगे उसे। इसीलिए तो तुमने सुकरात को जहर पिलाया। इसीलिए तुमने जीसस को सूली पर लटकाया। इसीलिए तो सरमद की गर्दन काटी। क्या कारण था? इनका क्या कसूर था?
इनका एक ही कसूर था, इनका एक ही गुनाह था कि ये आनंदित थे, ये परम आनंदित थे, ये आह्लादित थे, ये नाच उठे थे। और तुम लंगड़े हो; नाच तो दूर, तुम चल भी नहीं पाते। तुम्हें तो बैसाखियां चाहिए। और जब बैसाखियां लिए हुए लोग किसी को नाचता हुआ देखें तो अपनी बैसाखियों से ही उसका सिर तोड़ देंगे। कायनाते-दिल में ये गाता हुआ कौन आ गया
हर तरफ तारे से बरसाता हुआ कौन आ गया
चार जानिब फूल बिखराता हुआ कौन आ गया
ये मुझे नींदों से चौंकाता हुआ कौन आ गया
मीठी-मीठी आग एहसासात में जलने लगी
रूह पर लिपटी हुई जंजीरे-गम गलने लगी जिंदगी की शाखे-मुर्दा फूलने-फलने लगी नकहतों से चूर शर्मीली हवा चलने लगी दहर में मस्ती को नहलाता हुआ कौन आ गया जर्रा-हाए-खाक तारों की खबर लाने लगे आस्मानों पर धनुक के रंग लहराने लगे नख्ल अपनी शाने-रानाई पे इतराने लगे सर्द झोंके डालियों के साज पर गाने लगे कल्बे-आलम को ये तड़पाता हुआ कौन आ गया जिंदगी की तल्खियां इक ख्वाब होकर रह गईं शौक की गहराइयां पायाब होकर रह गईं
काली रातें रूकशे-महताब होकर रह गईं
सुस्त नब्जें रेशा-ए-सीमाब होकर रह गईं
बर्क की मानिंद लहराता हुआ कौन आ गया
चुन लिए किसने मेरी पलकों से अश्कों के शरार किसने अपने कल्ब से भींचा है मेरा कल्बे-जार छट गए जज्बात पर छाए हुए गहरे गुबार
मुड़ गई अफ्कार में चुभती हुई इक
नोके-खारबीती घड़ियों को ये लौटाता हुआ कौन आ गया जो कभी तारों में जाकर झिलमिलाया, वो न हो
जो कभी फूलों में छिपकर मुस्कुराया, वो न हो
जो दूर रहकर भी रग-रग में समाया, वो न हो
जो मेरे अब तक बुलाने पर न आया, वो न हो
ये लजाता, रुकता, बल खाता हुआ कौन आ गया
ये तो खुद मेरे तसव्वुर का है इक अक्से-जमील
ये तो दिल की धड़कनों में हो रही है कालो-कील आह लेकिन
ये रुखे-पुरनूर ये चश्मे-कहील लड़खड़ाती चाल में पिनहां खिरामे-रोदे- नीलआईना-सा मुझको दिखलाता हुआ कौन आ गया
संन्यास तो आईना है। संन्यास तो वही है जो तारों में झिलमिलाता है, जो फूलों में मुस्कुराता है। संन्यास सूरज की किरण है, चांद की चांदनी है। संन्यास इंद्रधनुषों का रंग है। संन्यास दीए की ज्योति है; दीयों का

उत्सव है, दीवाली है। संन्यास होली भी है, दीवाली भी।

और चारों तरफ से विरोध होगा। लेकिन इस विरोध से कृष्णप्रेम भारती, घबड़ाना मत। दुनिया पागल कहे, हंसकर टाल जाना।
भोर आ गई
अंधियारे का दर्पन टूटा पूरब ने पौ बरसाई
अंगारे का झूमर पहने ऊषा ने ली अंगड़ाई
जंगल महके, पंछी चहके, लहकी बहकी पुरवाई
भोर आ गई, भोर आ गई
रुकी-रुकी सी, झुकी-झुकी सी, दुखी-दुखी सी आशाएं मचल-मचलकर उछल-उछलकर, गगन-झरोके छू आएं
मन में सपनों की महारानी मन ही मन में इतराई
भोर आ गई, भोर आ गई
धुआंधार पच्छम की बस्ती, धड़-धड़ पूरब देश जले
सूरज देवता घात लगाए, रात की देवी हाथ मले
किरनों की गोपी कुहरे में कांप-कांप के चिल्लाई
भोर आ गई, भोर आ गई
एक सुबह का पर्दापण हुआ है तुम्हारे जीवन में। और जो रात के अंधेरे में भटक रहे हैं, नाराज होंगे, निंदा करेंगे, गालियां देंगे।
मगर उनकी गालियों को अभिशाप न समझना; उनकी गालियां सूचनाएं हैं कि तुम्हारी जिंदगी में सुबह की पहली-पहली किरणें फूटने लगीं। उनकी गालियां भोर होने की खबर दे रही हैं। वे तुम्हें पागल कहें, चुपचाप स्वीकार कर लेना। वे तुम्हारी निंदा करें, आनंदमग्न हो सुन लेना। तुम अपनी मस्ती की चिंता करो। तुम उनकी फिक्र ही न लो। यूं ही हुआ है, यूं ही आगे होता रहेगा। आनंद मैत्रेय ने पूछा है--
भगवान, स्वर्गीय श्री रामधारी सिंह दिनकर बहुत मेधावी, संवेदनशील
और भावप्रवण कवि थे और आपके प्रेमियों में से थे।
उन्नीस सौ अड़सठ में जब पहली दफा उन्होंने पटना में आपका प्रवचन सुना
तो वे बहुत चिंतित हो उठे और उसी दिन उन्होंने मुझसे कहा कि
"तुम्हारे रजनीश जी बिल्कुल सुकरात की भांति बोलते हैं
और मुझे डर है कि लोग उनकी हत्या कर देंगे। तुम उन्हें सचेत कर दो।"
मुझे उस समय उनकी यह बात बहुत जंची नहीं और मैंने उनसे कहा कि
आप खुद उनसे मिलकर यह कहें तो अच्छा है।
पता नहीं कि दिनकर जी ने आपसे यह बात कही या नहीं,
लेकिन मैं विस्मित हूं कि इधर कुछ दिनों से मुझे उनकी यह चौदह वर्षों
की
भूली-बिसरी बात बार-बार स्मरण आती है।
भगवान क्या इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करेंगे?

आनंद मैत्रेय ने पूछा है-- ओशो, स्वर्गीय श्री रामधारी सिंह दिनकर बहुत मेधावी, संवेदनशील और भावप्रवण कवि थे और आपके प्रेमियों में से थे। उन्नीस सौ अड़सठ में जब पहली दफा उन्होंने पटना में आपका प्रवचन सुना
तो वे बहुत चिंतित हो उठे और उसी दिन उन्होंने मुझसे कहा कि "तुम्हारे ओशो बिल्कुल सुकरात की भांति बोलते हैं और मुझे डर है कि लोग उनकी हत्या कर देंगे। तुम उन्हें सचेत कर दो।" मुझे उस समय उनकी यह बात बहुत जंची नहीं और मैंने उनसे कहा कि आप खुद उनसे मिलकर यह कहें तो अच्छा है। पता नहीं कि दिनकर जी ने आपसे यह बात कही या नहीं, लेकिन मैं विस्मित हूं कि इधर कुछ दिनों से मुझे उनकी यह चौदह वर्षों की भूली-बिसरी बात बार-बार स्मरण आती है। ओशो क्या इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करेंगे?

आनंद मैत्रेय, उन्होंने मुझे भी कहा था। एक बार नहीं, कम से कम चार बार कहा था। जब भी मिले तभी कहा था। और मैंने उनको कहा कि इसमें चिंता होने की क्या बात है? इसमें परेशान होने की क्या बात है? सुकरात जैसा भाग्य तो कम

ही लोगों को मिलता है और उस भाग्य में जहर भी जुड़ा हुआ है। जीसस जैसा जीवन तो कम ही लोगों को मिलता है और उस जीवन में सूली अनिवार्य है। और सरमद होने में या अलहिल्लाज मंसूर होने में क्या चिंता? यूं तो आदमी को मरना ही होता है, आज नहीं कल। मृत्यु तो कोई विचारणीय बात नहीं है। लेकिन अगर सरमद की मौत मिले या सुकरात की, तो धन्यभाग है।
आनंद मैत्रेय, उन्होंने ठीक ही कहा था। और यह बात तुम्हें अब भी याद आती है चौदह वर्षों बाद, स्वाभाविक है, क्योंकि अब मैं और अपनी तलवार पर धार रख रहा हूं। यह धार बढ़ती रहेगी, बढ़ती रहेगी। मैं तो चोट गहन करता जाऊंगा। मेरे संन्यासियों को भी इसके लिए धीरे-धीरे तैयारी करनी चाहिए। इसलिए तुमने जो पूछा है, कृष्णप्रेम भारती, लोग पागल कहेंगे, शायद लोग पत्थर मारेंगे। लेकिन पत्थरों को फूल समझना और उनके पागल कहने को समझना कि अब तुम परमहंस हुए। यही उन्होंने सदा किया है, यही वे आज भी कर रहे हैं, यही संभावना है कि वे कल भी करेंगे। वे अगर अपनी मूढ़ता से बाज नहीं आते, तो क्या हम अपने बुद्धत्व से बाज आ जाएं?
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
पांचवां प्रवचन

बुद्धत्व आकाश-कुसुम है

पहला प्रश्नः ओशो,
श्रुतिः विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्ना,
न एको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पंथाः।।
"अर्थात श्रुतियां विभिन्न हैं, स्मृतियां भी भिन्न हैं और एक भी मुनि के वचन प्रमाण नहीं हैं। धर्म का तत्व तो गहन है। इसलिए उसे जानने के लिए तो महाजन जिस मार्ग पर चलते हैं, वही केवल मार्ग है।"
ओशो, महाजन की पहचान क्या है? उनके मार्ग पर चलने का अर्थ क्या है? समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद किरण, यह सूत्र अत्यंत सारगर्भित है। श्रुतिः विभिन्ना... । शास्त्र दो प्रकार के हैं--एक श्रुति और एक स्मृति। श्रुति का अर्थ होता है प्रबुद्ध पुरुष से सीधा-सीधा सुना गया। जिन्होंने गौतम बुद्ध के पास बैठकर सुना और उसे संकलित किया, वह श्रुति। जो महावीर के पास उठे-बैठे, जिन्होंने कबीर का सत्संग किया; जीवंत गुरु के पास जिन्होंने प्रेम के सेतु बनाए; जिन्होंने समर्पण किया--और सुना; जिन्होंने अपने को बाद दी--और सुना; जिन्होंने अपनी बुद्धि को एक तरफ रख दिया हटाकर--और सुना; जिन्होंने स्वयं के तर्क को बाधा न देने दी, स्वयं की जानकारियों को बीच में न आने दिया--और सुना; इस तरह जो शास्त्र संकलित हुए, वे हैं श्रुतियां। लेकिन फिर श्रुतियों को सुनकर जिन्होंने समझा, जैसे बुद्ध को आनंद ने सुना और बुद्ध के वचन संकलित किए... इसलिए सारे बुद्ध-शास्त्र इस वचन से शुरू होते हैंः मैंने ऐसा सुना है। आनंद यह नहीं कहता कि मैं ऐसा जानता हूं; इतना ही कहता है कि मैंने ऐसा सुना है। पता नहीं ठीक भी हो, ठीक न भी हो। पता नहीं मैंने कुछ बाधा दे दी हो। मेरे विचार की कोई तरंग आड़े आ गई हो। पता नहीं मेरा मन धुंधवा गया हो। मेरी आंखों में जमी धूल कुछ का कुछ दिखा गई हो। मैंने कोई और अर्थ निकाल लिए हों, कि अर्थ का अनर्थ हो गया हो। इसलिए पता नहीं बुद्ध ने क्या कहा था; इतना ही मुझे पता है कि ऐसा मैंने सुना था।
यह बड़े ईमानदारी का वचन है कि मैंने ऐसा सुना है। नहीं कि बुद्ध ने ऐसा कहा है। बुद्ध ने क्या कहा था, यह तो बुद्ध जानें, या कभी कोई बुद्ध होगा तो जानेगा। लेकिन फिर आनंद ने जो संकलित किया, आज उसे भी ढाई हजार वर्ष हो गए। उसको लोग पढ़ रहे हैं, गुन रहे हैं, मनन कर रहे हैं, चिंतन कर रहे हैं, उस पर व्याख्याएं कर रहे हैं। ये जो शास्त्र निर्मित होते हैं, ये स्मृतियां।
ये तो जैसे कि कोई आकाश का चांद झील में अपना प्रतिबिंब बनाए और तुम झील को भी दर्पण में देखो तो तुम्हारे दर्पण में भी चांद का प्रतिबिंब बने--प्रतिबिंब का प्रतिबिंब। श्रुति तो ऐसे है जैसे चांद झील में छा गया और स्मृति ऐसे है जैसे झील की तस्वीर उतारी, कि झील को दर्पण में बांधा। स्मृति दूर की ध्वनि है, और दूर हो गई। श्रुति भी दूर है, पर बहुत दूर नहीं; कम से कम गुरु और शिष्य के बीच सीधा-सीधा संबंध है। कुछ तो बात पते की कान में पड़ ही गई होगी। सौ बातों में एक बात तो सार की पकड़ में आ ही गई होगी।
किसी संधि से, किसी द्वार से, किसी झरोखे से कोई किरण तो उतर ही गई होगी।
लेकिन स्मृति तो बहुत दूर है--प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि है।
यह सूत्र कहता हैः श्रुतिः विभिन्ना... ।
यूं तो सुनने में ही बात बड़ी भिन्न-भिन्न हो जाती है। अब जैसे तुम मुझे यहां सुन रहे, जितने लोग सुन रहे, उतनी श्रुतियां हो गईं। मैं तो जो कह रहा हूं, एक ही बात कह रहा हूं। लेकिन तुम सुनने वाले तो अनेक हो, तुम्हारी अलग पृष्ठभूमि है, तुम्हारी अलग धारणा हैं, अलग विचार हैं। तुम अपने-अपने ढंग से सुनोगे। तुम्हारा ढंग, तुम्हारी शैली निश्चित रूप से जो

तुम सुनोगे उसे प्रभावित करेगी। हिंदू एक ढंग से सुनेगा, जैन दूसरे ढंग से, बौद्ध तीसरे ढंग से। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ धर्मों के कोई तीन हजार संप्रदाय हैं और तीन हजार संप्रदायों के कोई तीस हजार उपसंप्रदाय हैं। तुम अपनी-अपनी धारणाओं के जाल में बंधे हो। मेरी बात तुम तक पहुंचेगी, पहुंचते-पहुंचते कुछ की कुछ हो जाएगी। आस्तिक सुनेगा एक ढंग से, नास्तिक सुनेगा और ढंग से; दोनों के पास कान एक जैसे हैं, मगर कानों के भीतर बैठा हुआ मन और मन के संस्कार तो भिन्न-भिन्न हैं।
बुद्ध ने एक दिन कहा कि तुम जितने लोग हो उतने ही ढंग से मुझे सुन रहे हो, उतने ही ढंग से मेरी व्याख्या कर रहे हो। आनंद ने रात्रि उनसे पूछा कि मैं समझा नहीं। आप अकेले हैं, जो आप बोलते हैं हम वही तो सुनते हैं। अन्य कैसे हो जाएगा, भिन्न कैसे हो जाएगा?
बुद्ध ने तीन नाम दिए आनंद को और कहाः कल इन तीनों से पूछना कि क्या सुना था। मैंने जब प्रवचन पूरा किया था और अंतिम बात कही थी। रोज अपने प्रवचन के अंत पर बुद्ध कहते थे--अब रात बहुत हो गई, अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य करो। यह केवल एक संकेत था भिक्षुओं को कि अब जाओ, सोने के पहले ध्यान में उतरो और ध्यान में उतरते-उतरते ही निद्रा में लीन हो जाओ। क्योंकि सुषुप्ति में और समाधि में बहुत भेद नहीं है। सुषुप्ति मूर्च्छित समाधि है। समाधि जाग्रत सुषुप्ति है। इसलिए नींद को समाधि में बदल लेना सबसे सुगम उपाय है आत्मसाक्षात्कार का। जरा सी बात जोड़नी है।
सुषुप्ति का अर्थ है जब स्वप्न भी नहीं रह जाते, ऐसी गहन निद्रा। जब सारे स्वप्न भी तिरोहित हो गए, जहां स्वप्न भी न बचे, विचार भी न बचे, वासना भी न बची, वहां मन भी न बचा, तो अ-मनी दशा हो गई। लेकिन बेहोशी है, होश नहीं है। सन्नाटा है, गहन शांति है, प्रगाढ़ मौन है। लेकिन काश, एक दीया और जल जाता, जरा सा होश और होता! काश, हम इस प्रगाढ़ शांति को देख भी लेते, पहचान भी लेते! काश, हम जागे-जागे इसका अनुभव भी कर लेते! इसलिए नींद के पहले का ध्यान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसमें जो गहरा उतर जाए तो रातभर एक अखंडित धारा शून्य की भीतर बहती चली जाती है, ज्योति जलती रहती है। उस ज्योति में पहले सपने दिखाई पड़ते हैं, फिर सपने खो जाते हैं, फिर सुषुप्ति दिखाई पड़ती है। और जब सुषुप्ति दिखाई पड़ती है तो वही समाधि है। देखने वाला मौजूद हो तो सुषुप्ति समाधि है।
इसलिए बुद्ध ने--रोज-रोज क्या कहना कि अब ध्यान करो, इतना ही कह देते
थे प्रतीक कि अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य--अब दिवस पूरा हुआ, अब आखिरी काम कर लो और सो जाओ। उसको करते-करते ही सो जाओ।
बुद्ध ने आनंद से कहाः कल तू, तीन व्यक्ति हैं, इनसे पूछ लेना कि उन्होंने क्या समझा जब मैंने यह वचन कहा था। वे मेरे तीनों सामने ही बैठे हुए थे और तीनों को देखकर ही मैंने समझा कि उन्होंने अलग-अलग समझा है। आनंद ने कल उन तीनों को पकड़ा और पूछा, और कहा कि बुद्ध ने ही ये नाम दिए हैं, इसलिए सच-सच कहना। मैं नहीं पूछ रहा हूं, जैसे उन्होंने ही पुछवाया है।
थोड़ा तो संकोच हुआ उन तीनों को, लेकिन फिर जब बुद्ध ने ही पुछवाया था
तो अपना हृदय उघाड़ दिया। उनमें एक था भिक्षु--गहन साधना में लीन। उसने कहा, और क्या समझूंगा! यही समझा कि अब जाऊं, ध्यान में डूबूं और ध्यान में डूबा- डूबा ही निद्रा में उतर जाऊं। यही समझा। यही बुद्ध ने कहा था।
दूसरे से पूछा; वह एक चोर था। उसने कहा, छिपाना क्या, छिपाऊं कैसे? बुद्ध स्वयं पूछते हैं तो सत्य कहना ही होगा। जब बुद्ध ने यह वचन कहा तो मुझे याद आया कि अरे, रात गहरी होने लगी, मेरे काम का समय हुआ, अब जाऊं, चोरी वगैरह करके जल्दी घर लौटूं और सोऊं।
और तीसरी एक वेश्या थी। और जब आनंद ने उससे पूछा तो वह बहुत सकुचाई, बहुत लजाई। बड़ी प्रसिद्ध वेश्या थी--आम्रपाली, जो बाद में बुद्ध की भिक्षुणी बनी। बुद्ध की भिक्षुणी बनी, इससे ही जाहिर होता है कि एक प्रामाणिक स्त्री थी। सकुचाई जरूर, लेकिन फिर भी सत्य उसने कहा। उसने कहा कि छिपाना कैसे, छिपाना नहीं हो सकता। उन्होंने पूछा है तो वही कहना होगा

जो मेरे भीतर हुआ था। यही हुआ कि अब जाऊं, अपने व्यवसाय में लगूं। मेरा व्यवसाय तो वेश्या का व्यवसाय है।
तो एक ध्यान में लगा, एक चोरी करने निकल गया, एक अपनी वेश्यागिरी में संलग्न हो गई। और बुद्ध ने तो एक ही बात कही थी।
श्रुतिः विभिन्ना।
जितने सुनने वाले लोग हैं उतने ही अर्थ हो जाएंगे।
स्मृतयश्च भिन्ना।
और स्मृतियों का तो कहना ही क्या! वह तो मूलस्रोत से और भी बहुत दूर की बात हो गई। मैंने तुमसे कही, तुमने किसी और से कही, उसने किसी और से कही; फिर बात का बतंगड़ हो जाता है। बात न भी हो तो बतंगड़ हो जाता है। चिंदी का सांप हो जाता है, कुछ का कुछ होने लगता है। और सदियां बीत जाती हैं और लोग स्मृतियों को पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे को देते चले जाते हैं और हर पीढ़ी उसमें कुछ जोड़ती चली जाती है। हर पीढ़ी उसको वैसा ही थोड़े ही लेती है।
एक स्त्री अपनी पड़ोसिन को, झगड़ा हो गया था दो महिलाओं का, उसकी बात बता रही थी। पड़ोसिन रस से सुन रही थी। फिर उस स्त्री ने कहा, अब मैं जाऊं, पति के घर आने का समय हुआ।
लेकिन पड़ोसिन ने कहा, कुछ और तो बताओ।
वह स्त्री बोली कि सच तो यह है कि जितना मैंने सुना उससे ज्यादा तो मैं पहले ही बता चुकी। अब और क्या बताना। जितना मैंने सुना उससे ज्यादा तो मैं पहले ही बता चुकी।
तुम जब कुछ बात किसी से कहते हो तो कुछ तो जोड़ ही देते हो, कुछ काट देते हो, कुछ संवार देते हो, कुछ रंग भर देते हो अपने। तो स्मृतियां तो फिर और बहुत हो जाएंगी।
यह सूत्र अदभुत हैः श्रुतिः विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्ना।
श्रुतियां विभिन्न हैं, स्मृतियां भी भिन्न हैं। इसलिए श्रुतियों और स्मृतियों में अगर तुमने धर्म खोजा, कभी न पा सकोगे। सत्य खोजा, कभी न पा सकोगे। सावधान! यह सूत्र सावचेत कर रहा है। सजग रहना। शब्दों में मत उलझ जाना। शब्दों के बड़े जंगल हैं, सिद्धांतों के बड़े मरुस्थल हैं। उनमें खो गए तो लौटना मुश्किल हो जाता है। अपने ही घर लौटना मुश्किल हो जाता है। और एक भी मुनि के वचन भी प्रमाण नहीं है। लेकिन कोई कहे कि चलो, नहीं शब्दों में खोएंगे, नहीं शास्त्रों में, न स्मृतियों में, न श्रुतियों में; लेकिन किसी महात्मा के, किसी मुनि के वचन पर तो भरोसा कर सकते हैं; किसी जानने वाले की बात पर तो विश्वास कर सकते हैं। सूत्र कह रहा हैः यह भी नहीं, यह भी नहीं। क्योंकि विश्वास अनुभव नहीं है। तुम जिसको मान लोगे, पहले तो तुमने उसे माना क्यों? तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारी धारणाओं में अनुकूलता आ गई होगी, उस व्यक्ति के और तुम्हारी धारणाओं के बीच कुछ अनुकूल पड़ गया होगा। जैसे कि कोई जैन रामकृष्ण को परमहंस नहीं मान सकता; मछली खाते देखे और परमहंस माने, असंभव है। एक जैन भी रामकृष्ण के पास नहीं पहुंचा। कैसे पहुंचता!
कल ही मुझे एक जैन महिला का बड़ा लंबा पत्र मिला है। बड़ी ज्ञानी महिला होगी। सारे जैन शास्त्रों का सार निचोड़ कर रख दिया है। लिखा है कि आपकी बातें बहुत प्यारी लगती हैं, लेकिन आप महावीर जैसे वीतराग पुरुष के साथ कृष्ण का, क्राइस्ट का, मोहम्मद का, बुद्ध का, इनका नाम क्यों ले देते हैं। वीतराग ही केवल भगवान है। वीतरागता ही एकमात्र कसौटी है। वीतरागता की कसौटी पर राम तो न उतरेंगे, कृष्ण तो न उतरेंगे। कृष्ण और राम की तो बात ही छोड़ दो, बुद्ध भी नहीं उतरते, क्योंकि बुद्ध भी कम से कम वस्त्रों का तो उपयोग करते हैं, भिक्षापात्र तो रखते हैं--इतना राग तो है, इतना परिग्रह तो है। महावीर दिगंबर हैं, करपात्री हैं, हाथ से ही भोजन लेते हैं; लंगोटी भी नहीं। दिगंबरत्व वीतरागता का प्रमाण है।
तो इस स्त्री को अड़चन हो रही कि कैसे मोहम्मद का नाम लेते हो--मोहम्मद,
जो कि तलवार लिए हैं। कृष्ण जो कि सभी तरह के राजनैतिक दांव-पेंचों में उलझे हैं। राम, जो कि युद्ध पर निकले हैं। यह सब माया-मोह है। यह तो राग का ही जाल है।

उस बेचारी को मेरी बातें प्रीतिकर लगती हैं लेकिन अड़चन सिर्फ एक आ जाती है कि मैं महावीर के साथ कभी बुद्ध का, कभी महावीर का, कभी जरथुस्त्र का, कभी लाओत्सु का, कभी मोहम्मद का साथ-साथ उल्लेख कर देता हूं, उससे ही कष्ट हो जाता है।
अब अपनी धारणा के अनुकूल जो होगा, तुम उसी को तो मुनि कहोगे। तुम्हारी धारणा के जरा अनुकूल न हुआ कि मुनि न हुआ। तुम ही निर्णायक हो। तुम्हारे पास कसौटी है। फिर किसको मुनि कहो? और अड़चन इसलिए भी आ जाएगी कि प्रत्येक मुनि के वचन भिन्न हैं, प्रत्येक ने अपने ढंग से कहा, अपने रंग से कहा। प्रत्येक की अपनी अद्वितीयता है, अपनी मौलिकता है और तुम्हारे सड़े-गले ढांचों में कोई जिंदा, कोई जीवंत बुद्ध, कोई जीवंत जिन नहीं बैठ सकता। तुम्हारे ढांचे मुर्दों के आधार पर बनते हैं और तुम जिंदा लोगों को उन ढांचों पर बिठाना चाहो, यह संभव नहीं है।
फिर यह भी तो हो सकता है कि कोई कहता हो कि मैंने जाना, लेकिन विक्षिप्त हो या बेईमान हो। क्या प्रमाण कि उसने जाना? क्योंकि जानने वालों की बातें इतनी भिन्न हैं कि प्रमाण कैसे मानो? कृष्ण तो मानते हैं परमात्मा में भी, आत्मा में भी। महावीर परमात्मा में नहीं मानते, सिर्फ आत्मा में मानते हैं। और बुद्ध तो न परमात्मा में मानते, न आत्मा में मानते। फिर क्या करोगे? किस मुनि का वचन प्रमाण होगा? और एक भी मुनि का वचन प्रमाण नहीं।
न एको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
फिर वचन प्रमाण हो भी कैसे सकता है? क्योंकि सत्य विराट है और शब्द बहुत छोटे हैं। सत्य शब्दों में समाता नहीं। कहो, लाख कहो, फिर भी अनकहा रह जाता है। सत्य है आकाश जैसा और शब्द तो छोटे-छोटे घरघूले हैं। सत्य है सागर जैसा और शब्द तो छोटी-छोटी बूंदें भी नहीं। तो वचन कैसे प्रमाण होंगे? वचन प्रमाण नहीं हो सकते। सच तो यह है सत्य का सिवाय अनुभव के और कोई प्रमाण नहीं होता। और अनुभव अपना हो तो ही प्रमाण होता है। पर-अनुभव कैसे प्रमाण हो सकता है? लाख कोई सिर पटके और कहे कि मैंने परमात्मा देखा है। लेकिन तुम्हें कैसे भरोसा आए? या आदमी आत्मवंचना में हो सकता है या दूसरों को वंचना में डाल रहा हो सकता है। खुद सम्मोहित हो गया हो किसी धारणा से।
और इस तरह के लोग हैं जो कृष्ण को भजते हैं, निरंतर भजते रहते हैं, उनको कृष्ण दिखाई पड़ने लगते हैं। उनका ही प्रक्षेपण है। उनकी ही कल्पना है। कहां कौन कृष्ण हैं? क्राइस्ट को भजने वाले को कृष्ण कभी प्रकट नहीं होते, उसे क्राइस्ट दिखाई पड़ते हैं। और कृष्ण के भजने वाले को क्राइस्ट कभी दिखाई नहीं पड़ते। कभी भूल-चूक से अगर ये आ भी जाएं बीच में तो कहेगा--धत तेरे की, हटो! कहां बीच में आ रहे हो? नहाएगा, धोएगा, गंगा-जल से अपने को स्वच्छ करेगा।
जैन विचार-सरणी के अनुसार तीर्थंकर को कांटा भी नहीं चुभ सकता है, क्योंकि उनके सारे पाप समाप्त हो गए, उनके सारे कर्म समाप्त हो गए। इसलिए तो वे तीर्थंकर हैं--कांटा भी नहीं चुभ सकता। अगर तीर्थंकर निकलते हों और रास्ते पर कांटा पड़ा हो सीधा, तो उलटा हो जाता है। तो फिर जीसस को वे कैसे मानें कि ये तीर्थंकर की कोटि के हैं, क्योंकि इनको तो सूली लग जाती; कांटा चुभना तो दूर, सूली लग जाती। जरूर पिछले जन्मों के किसी महापाप का फल भोग रहे हैं!
लेकिन ईसाई को महावीर बिल्कुल नहीं जंचते। क्या सार है कि नंग-धड़ंग खड़े हो गए? और आंखें बंद कर लीं और अपने मोक्ष की तलाश भी करने लगे, यह तो निपट स्वार्थ है। माना कि शांत हो गए होओगे, और माना कि प्रफुल्लित भी हुए, आनंदित भी हुए, लेकिन सेवा कहां? न अस्पताल खोला, न स्कूल चलाए, न अनाथों की सेवा की, न लूले-लंगड़ों के पैर दबाए, न कोढ़ियों का कोई इंतजाम किया। यह कैसा धर्म है? जीसस ने अंधों को आंखें दीं, बहरों को कान दिए, लंगड़ों को पैर दिए, बीमारों को चंगा किया, मुर्दों को जिलाया। ये लक्षण हैं। इन लक्षणों के अतिरिक्त कोई कैसे भगवत्ता को उपलब्ध माना जा सकता है?

तो ईसाइयों के हिसाब से महावीर और बुद्ध स्वार्थी हैं, निपट स्वार्थी हैं। अपने सुख की तलाश, यह तो वही की वही बात हुई, कोई अपना धन खोज रहा है, कोई अपना धर्म खोज रहा है। मगर अपना! कोई संसार में जीत जाना चाहता है, कोई मोक्ष में--मगर अपनी जीत! अपनी विजय-पताका फहरानी है। कोई यहां जीतकर कहना चाहता है कि मैं महावीर हूं, कोई वहां जीतकर कहना चाहता है कि मैं महावीर हूं। कोई यहां विजेता बनना चाहता, कोई वहां। और जो वहां विजेता हो जाते हैं, उनको हम जिन कहते हैं, जिन्होंने जीत लिया। मगर वही जीत की भाषा हुई। ईसाइयों को नहीं जमती।
मुसलमानों से पूछो; न महावीर जमेंगे, न ईसा जमेंगे, न बुद्ध जमेंगे। मुसलमानों के हिसाब से तो मोहम्मद ही सच्चे पैगंबर हैं, असली पैगंबर! क्यों? क्योंकि जीवनभर जूझे, अज्ञानियों को रूपांतरित करने के लिए तलवार उठाई, जान जोखिम में डाली। लेकिन कस्त किया था, संकल्प किया था कि जो-जो भटके हुए हैं उन्हें रास्ते पर लाएंगे। मुसलमान बनाना यानी रास्ते पर लाना। जो-जो गुमराह हैं, मार्गच्युत हो गए हैं, अगर अपनी मर्जी से आ जाएं तो ठीक, लेकिन न आएं तो जबर्दस्ती भी लाना पड़े तो लाएंगे।
यूं समझो न, जैसे तुम्हारा छोटा सा बच्चा आग में हाथ डालना चाहे। मान जाए समझाने से तो ठीक, नहीं तो थप्पड़ भी मारोगे, झपटकर उसे खींच भी लोगे। मोहम्मद की महाकरुणा है--मुसलमान के हिसाब से--कि वे तलवार लेकर तुम्हारे पीछे पड़े, कि गर्दन उतार दूंगा, चलते हो मस्जिद कि नहीं, पढ़ते हो कुरान या नहीं? लो अल्लाह का नाम, क्योंकि जो अल्लाह को याद करेगा और कुरान के मार्ग पर चलेगा, वही मोक्ष पाएगा, वही स्वर्ग पाएगा। शेष सब तो नर्क की अग्नि में गिर जाएंगे। तुम्हें नर्क की अग्नि से बचाने के लिए कैसा अथक श्रम किया मोहम्मद ने! तुम्हारे विपरीत भी। तुम्हारी ही फिकर न की। यह भी फिकर न की कि तुम जाना भी चाहते हो स्वर्ग या नहीं। ये इसे कहते हैं महाकरुणा! न तो जीसस ने ऐसी करुणा दिखाई। अंधों को आंखें देने से क्या हो जाएगा? इतने लोगों को तो आंखें वैसे ही हैं, उनको क्या हो गया है? और बहरों को कान मिल गए तो क्या फायदा? वही फिल्मी गाने सुनेंगे जो तुम सुन रहे हो। और लंगड़े चलने भी लगे तो क्या करेंगे, जाएंगे कहां? वही शराब-घर, वही वेश्या के मुहल्ले में। और मुर्दों को जिला भी दिया, तो पहले ही जिंदा थे, पहले ही कौन सा बड़ा काम कर लिया था, अब क्या कर लेंगे?
लजारस को जिंदा कर दिया जीसस ने, फिर क्या किया, इसका तो कोई बताए? लजारस ने फिर किया क्या? फिर कुछ पता ही नहीं चलता कि लजारस का हुआ क्या? चलो जिंदा ही हो गए तो फिर वही गोरखधंधा किया होगा, जो पहले करते थे। सूफियों के पास तो एक कहानी भी है कि जीसस एक गांव में आए और उन्होंने देखा एक आदमी नाली में पड़ा हुआ गालियां बक रहा है। उसके पास गए समझाने कि भाई, क्यों गालियां बकता है? परमात्मा ने यह वाणी दी है, भजन गाओ, कीर्तन करो, प्रभु का नाम लो। जब पास गए तो देखा यह तो शकल पहचानी हुई मालूम पड़ती है। याद किया तो पता चला--अरे, यह आदमी तो गूंगा था! उस आदमी को हिलाया और कहा कि भई याद कर, मुझे भूल गया?
तो उसने कहा, भूलूं? सात जन्म नहीं भूलूंगा। मैं तो गूंगा था, भला था।
यह तुमने ही मुझे जबान दी, अब इस जबान का क्या करूं? गालियां न दूं तो और क्या करूं, इस संसार में है क्या? सब तरह के दुष्ट हैं। पहले तो गूंगा था तो पी जाता था भीतर ही भीतर, अब जबान है तो कह देता हूं। इससे और अड़चन हो गई है। इससे और मुश्किल हो गई है। इससे रोज झगड़ा-फसाद खड़ा हो जाता है। यह तुमने जबान क्या दे दी, जिंदगी में झगड़े-फसाद दे दिए। और झगड़े-फसाद और चिंता और उपद्रव के कारण शराब पीने लगा हूं। यह सबका जुम्मा तुम्हारा है। जीसस तो बहुत हैरान हुए। थोड़े आगे बढ़े तो उन्होंने देखा एक जवान आदमी
एक वेश्या के पीछे चला जा रहा है--सीटी बजाता हुआ, एकदम मस्ती में गुनगुनाता हुआ! शकल पहचानी हुई मालूम पड़ी। रोका और कहा कि जवान आदमी हो और अभी से गलत रास्ते पर चले हो। अरे, इस जिंदगी को परमात्मा ने किसलिए दिया है?
उस आदमी ने कहा कि चुप, यह तू ही है। मैं तो बीमार था, मैं तो खाट से लगा था, खराब काम करना भी चाहता तो नहीं कर सकता था। तूने ही मुझे स्वस्थ किया।

अब मुझे बता, इस स्वास्थ्य का क्या करूं? तूने मुझे जवानी दी, अब इस जवानी का क्या करूं? और अब बाधा डालने आया है? मैं तो इस झंझट से मुक्त ही था। हड्डी-हड्डी हो रहा था, उठ नहीं सकता था, बैठ नहीं सकता था, खांसता-खंखारता बिस्तर से लगा था। तूने मुझे जवान किया, स्वस्थ किया, चंगा किया, अब क्या करूं? सीटी न बजाऊं तो और क्या करूं? और सुंदर स्त्रियों के पीछे न जाऊं तो कहां जाऊं?
जीसस तो इतने उदास हो गए कि गांव छोड़कर बाहर निकले। वहां देखा कि एक आदमी इंतजाम कर रहा है मरने का। हो सकता है लजारस ही हो। फंदा लगाकर झाड़ में लटकने के करीब ही है कि जीसस ने जाकर रोका कि रुक भाई, यह तू क्या कर रहा है?
उस आदमी ने कहा कि पहचानो कि मैं कौन हूं। मैं तो मर गया था, उस वक्त भी
तू आ गया और मुझे जिंदा कर दिया। और जिंदगी में मुझे कुछ सार मालूम होता नहीं। सिवाय दुख, सिवाय संताप के, चिंताओं के कुछ भी नहीं। अब तू जा, राह से लग अपनी। मुझे मरने दे। मुझे नहीं चाहिए यह जिंदगी। मुझे माफ कर। अब और चमत्कार न दिखा, देख चुका बहुत चमत्कार। अपने चमत्कार अपने पास रख। सूफियों की यह कहानी बड़ी अदभुत है। इसमें बात तो कुछ पते की है। क्या होगा आदमी को जिंदगी भी देने से? आंख दे दिए, पैर दे दिए, जबान दे दी, क्या होगा? आदमी वही करेगा जो सारे दुनिया के लोग कर रहे हैं। तो मुसलमान नहीं कहता कि यह कोई चमत्कार है। चमत्कार तो सिर्फ एक है कि लोगों को अगर मर्जी से हो तो मर्जी से, और अगर न मर्जी से हो तो न मर्जी से। लेकिन अल्लाह की याद दिलाओ, उनको मुसलमान बनाओ।
तुम्हें लगेगा कि यह बात बड़ी जबर्दस्ती की है, स्वतंत्रता छिन रही है। यह तो बच्चे को भी लगेगा कि वह आग की तरफ जा रहा है और मां उसकी खींच रही है, स्वतंत्रता छिन रही है। लेकिन ये सारे लोग इतनी विभिन्न भाषा में बोलते हैं; इतने अलग-अलग ढंग और अलग-अलग लहजे हैं इनके। इनकी शैलियां और व्यवस्थाएं ऐसी हैं कि तुम किसको प्रमाण मानोगे?
न एको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
किसी भी एक मुनि का कोई वचन प्रमाण नहीं है। फिर क्या रास्ता है?
सूत्र कहता हैः धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
आनंद किरण, तुमने इसका अनुवाद किया कि धर्म का तत्व तो गहन है। उस अनुवाद में यूं तो कुछ भूल नहीं, भाषा के लिहाज से अनुवाद बिल्कुल ठीक है; मगर अनुभव के लिहाज से भूल है।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
सिर्फ भाषांतर, शुद्ध भाषा का ही रूपांतरण करना हो, तो तुम्हारा अनुवाद ठीक है कि धर्म का तत्व तो गहन है। लेकिन अगर इसके भाव में उतरना हो, भाषा को ही न पकड़ना हो, तो इसका अर्थ बहुत और है। इसका अर्थ है धर्म का तत्व तो स्वयं के भीतर की गुहा में छिपा हुआ है। गुहायाम्! वह जो अंतर-गुहा है, वह जो हृदय की गुफा है, वहां छिपा हुआ है। न तो मुनि के वचनों में मिलेगा, न श्रुतियों में, न स्मृतियों में। अंतर-गुहा में। हिमालय की गुफाओं में नहीं, भीतर की गुफा में। अपनी ही चेतना में डुबकी लगाओगे तो पाओगे।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
क्योंकि श्रुतियां भी बाहर हैं, स्मृतियां भी बाहर हैं, मुनियों के वचन भी बाहर हैं और धर्म तो तुम्हारे भीतर है। धर्म तो तुम्हारा स्वभाव है, स्वरूप है।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
खोजो उसे अपनी ही गुहा में। धर्म का तत्व तो मिलेगा समाधि से, क्योंकि समाधि है अपने में डुबकी।
महाजनो येन गतः स पंथाः।
और महाजन जिस मार्ग पर चलते हैं वही केवल मार्ग है।
तुम पूछते हो, "महाजन की पहचान क्या है?"
बुद्धि के लिए तो महाजन की कोई पहचान नहीं हो सकती, क्योंकि महाजन की प्रतीति ही बुद्धि की प्रतीति नहीं। और पहचान की भाषा बुद्धि की भाषा है।

तुम पूछ रहे हो, "कौन से लक्षण?"
फिर उपद्रव शुरू हो जाएगा--वही उपद्रव जो मुनियों के लिए है, वही महाजन के लिए हो जाएगा। किस बात को लक्षण मानोगे? दिगंबरत्व लक्षण है महापुरुष का? तो फिर नग्न दिगंबर जैन मुनि ही केवल महाजन रह जाएंगे। फिर ईसा और जरथुस्त्र और बुद्ध और लाओत्सु और च्वांगत्सु जैसे अदभुत पुरुष महापुरुष न रह जाएंगे, महाजन न रह जाएंगे। किस बात को लक्षण मानोगे? अगर लोगों की सेवा करना ही लक्षण है तो महावीर ने कभी किसी की कोई सेवा नहीं की।
मेरे पास पत्र आ जाते हैं लोगों के। जैन भी मुझे पत्र लिख देते हैं कि
आप गरीबों की सेवा क्यों नहीं करते? अगर ये महावीर को मिल जाएं, महावीर से भी कहेंगे कि गरीबों की सेवा क्यों नहीं करते! क्या तुम सोचते हो महावीर के समय में गरीब नहीं थे, कोढ़ी नहीं थे, अंधे नहीं थे, लंगड़े नहीं थे, लूले नहीं थे? सब थे। महावीर ने किसी की सेवा नहीं की, न बुद्ध ने किसी की सेवा की। लक्षण क्या है? अगर सेवा लक्षण है तो फिर ईसाई मिशनरी--महाजन। वे सेवा में ही लगे रहते हैं। उनका काम ही सेवा करना है। उनका धर्म ही सेवा है। अगर समाधि लक्षण है तो समाधि बड़ी भीतर की बात है। किसको मिली, किसको नहीं मिली--कौन तय करे? कैसे तय करे? रामकृष्ण मूर्च्छित हो जाते थे समाधि में। बुद्ध कभी मूर्च्छित नहीं हुए। अगर बौद्धों से पूछो तो रामकृष्ण की समाधि--जड़ समाधि, असली समाधि नहीं। यह कोई समाधि हुई? समाधि में तो चैतन्य प्रगाढ़ होना चाहिए। यह तो चेतना और खो गई। और बौद्धों से मनोचिकित्सक भी राजी हैं। मनोचिकित्सक भी रामकृष्ण के संबंध में यही कहते हैं कि यह एक तरह का मिर्गी का फिट है। और लक्षण मिलते हैं कि मिर्गी में भी जो घटना घटती है वही रामकृष्ण को घटती थी। मुंह से फसूकर बहता था, आंखें ऊपर चढ़ जाती थीं, हाथ-पैर अकड़ जाते थे। अब बहुत मुश्किल है कि महाजन का लक्षण क्या? यह मिर्गी आ रही है कि समाधि लग रही है? बुद्ध को तो ऐसी कभी समाधि लगी नहीं। लेकिन अगर रामकृष्ण को मनाने वाला इसको समाधि मानता हो तो उसको बुद्ध की समाधि में शक होगा कि न तो हाथ-पैर अकड़ते हैं, न आंखें ऊपर चढ़ती हैं। दोनों आंखें ऊपर चढ़नी चाहिए, तब तो तृतीय नेत्र का अनुभव होगा। दांत भिंच जाने चाहिए, उस बात का लक्षण है कि ऊर्जा ऊपर जा रही है। रामकृष्ण की जीभ कट जाती थी कभी-कभी दांतों के बीच पड़ जाती थी। फसूकर तो निकलना ही चाहिए? वह इस बात का लक्षण है कि देह और आत्मा का तादात्म छूट गया। अब किसको लक्षण मानोगे?
तो महाजन कौन है, बुद्धि के द्वारा कोई निर्णय नहीं हो सकता। फिर निर्णय होता है--हृदय से। जिससे तुम्हारी प्रीति लग जाए, जिससे तुम्हारे हृदय का छंद मिल जाए, जिसके पास बैठकर तुम्हारा आनंद-कमल खिले--वही महाजन है। बाकी ऊपरी बातें छोड़ दो। जिसको कार्ल गुस्ताव जुंग ने सिंक्रानिसिटी कहा है। जिसके पास बैठकर तुम्हारे भीतर संगीत बज उठे। जिसके भीतर जीवन अपनी परिपूर्णता में जागा हो, निश्चित ही उसके पास अगर कोई मौन समर्पित भाव से बैठे तो उस जीवन की छाप, उस जीवन का धक्का तुम्हारी सोई हुई चेतना को भी लगेगा। वे किरणें तुम्हारे भीतर भी प्रवेश करेंगी और तुम्हारे भीतर भी एक नईशृंखला का सूत्रपात होगा। तो जिसका जहां तालमेल बैठ जाए। सिंक्रानिसिटी का अर्थ हैः तालमेल, छंदबद्धता, लयबद्धता। जिसकी बांसुरी सुनकर तुम्हारे भीतर कोई नाच उठे, तुम्हारे पैरों में अचानक घूंघर बजने लगें--वही महाजन है।
महाजन की परीक्षा बौद्धिक नहीं है, हार्दिक है; तार्किक नहीं है, प्रीतिगत है। और प्रेम तो पागल होता है। प्रेम कोई हिसाब-किताब मानता है? जहां तुम्हारा मन-मयूर नाचे, वह महाजन है। फिर तुम किसी की न सुनना, दुनिया कुछ भी कहे। अगर तुम्हारा मन-मयूर मोहम्मद के पास नाचे तो तुम फिर फिक्र मत करना कि कौन क्या कहता है, कि वीतराग हैं या नहीं? तुम्हारा मन-मयूर नाचा तो मोहम्मद तुम्हारे लिए महाजन तो हैं ही और दुनिया में बहुत तरह के लोग हैं। किसी को बांसुरी प्यारी लगती है और किसी को न भी लगे। और किसी को सितार प्यारा लगता है और किसी को न भी लगे।

तुम्हारा रुझान इतना भिन्न-भिन्न है कि कोई बुद्ध के साथ नाच उठेगा, कोई महावीर के साथ नाच उठेगा, कोई मोहम्मद के साथ, कोई जीसस के साथ, कोई कबीर के साथ। कहां तुम्हारी गुनगुन पैदा हो जाए--जहां तुम्हारे भीतर गुंजन आ जाए, जिसके माध्यम से तुम्हारे भीतर का पक्षी पर फड़फड़ा दे, आकाश में उड़ने को आतुर हो जाए--वही महाजन है।
महाजनो येन गतः स पंथाः।
फिर महाजन क्या कहता है, इसकी बहुत फिक्र मत करना। कैसे जीता है, इसकी चिंता करना। कहने में मत उलझना। उसके जीवन को, उसके जीवन के सौंदर्य को, उसके जीवन के प्रसाद को पीना। कैसे उठता, कैसे बैठता। गीता में कृष्ण ने स्थितिधी की परिभाषा की है--कैसे उठता, कैसे बैठता, कैसे चलता। हर हाल में, दुख हो कि सुख, सम रहता। जीत हो कि हार, उसे अंतर नहीं पड़ता।
तुम महापुरुष के या महाजन के शब्दों की बहुत चिंता मत करना। तुम उसके जीवन की पहचान में उतरना। उसकी आंखों में झांकना। उसके प्राणों के साथ अपना तालमेल जोड़ना। उसकी जीवन-चर्या को ही तुम उसका संदेश समझना।
महाजनो येन गतः स पंथाः।
जैसे महाजन चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, जीते हैं--बस वैसे ही जीना।
और ध्यान रहे, इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम उनका अनुकरण करना, कि नकल करना। इसका कुल इतना अर्थ है कि तुम उनके साथ अपने छंद को जोड़ना। तुम इतने शून्य हो जाना कि तुम्हारे भीतर अहंकार न बचे, ताकि जिस महापुरुष से, जिस महाजन से तुम्हारी प्रीति लग गई हो, उसका जीवन तुम्हें पूरा का पूरा आच्छादित कर ले, उसकी वर्षा तुम पर पूरी-पूरी हो जाए। अपने पात्र को खुला कर देना, ढांक कर मत बैठे रहना। अपने सब पर्दे गिरा देना, ताकि उसकी किरणें तुम्हारे भीतर आ जाएं। अपने सब द्वार-दरवाजे खोल देना, ताकि उसकी हवाएं आएं और तुम्हारी धूल-धवांस को झाड़ ले जाएं।
महाजनो येन गतः स पंथाः।
इसलिए न तो श्रुतियों में भटकना, न स्मृतियों में, न मुनियों के वचनों में। क्योंकि सत्य तो तुम्हारे भीतर छिपा है। लेकिन तुम्हें अपने सत्य का अभी पता नहीं है; इसलिए जिसे पता हो... और किसे पता है? जिसके पास बैठकर तुम्हारे भीतर का सत्य अंगड़ाई लेने लगे, उसे पता है बस; इसके सिवाय और कोई प्रमाण नहीं है। जिसके पास बैठकर तुम्हें खुमारी छाने लगे, मस्ती आने लगे, समझ लेना इशारा, कि यही है वह जगह, कि यही है वह मंजिल, जिसकी मैं तलाश करता था; कि यही है वह मंदिर जिसकी चौखट पर मेरे सिर को झुका देना है, फिर उठाना नहीं। तो वह जो धर्म का अत्यंत गहराइयों में छुपा हुआ तत्व है, उसका साक्षात्कार हो सकता है।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पंथाः।।
योग प्रीतम का यह गीत--
बहो मेरी नदिया, बहो धीरे-धीरेबहो भाव-निर्झर, बहो धीरे-धीरे
महाजन की पहचान भाव-निर्झर से होगी। जिसके पास तुम्हारे भाव का झरना बहने लगे--वह झरना जो सदियों से अवरुद्ध पड़ा है।
बहो मेरी नदिया, बहो धीरे-धीरे
बहो भाव-निर्झर, बहो धीरे-धीरे
बहो यों, जमाना बहे साथ तेरे
बनो इक तराना कि सब गुनगुनाएं
हृदय के वनों में--गहन घाटियों में
कहो मौन-मुखरित स्वयं की कथाएं उड़ो मेरी मैना, उड़ो हौले-हौले
उड़ो मेरे सुगना, उड़ो धीरे-धीरे
उड़ो इस तरह चित्त-आकाश में तुम तुम्हें देखकर पंख सब फड़फड़ाएं
उड़ो यों, उन्हें याद आ जाए खुद की जुड़ो यों कि सबके हृदय भी जुड़ाएं खिलो मेरी कलियां, हृदय-वृन्त पर तुम

खिलो मेरे फुलवा, खिलो धीरे-धीरे
खिलो, देख तुमको खिलें चित्त सारे कोई गीत गाओ,
गजल गुनगुनाओ डुबा दो सभी को सुरभि-सिंधु में तुमकि सौंदर्य का राज सबको सुनाओ
झरो मेरी बदली--सुधा-वर्षिणी बनझरो मेरे मेहा,
झरो धीरे-धीरे
झरो यों, बहारों के मेले जुड़ें नित
कहीं मोर नाचे, पपीहा पुकारे
धरा लहलहाए, हृदय झूम गाए
बहे सुख-सरित तोड़कर सब किनारे
कहो मेरी मस्ती, बहकते हुए कुछ
कहो मेरे मनवा, कहो धीरे-धीरे
मदिर सा कहो कुछ, मधुर सा कहो
कुछ कि ज्यों कोकिला की कुहू आम्रवन से कि जैसे चटक कर कली कह उठे कुछ
छिड़े तान, जोड़े धरा को गगन से
रहो मेरे मितवा, रहो साथ मेरे
हृदय की कहानी, कहो धीरे-धीरे
बहो मेरी नदिया, बहो धीरे-धीरे
बहो भाव-निर्झर, बहो धीरे-धीरे
महाजन की पहचान भावों से होती है, तर्कों से नहीं, सिद्धांतों से नहीं। इसलिए महाजन की पहचान केवल दीवाने कर पाते हैं। शमा जलती है तो परवाने खिंचे चले आते हैं। बस परवाने ही पहचान पाते हैं। परवाने मरने चले आते हैं।
धर्म का तत्व तो अत्यंत गहरी गुफाओं में छिपा पड़ा है--उन गुफाओं में
जो तुम्हारे भीतर हैं, लेकिन जिनका तुम्हें कोई पता नहीं, कोई पहचान नहीं। लेकिन जिसके भीतर धर्म का अनुभव प्रगाढ़ हो गया हो, उसकी मौजूदगी में तुम्हारे भीतर भी टंकार पड़ सकती है, तुम्हारे वीणा के तार भी उसकी बजती वीणा के कारण झंकृत हो सकते हैं। जो जाग गया है उसकी मौजूदगी तुम्हारी नींद को भी तोड़ने का कारण हो सकती है।
इसलिए महाजन की पहचान, आनंद किरण, बुद्धि की बात नहीं। बुद्धि के लक्षणों से कुछ भी न होगा। भाव की बात है, दीवानगी की बात है, मस्ती की बात है, खुमारी की बात है। यह मामला पियक्कड़ों का है, रिन्दों का है; मंदिरों का कम, मयकदों का ज्यादा है। शराबियों का ज्यादा, जुआरियों का ज्यादा, दुकानदारों का कम।
यह पूरी प्रक्रिया प्रेम की प्रक्रिया है। कैसे तुम पहचान लेते हो कि किसी स्त्री से तुम्हारा प्रेम हो गया, कि किसी पुरुष से तुम्हारा प्रेम हो गया? कैसे? क्या प्रमाण होता है? कौन सी श्रुति, कौन सी स्मृति? होता है तो हो जाता है, नहीं होता तो नहीं होता। लाख उपाय करो तो नहीं होता। और हो जाए तो लाख उपाय करो, तो मिटा नहीं पाते। ठीक ऐसी ही घटना, प्रेम की ही घटना एक बहुत ऊंचे तल पर गुरु और शिष्य के बीच भी घटती है। मगर वह घटना प्रेम की है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, जड़ों के बिना फूलों की संभावना नहीं और अतीत के बिना वर्तमान संभव नहीं। ऐसे ही हमारी जड़ें भारतीय संस्कृति के चिरंतन गौरव से जुड़ी हैं। यह जो आप संन्यास का फूल खिला रहे हैं, इसकी जड़ें भी भारतीय संस्कृति में हैं, इससे आप इनकार नहीं कर सकते। ध्यान, जो कि आप सिखा रहे हैं, यह भी आपका मौलिक नहीं है। फिर क्यों नहीं आप भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण सनातन धारा को स्वीकार करते हैं?
क्या यह भी एक सत्य नहीं है कि आप भी भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में खिले एक श्रेष्ठतम फूल हैं?
ओशो, आशा है कि आप इसे स्वीकार करेंगे।

भारत भूषण, आशा तो प्यारी है, पर क्षमा करना, निराश करूंगा। नहीं स्वीकार कर सकता हूं। तुम्हारी बातें ऊपर से तो बिल्कुल ठीक लगती हैं, भीतर से बिल्कुल भी ठीक नहीं।
पहली बातः "जड़ों के बिना फूलों की संभावना नहीं... ।"
यह सच है, जहां तक भौतिक फूलों का संबंध है, जड़ों के बिना फूलों की कोई संभावना नहीं। लेकिन बुद्धत्व तो आकाश कुसुम है। यह कोई साधारण फूल नहीं। यह कोई पौदगलिक, पदार्थगत फूल नहीं है। यह तो फूल ही अदृश्य है। और यह अदृश्य फूल जड़ों से नहीं जुड़ा होता। लेकिन जैसा हम सोचते हैं कि अतीत के बिना वर्तमान कैसे संभव होगा?
वही तुमने कहा कि "अतीत के बिना वर्तमान संभव नहीं... ।"
और मैं तुमसे कहना चाहूंगाः अतीत के कारण ही वर्तमान संभव नहीं हो पाता है। तुम कहते हो, अतीत के बिना वर्तमान संभव नहीं। और मैं भी तुम्हारी बात समझा। यही बात कोई भी कहेगा। लेकिन तुम भी कोशिश करो मेरी बात समझने की। अतीत के कारण ही वर्तमान संभव नहीं। जब अतीत गिर जाता है तभी वर्तमान संभव होता है।
साधारण लोकोपचार में अतीत, वर्तमान और भविष्य, समय के तीन खंड हैं। लेकिन जिन्होंने समाधि को जाना है, उनके लिए समय के दो खंड हैं--अतीत और भविष्य। वर्तमान समय का खंड ही नहीं। वर्तमान शाश्वत का हिस्सा है, समय का नहीं। समय तो प्रवाहमान है और शाश्वत थिर है। वर्तमान तो शाश्वत का प्रवेश है समय की धारा में। जैसे अंधेरे में कोई किरण उतर आए। माना कि अंधेरे में है किरण, लेकिन अंधेरे का हिस्सा नहीं है; हिस्सा तो किसी सूरज का है। जैसे अंधेरे में उतरती हुई किरण। जैसे तुम्हारे घर में अंधेरा छाया है और सिर्फ खप्पड़ की जरा सी संध से, सूरज की एक किरण उतर आई है। यूं तो तुम्हारे अंधेरे कमरे का ही हिस्सा है, ऊपर से देखने पर, क्योंकि तुम्हारे अंधेरे कमरे में मौजूद है; लेकिन तुम्हारे अंधेरे कमरे का हिस्सा नहीं। अंधेरे का प्रकाश कैसे हिस्सा हो सकता है? है तो किरण सूरज की।
ऐसे ही वर्तमान शाश्वत का हिस्सा है, समय का नहीं। समय का तो दो खंड़ों में विभाजन हो सकता है--अतीत और भविष्य। और जो वर्तमान में ठहर जाता है, उसकी न तो अतीत में कोई जड़ें होती हैं और न भविष्य में कोई शाखाएं होती हैं। वह तो पूर्णतया वर्तमान में ही होता है। और वर्तमान इतना विराट है कि अब क्या जरूरत अतीत की और क्या जरूरत भविष्य की? भविष्य में होती है कामना, वासना; अतीत में होती है स्मृति। और समाधि में न स्मृति होती है, न वासना होती है। और जहां न स्मृति है न वासना, वहां शाश्वतता का अनुभव होता है। वह अनुभव वर्तमान है।
इसलिए भारत भूषण, क्षमा करना तुम्हें निराश कर रहा हूं। यह फूल जो बुद्धत्व का है, जड़ों के बिना खिलता है। और यह जो वर्तमान है, जिसकी मैं बात कर रहा हूं, इसका अतीत से कोई भी लेना-देना नहीं। यह अतीत कीशृंखला का हिस्सा नहीं है, उसकी कड़ी नहीं है। यह अतीत से बिल्कुल ही भिन्न है--अतीत का अतिक्रमण करता है, अतीत के पार है।
तुम तो एक बात को मान लिए, फिर उसमें से और तर्क निकालते गए--"ऐसे ही हमारी जड़ें भारतीय संस्कृति के चिरंतन गौरव से जुड़ी हैं।"
तुम्हारी जुड़ी होंगी, मुझे उससे कुछ लेना-देना नहीं। कभी मेरी भी जुड़ी थीं, लेकिन जब से मैं जागा तब से नहीं जुड़ी हैं। तब से भारतीय संस्कृति से नहीं, किसी संस्कृति से नहीं जुड़ी हैं। तब से मेरे ही अतीत से नहीं जुड़ी हैं तो किसी और के अतीत से क्या जुड़ेंगी?
जागरण क्रांति है, परंपरा नहीं। छलांग है।
और किस चिरंतन गौरव की तुम बातें कर रहे हो? धर्म का इतिहास से कोई संबंध नहीं। कहां का चिरंतन गौरव? क्यों मुर्दों को ढोते हो? क्यों सड़ी लाशों को घसीटते हो? इतना बोझ हो गया है तुम्हारे ऊपर कि तुम चल भी नहीं पाते, नाचना तो बहुत दूर। मगर बोझ को उतारें कैसे, वह तो गौरवपूर्ण है! मैं जो तुम्हारे अतीत का खंडन करता हूं निरंतर, उसका कारण यह है कि चाहता हूं कि तुम अतीत का सारा बोझ उतार दो। सोने का ही सही तुम्हारा अतीत,

मगर उतारो। सोने को भी छाती पर अगर रखे बैठे रहे तो मार डालेगा। और क्या है गौरव उसमें? अगर तुम्हारे देश में बुद्ध हुए, महावीर हुए, तो यह केवल संयोग की ही बात है तुम्हारा देश। तुम्हारे देश के कारण नहीं हो गए। क्योंकि चीन में लाओत्सु हुआ, च्वांगत्सु हुआ, लीहत्सु हुआ; कोई अड़चन न आई। यूनान में सुकरात हुआ, पाइथागोरस हुआ, प्लाटीनस हुआ; कोई अड़चन न आई। जेरूसलम में जीसस हुए; कोई अड़चन न आई।
सारी दुनिया में जाग्रत पुरुष हुए हैं। जाग्रत पुरुष के होने का कोई संबंध न तो भूगोल से है, न इतिहास से है, न भूमि से है, न मौसम से है, न ठंड से है न गर्मी से है। इस पागलपन में न पड़ो। और अगर इस तरह का पागलपन करोगे तो फिर मुश्किलें बहुत बढ़ती जाएंगी। फिर तो बुद्ध और महावीर दोनों बिहार में हुए, फिर महाराष्ट्र का क्या होगा? फिर पंजाब का क्या होगा और गुजरात का क्या होगा? और फिर बुद्ध और महावीर कोई पूरे बिहार में थोड़े ही पैदा हुए, कि एकदम पैदा हुए, पूरे बिहार में पैदा हो गए! बुद्ध तो कपिलवस्तु में पैदा हुए--एक छोटा सा नगर, जिसका नाम-निशान भी नहीं बचा अब। तो कपिलवस्तु का गौरव है। और कपिलवस्तु में भी पूरे कपिलवस्तु में ही थोड़े पैदा हो गए होंगे। अरे, किसी मुहल्ले में पैदा हुए होंगे, किसी घर में पैदा हुए होंगे। घर में भी पूरे घर में नहीं, क्योंकि महल बड़ा था जहां बुद्ध पैदा हुए, किसी कमरे में पैदा हुए होंगे। कमरे में भी क्या खाक पैदा होंगे, किसी बिस्तर पर पैदा हुए होंगे! तो उस खाट का ही गौरव समझो। हो गई खाट खड़ी! ऐसे कहीं गौरव होता है? और उस खाट की क्या कोई खास खूबी थी तुम समझते हो? अरे, कोई भी खाट काम दे देती। और खाट न भी होती तो भी पैदा होते। आखिर जीसस को खाट नहीं मिली। मां-बाप गए थे मेले में, सारी धर्मशालाएं भरीं, होटलें भरीं, कहीं जगह न मिली, एक घु.ड़साल में जगह मिली तो घुड़साल में ही पैदा हो गए। कुछ आदमी सोचता भी है पैदा होने के पहले कि यह भी कोई ढंग है! घुड़साल में जहां पुआल थी, उस पुआल में जीसस का जन्म हुआ।
न तो मिट्टी से कुछ लेना है, न आकाश से कुछ लेना है, न देश से कुछ लेना है, न परंपराओं से कुछ लेना है। बुद्धत्व का फूल तो कहीं भी खिल सकता है, कहीं भी खिला है। सब जगह खिला है। यह पागलपन छोड़ना चाहिए। मगर यह पागलपन हम छोड़ते नहीं, भारत भूषण। हमारे अहंकार को अड़चन आती है। और अहंकार को ही मैं चाहता हूं कि छूटे। तुम्हारे अहंकार पर ही चोटें कर रहा हूं सब तरीके से। अगर कभी मैं चोट भी करता हूं तुम्हारे अतीत पर, तो अतीत से मुझे क्या लेना-देना है? तुम्हारे अहंकार पर चोट कर रहा हूं। तुमसे मेरा प्रयोजन है।
मेरे पास जो आए हैं, मैं उनका अहंकार बिल्कुल ही खंडित कर देना चाहता हूं, ताकि वे आगे इसको ढो न सकें। मगर तुम बचा लेना चाहते हो।
तुम कहते हो, "जड़ों के बिना फूलों की संभावना नहीं... ।"
खूब तर्क तुमने खोजा!
"और अतीत के बिना वर्तमान संभव नहीं।"
अब चली बात में से बात।
"ऐसे ही हमारी जड़ें भारतीय संस्कृति के चिरंतन गौरव से जुड़ी हैं। यह
जो आप संन्यास का फूल खिला रहे हैं, इसकी जड़ें भी भारतीय संस्कृति में हैं।"
नहीं, जरा भी नहीं हैं, बिल्कुल नहीं! अगर मेरे संन्यास की जड़ें भारतीय संस्कृति में होतीं तो मुझे इतनी गालियां पड़तीं? शंकराचार्य और आचार्य तुलसी और तरह-तरह के महंत, संत, महात्मा, सब मेरे विरोध में होते? जिस संन्यास की मैं बात कर रहा हूं वैसा संन्यास पृथ्वी पर कभी भी नहीं था। मैं उस संन्यास की बात कर रहा हूं जो संसार के प्रति पलायन से भरा हुआ नहीं। तुम्हारे अतीत का सारा संन्यास पलायनवादी था। तुम्हारे बुद्ध भी और तुम्हारे महावीर भी पलायनवादी थे।
मैं जिस संन्यास की बात कर रहा हूं वह जीवन को जीने की कला है, जीवन को त्यागने की नहीं। वह जीवन को इस परिपूर्णता से, समग्रता से जीने का ढंग है कि जैसे जीवन ही परमात्मा है, कहीं और कोई परमात्मा नहीं। कुछ त्यागना

नहीं है, कहीं भागना नहीं है। यहीं जीना है। मगर जीने की शैली सीखनी है। ध्यानपूर्वक जीना है। समाधिपूर्वक जीना है।
निश्चित ही, भूलकर भी तुम यह मत सोचना कि इसकी जड़ें तुम्हारी संस्कृति में हैं। रामकृष्ण चौबीस घंटे दो चीजों को गालियां देते थे-- कामिनी और कांचन, बस इनसे बचो! अगर इनसे बच गए तो सब ठीक हो जाएगा। ये दो का ही प्राण लिए ले रहे हैं। अब तुम अगर मेरे संन्यास का संबंध रामकृष्ण से जोड़ो, तो कैसे जुड़ेगा? रामकृष्ण बिल्कुल भारतीय संस्कृति से जुड़े थे, इसलिए किसी ने भी यह न कहा कि रामकृष्ण भारतीय संस्कृति का नुकसान कर रहे हैं या अहित कर रहे हैं। सबने ही गौरव-गरिमा गाई। कहा कि रामकृष्ण ने तो बड़ा भारी काम किया, ये तो अवतारी पुरुष हैं, ये तो अवतार हैं! राम और कृष्ण दोनों के जैसे इकट्ठे अवतार हैं! मगर गाली दे रहे थे वे कामिनी-कांचन को। मैं न तो कामिनी को गाली देता हूं, न कांचन को। मैं तो कहता हूं दोनों प्यारे हैं। मुझे तो कोई अड़चन नहीं है। मैं तो कहता हूं, कांचन बढ़े! खूब बढ़े! और मैं तो चाहता हूं, कामिनियां और कामिनियां होती जाएं, और सुंदर होती जाएं! जीवन में सौंदर्य बढ़ना चाहिए, संपदा बढ़नी चाहिए--बाहर की भी, भीतर की भी। मैं बाहर का विरोधी नहीं हूं।
तुम्हारा अतीत का सारा संन्यास बाहर का विरोधी था। तुम्हारा अतीत का सारा संन्यास रुग्ण था, आत्मघाती था, स्वयं को सताने पर आधारित था। सताने को कहते थे तपश्चर्या; त्याग। मैं त्यागवादी नहीं हूं, तपश्चर्यावादी नहीं हूं। मेरे संन्यास की तो अलग ही साज-सज्जा है, अलग हीशृंगार है। तो मत इसे अपने अतीत से जोड़ो।
तुम कह रहे हो कि "यह जो आप संन्यास का फूल खिला रहे हैं, इसकी जड़ें भी भारतीय संस्कृति में हैं।"
जरा भी नहीं हैं। इसलिए तो इतना मेरा विरोध हो रहा है। वह विरोध काफी प्रमाण है इस बात का। रामकृष्ण का विरोध नहीं हुआ, विवेकानंद का विरोध नहीं हुआ, रामतीर्थ का विरोध नहीं हुआ, महात्मा गांधी का विरोध नहीं हुआ; ये सब भारतीय संस्कृति के परिपोषक थे। मैं जो कह रहा हूं वह इतना नया है, इतना भिन्न है, आयाम इतना नया है कि मेरा विरोध होना बिल्कुल स्वाभाविक है।
तुम कहते हो, "इससे आप इनकार नहीं कर सकते।"
इससे मैं बिल्कुल इनकार करता हूं, सौ प्रतिशत इनकार करता हूं।
तुम कहते हो, "ध्यान जो कि आप सिखा रहे हैं, यह भी आपका मौलिक नहीं है।" तुम गलती में हो। सिर्फ शब्द पुराना है। तो शब्द तो मजबूरी है। शब्द
तो पुराने ही उपयोग करने पड़ेंगे, क्योंकि भाषा तो वही बोलनी होगी जो तुम समझ सको। इसलिए ध्यान शब्द का उपयोग कर रहा हूं, इससे भ्रांति में मत पड़ना। मेरा ध्यान पतंजलि के ध्यान से कोई संबंध नहीं रखता। और मैंने पतंजलि पर जो कहा है, उसको पढ़कर मत सोच लेना कि मेरा ध्यान पतंजलि के ध्यान से संबंध रखता है। वह तो पतंजलि के कंधे पर भी रखकर मैंने बंदूक अपनी ही चलाई है। कंधे तो मैं कोई भी उपयोग कर लेता हूं। कंधे से क्या फर्क पड़ता है? कंधा तो मैं महावीर का उपयोग किया, बुद्ध का उपयोग किया, पतंजलि का उपयोग किया। जिसका कंधा जब मिल गया, उसी पर बंदूक रख ली। अब अपने ही कंधे पर बंदूक रखने से तो रहा। बंदूक तो किसी और के ही कंधे पर रखनी पड़ेगी, तभी निशाना ठीक लगता है।
लेकिन मेरा ध्यान पतंजलि का ध्यान नहीं है। पतंजलि का ध्यान है-- धारणा में उसका प्रारंभ है। धारणा, ध्यान, समाधि--ये उसके तीन पहलू हैं। मेरा ध्यान धारणा से मुक्ति है। धारणा से मुक्ति हो, तो ही ध्यान शुरू होता है। और पतंजलि का ध्यान शुरू होता है धारणा की प्रगाढ़ता में। पतंजलि जिसको ध्यान कहते हैं, वह एकाग्रता है। और मैं जिसको ध्यान कहता हूं, वह विश्राम है, एकाग्रता नहीं। पतंजलि जिसे ध्यान कहते हैं, वह चित्त का ही काम है। और मैं जिसे ध्यान कहता हूं, वह चित्त का अभाव है। पतंजलि जिसको समाधि कहते हैं, वह ध्यान की पराकाष्ठा है--उनके ध्यान की पराकाष्ठा। मैं जिसको समाधि कहता हूं, वह मेरे ध्यान की पराकाष्ठा है। मगर मेरा और उनका

ध्यान बुनियादी रूप से भिन्न है। और वही बात महावीर और मेरे ध्यान में है और वही बात बुद्ध के और मेरे ध्यान में है।
हालांकि जिन लोगों ने बुद्ध को मेरे माध्यम से पढ़ा है उनको लगेगा कि मैं वही कह रहा हूं जो बुद्ध ने कहा है। वह तुम गलती में हो। मेरे माध्यम से बुद्ध को पढ़ोगे तो तुम मुझको ही पढ़ रहे हो। बुद्ध तो केवल निमित्त मात्र हैं, खूंटी हैं; मगर कोट मैं हमेशा अपना टांगता हूं। मैं टांगूं भी किसी और का कोट क्यों? और कैसे टांगूं किसी और का कोट? टांगूंगा तो अपना ही कोट, खूंटी कोई भी हो। और खूंटी न मिलेगी तो खीली पर टांग दूंगा, और खीली नहीं मिलेगी तो दरवाजे पर टांग दूंगा। कहीं न कहीं कोट तो टांगना ही होगा। मैं सब पर बोला हूं। और इसलिए जो लोग मेरे माध्यम से जीसस को समझेंगे
वे ठीक से समझ लें, वे मुझे ही समझ रहे हैं। जो मेरे माध्यम से कबीर को समझेंगे, वे मुझे ही समझ रहे हैं। ये सब मेरे ढंग थे तुम तक अपनी बात पहुंचाने के। लेकिन मैं जिसे ध्यान कहता हूं वह बात अलग ही है, भिन्न ही है, मौलिक ही है।
तुम कहते हो, "फिर क्यों नहीं आप भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण सनातन धारा को स्वीकार करते हैं?"
मेरा कुछ लेना-देना नहीं है, क्यों स्वीकार करूं? मेरा कोई संबंध नहीं है, क्यों स्वीकार करूं?
और तुम कहते हो, "क्या यह भी एक सत्य नहीं है कि आप भी भारतीय संस्कृति
की पृष्ठभूमि में खिले एक श्रेष्ठतम फूल हैं।"
जरा भी नहीं। मैं किसी पृष्ठभूमि में खिला हुआ फूल नहीं हूं। मैं तो कहीं भी खिल जाता। चीन में भी इसी तरह खिलता और जापान में भी इसी तरह खिलता और अरब में भी इसी तरह खिलता। जब से खिला हूं, तब से मैं यह बात समझा हूं कि पृष्ठभूमि से मेरे खिलने का कोई संबंध नहीं है। और तुम भी जब खिलोगे भारत भूषण, तो न तो तुम भारत रह जाओगे, न भूषण रह जाओगे। यह भारत भूषण होने का खयाल ही मिट जाएगा। जिस दिन खिलोगे उस दिन तुम पाओगे कि अरे, मैं तो शाश्वत से जुड़ा हूं! ये सब छोटे-छोटे दायरे, ये छोटे-छोटे डबरे--भारत के और पाकिस्तान के और चीन के और जापान के--इन छोटे-छोटे डबरों से क्या लेना-देना है? विराट से जुड़ो।
जिस दिन तुम जागोगे उस दिन ही मेरी बात समझ पाओगे। अभी तो तुम्हारी बातें तुम्हें बहुत तर्कयुक्त मालूम पड़ती हैं। तर्कयुक्त हो भी सकती हैं, लेकिन समाधि का अनुभव तर्कातीत है। और यह जो पुराना उपद्रव है, इससे तुम जितनी जल्दी छूट जाओ उतना अच्छा।
दूर बरगद के घने साए में खामोशो-मलूल
जिस जगह रात के तारीक कफन के नीचे
माजी-ओ-हाल गुनहगार नमाजी की तरह
अपने एमाल पे रो लेते हों चुपके-चुपके
एक वीरान सी मस्जिद का शिकस्ता सा कलस पास बहती हुई नद्दी को तका करता है और टूटी हुई दीवाल पे चंडूल कभी मर्सिया अज्मते-रफ्ता का पढ़ा करता है गर्द-आलूद चिरागों को हवा के झोंके रोज मिट्टी की नई तह में दबा जाते हैं और जाते हुए सूरज के विदाई अन्फास रोशनी आ के दरीचों की बुझा जाते हैं हसरते-शामो-सहर आलमे-बाला से कहीं इन परीशान दुआओं को सुना करती है
जो तरसती है शफक-रंग असर को अब तक
और टूटा हुआ दिल थाम लिया करती है
या अबाबील कोई आमदे-सरमा के करीब इसको मस्कन के लिए ढूंढ लिया करती है और मेहराबे-शिकस्ता में सिमटकर पहरों दास्तां सर्द मुआलिक की कहा करती है

एक बूढ़ा गधा दीवार के साए में कभी ऊंघ लेता है जरा बैठ के जाते-जाते
कैसी वीरानी है खुद वहशी बगूले डर कर लौट जाते हैं वहीं दूर से आते-आते
फर्श जारोबकशी क्या है, समझता ही नहीं वाकिफे-कतरा-ए-शबनम भी नहीं है हम्माम ताक में शम्मअ के आंसू हैं अभी तक बाकी पर मुसल्ला है न मिंबर न मुअज्जिन न इमाम आ चुके साहबे-अफलाक के पैगामो-सलामको हो-दर अब न सुनेंगे वो सदा-ए-जबरील
अब किसी काबे की शायद न पड़ेगी बुनियाद खो गई दश्ते-फरामोश में आवाजे-खलील चांद इक फीकी हंसी हंस के गुजर जाता है डाल देते हैं सितारे धुली चादर अपनी उस निगारे-दिले-यजदां के जनाजे पे बस इक चश्म नम करती है शबनम यहां रोकर अपनी एक मैला-सा रकीला-सा फसुर्दा-सा दियारोज रेशाजदा हाथों से कहा करता है तुम जलाते हो कभी आ के बुझाते भी नहीं
एक जलता है मगर एक बुझा करता है
तेज नद्दी की हर-इक मौज तलातुम-बरदोश
चीख उठती है कहीं दूर से फानी-फानी
कल बहा लूंगी तुझे तोड़ के साहिल के कयूद
और फिर गुंबद-ओ-मीनार भी पानी-पानी
यह पुरानी मस्जिद, यह खंडहर हो गई मस्जिद, न अब यहां कोई प्रार्थना करता है, न कोई पूजा उठती, न कोई दीए जलते। यह गिरती मस्जिद रोज ईंट-ईंट खिसलती जाती है, मगर तुम हो कि इसी को छाती से लगाए बैठे हो। और जब तक तुम इसे छाती से लगाए बैठे हो, तुम भी खंडहर ही रहोगे।
भारत भूषण, मुर्दों को पकड़ोगे तो मुर्दा ही हो जाओगे। जीवन अभी है और यहां। जीवन वर्तमान है। न तो कल में जो बीत गया और न कल में जो आने वाला है। जो बीत गया, बीत गया। जो अभी आया नहीं, आया नहीं। जो अभी है, इसमें जो ठहर जाए, उस ठहरने का नाम समाधि। और उस समाधि में जो रुक गया, उसकी कोई पृष्ठभूमि नहीं, उसकी कोई जड़ नहीं। उसे मैं कहता हूंः आकाश-कुसुम। बुद्धत्व आकाश-कुसुम है। इसलिए बुद्धों को गालियां पड़ेंगी, बुद्धुओं को सम्मान मिलेगा।
न उनकी रीत नई, न अपनी प्रीत नई
न उनकी हार नई, न अपनी जीत नई
बुद्धों को तो गालियां पड़ेंगी, क्योंकि हमेशा वे पृष्ठभूमि से मुक्त होंगे, अतीत से मुक्त होंगे। और बुद्धुओं को सम्मान मिलेगा, क्योंकि वे हमेशा गौरव गुणगान करेंगे अतीत का।
मुझे कोई सम्मान नहीं चाहिए, कोई पद नहीं चाहिए, कोई प्रतिष्ठा नहीं चाहिए। मैं वहां हूं जहां अब कुछ भी नहीं चाहिए। मैं वहां हूं जिसके पार कुछ चाहने को बचता भी नहीं है। और जिस दिन से इस अंतर-आकाश को छुआ है, जिस दिन से धर्म के इस स्वयं की गुफा में छिपे हुए सत्य को अनुभव किया है, उस दिन से न भारत का हूं, न चीन का हूं; न हिंदुओं का हूं, न मुसलमानों का हूं। उस दिन से अस्तित्व का हूं; उससे कम पर राजी नहीं हो सकता हूं। और चाहूंगा कि तुम भी कभी उससे कम पर राजी न होना। उससे कम पर जो राजी हुआ वह भटकता ही रहेगा। उससे कम पर जो राजी हुआ उसने अपने जीवन की चुनौती को पूरा-पूरा स्वीकार नहीं किया। वह कभी जीवन के परम आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता है।
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
छठवां प्रवचन

पीए बिना कोई मार्ग नहीं

पहला प्रश्नः ओशो,
सजनां ने फूल मारया
सानूं पीड़ अंदरां तक होई
लोकां दे पत्थरां दी
सानूं पीड़ रता न होई
"साजन ने फूल मारा और हमें भीतर तक चोट लगी और लोगों ने पत्थर मारे और हमें रत्तीभर पीड़ा नहीं हुई।"

प्रेम संगीता, अपेक्षा जहां है वहीं दुख की संभावना है। जहां अपेक्षा नहीं वहां विषाद का कोई उपाय नहीं। जिनसे तुम्हारी अपेक्षा है कि प्रीति मिलेगी, पत्थर नहीं; उनसे अगर फूल भी फेंका जाए तो घाव लगेगा। घाव फूल के कारण नहीं लगता, फूल तो बेचारा कैसे घाव करेगा? घाव लगता है तुम्हारी अपेक्षा के अनुपात से। जितनी बड़ी अपेक्षा उतनी गहरी चोट। हां, जिनसे तुम्हें कोई अपेक्षा नहीं है, वे पत्थर भी मारें तो भी दुख नहीं होता, तो भी पीड़ा नहीं होती।
इस छोटी सी कहावत में महत्वपूर्ण बात छिपी है, कि यदि चाहते हो कि जीवन में आनंद ही आनंद हो जाए, कि कोई भी चोट चोट न रहे, कि कोई पत्थर भी मारे तो फूल की वर्षा हो, कि कोई जहर भी पिलाए तो अमृत हो जाए--तो उसका एक ही रास्ता हैः अपेक्षाओं को छोड़ दो, निरपेक्ष होकर जीओ। और निरपेक्षता तुम्हारे हाथ में है, कोई दूसरा तुम्हें दे न सकेगा। और छोटे-छोटे लोगों की बात तो छोड़ दो, जिनको तुम बहुत बड़ा कहते हो, उनमें भी अपेक्षा का कहीं न कहीं, कोई न कोई सूक्ष्म धागा बना ही रहता है।
जीसस ने सूली पर अंतिम क्षण में आकाश की तरफ सिर उठाया और कहा कि हे प्रभु, क्या तूने मुझे छोड़ दिया? क्या तू भी मुझे धोखा दे दिया? यह तू मुझे क्या दिखला रहा है?
यह वक्तव्य किस बात की घोषणा है? यह वक्तव्य इस बात की घोषणा है कि जीसस अभी भी प्रबुद्धता को उपलब्ध नहीं हुए थे, अभी अपेक्षा बाकी थी। नहीं थी संसार से, तो परमात्मा से थी। इससे क्या फर्क पड़ता है कि किससे अपेक्षा। आखिरी घड़ी में बात छिपाते-छिपाते भी छिपी नहीं, प्रगट हो गई। आखिरी घड़ी में सचाइयां प्रगट हो जाती हैं। जिंदगीभर छिपाए हों जो राज, वे भी उघड़ जाते हैं। जीसस के मुंह से अनायास इस बात का निकल जाना कि हे प्रभु, क्या तूने भी मुझे छोड़ दिया, किस बात की खबर दे रहा है? इस बात की कि कहीं भीतर आशा थी कि चमत्कार होगा, आकाश से फूल बरसेंगे, कि उतरेगा कोई हाथ परमात्मा का और उठा लेगा मुझे। सूली सिंहासन बन जाएगी, इसका कहीं कोई सपना जरूर किसी गहन तल में मौजूद था। साधारण लोगों की जो भीड़ इकट्ठी हुई थी, एक लाख आदमी इकट्ठे थे, देखने इकट्ठे थे कि देखें अब क्या चमत्कार होता है! क्योंकि सुनते थे कि यह आदमी चमत्कारी है, कि पानी पर चलता है, कि पत्थरों से इसने रोटियां बना दी हैं, कि अंधों को आंखें दे दी हैं, कि मुर्दों को जिंदा कर दिया है। तो आज आ गई परम घड़ी। तमाशा देखने लोग इकट्ठे हुए थे। वे भी सब निराश लौटे। जब कुछ भी न हुआ, सूली लग गई, कोई न आकाश से हाथ उतरा, न पृथ्वी फटी, न भूकंप आया, न बाढ़ आई, न तूफान उठे, कहीं पत्ता भी न हिला, प्रकृति वैसे ही चलती रही जैसी चलती थी, प्रकृति ने कोई अपवाद न किया--ये सारे लोग भी निराश होकर लौटे। घर जाकर इन्होंने कहा होगा कि दिन व्यर्थ खराब किया। धूप-धाप में पहाड़ी पर चढ़कर गए, दिनभर भूखे रहे और हाथ कुछ भी न लगा।
इनमें और जीसस में अभी बुनियादी फर्क नहीं है। जीसस की यह अपेक्षा है ईश्वर से कि हो कुछ। कुछ अनूठा। नहीं हुआ तो शिकायत निकल आई। और जहां शिकायत है, वहां कैसी प्रार्थना? शिकायत कभी प्रार्थना नहीं बनती। शिकायत कैसे प्रार्थना बन सकती है? प्रार्थना तो धन्यवाद है।

लेकिन जीसस बहुत बुद्धिमान व्यक्ति थे। क्षण में ही उन्हें होश आ गया
कि यह मैंने क्या कहा। निकला था उनके ही अचेतन से, दबा था उनके ही अचेतन में शायद सूली के बिना निकलता भी नहीं; शायद सूली ही उसे निकालने का कारण बनी; शायद सूली ने जो पीड़ा दी और जो अपमान लाखों लोगों के सामने देखना पड़ा, लोग पत्थर मार रहे थे, सड़े हुए टमाटर फेंक रहे थे, लोग गालियां दे रहे थे कि अब दिखाओ चमत्कार, लोग हर तरह की मजाक कर रहे थे--इस अपमान में, अचेतन में दबी हुई, गहन अचेतन में दबी हुई कोई आकांक्षा तैरकर ऊपर आ गई होगी। इतने दबाव में ही यह संभव था। साधारण जिंदगी चलती जाती तो शायद जीसस प्रबुद्ध हुए बिना ही इस जगत से विदा होते। लेकिन इस सूली ने चमत्कार किया। वह चमत्कार बड़ा भीतरी है। वह चमत्कार बाहर नहीं हुआ, वह भीतर हुआ।
वह चमत्कार यह था कि एक आखिरी वासना दबी रह गई थी, उसका भी दर्शन हो गया। आकाश से उतरा हुआ हाथ इतना बड़ा चमत्कार न होता। पृथ्वी फट जाती कि आकाश फट जाता, तो भी इतना बड़ा चमत्कार न होता। कि सूरज भर दुपहरी में डूब जाता, तो भी इतना बड़ा चमत्कार न होता। कि जीसस सदेह स्वर्ग चले जाते, तो भी इतना बड़ा चमत्कार न होता। चमत्कार मेरी दृष्टि में जो हुआ, वह यह है कि खुद के अचेतन में, आखिरी, बस आखिरी जंजीर थी, वह भी प्रगट हो गई। उसके प्रगट होते ही बोध की घड़ी आ गई। तत्क्षण जीसस ने कहा, नहीं नहीं, मुझे क्षमा कर। यह मैंने क्या कहा! मैं कौन हूं? मेरी अपेक्षा नहीं, तेरी आकांक्षा पूरी हो। तू जो चाहे वह पूरा हो। तेरी मर्जी पूरी हो। मेरी क्या मर्जी! मैं तेरी मर्जी से राजी हूं। तेरा राज्य उतरे पृथ्वी पर और तेरी मर्जी के फूल खिल जाएं।
बस, इसी घड़ी में जीसस बुद्ध हुए। सूली पर लटके-लटके बुद्ध हुए।
और ऐसा, ठीक ऐसी ही घटना अलहिल्लाज मंसूर के जीवन में घटी। उसे भी लोग मार रहे थे, हाथ-पैर काट रहे थे, पत्थर मार रहे थे। उसके सारे शरीर से खून बह रहा था। उसके साथ जो दुर्व्यवहार हुआ वैसा दुर्व्यवहार न तो सुकरात के साथ हुआ, न जीसस के साथ हुआ, न सरमद के साथ हुआ। अलहिल्लाज मंसूर के साथ जैसा दुर्व्यवहार हुआ वैसा पृथ्वी पर कभी किसी मनुष्य के साथ नहीं हुआ था।
और प्रेम संगीता, तेरी कहावत ठीक-ठीक अलहिल्लाज मंसूर के जीवन में घटी--
सजनां ने फूल मारया सानूं पीड़ अंदरां तक होई
लोकां दे पत्थरां दी सानूं पीड़ रता न होई
लोग जब पत्थर मार रहे थे और मंसूर के खून की धाराएं फूट रही थीं, जल्लादों ने पैर काट दिए, हाथ काट दिए, आंखें फोड़ दीं, अंग-अंग तोड़े, सीधा भी नहीं मारा, जितना कष्ट दे सकते थे उतना कष्ट दिया। लेकिन मंसूर हंसता रहा। उसकी आंखों में वही चमक, वही ज्योति बनी रही, कुछ भेद न पड़ा। अनलहक का वही गुंजार कि मैं परमात्मा हूं कि मैं ब्रह्म हूं! अहं ब्रह्मास्मि की वही उदघोषणा जारी रही। भीड़ में अलहिल्लाज मंसूर का गुरु, जुन्नैद भी मौजूद था। लोग जब पत्थर मार रहे थे तो जुन्नैद ने एक फूल फेंककर मारा। जुन्नैद ने इसलिए फूल फेंककर मारा, ताकि लोग यह न समझें कि मैं लोगों के साथ नहीं, कि मैं भी कुछ फेंककर मार रहा हूं। अब इस भीड़-भाड़ में जहां पत्थर फेंके जा रहे हैं, कौन देखेगा कि मैंने फूल मारा कि पत्थर मारा! जुन्नैद दो काम कर रहा था--एक, कि ताकि भीड़ यह समझ ले कि मैं भी विरोध में हूं मंसूर के। था मेरा शिष्य, लेकिन मेरी उसने सुनी नहीं, मैंने मना किया था कि यह उदघोषणा मत कर, उसने मानी नहीं। तो मैं भी विरोध में हूं। ताकि भीड़ समझ ले कि जुन्नैद का सहारा नहीं है मंसूर को।
और इसमें और राजनीति भी थी कि मंसूर भी समझ ले कि आखिरी क्षण में मैं तुझे विदा देने आया हूं, देख, फूल से तुझे विदा दे रहा हूं! राजनीति बड़ी दुधारी तलवार होती है। इधर भीड़ भी राजी हो जाएगी कि चलो जुन्नैद भी हमारे साथ खड़ा है और मंसूर भी प्रसन्न होगा कि गुरु विदा देने आया और एक फूल की वर्षा की मेरे ऊपर।
लेकिन जुन्नैद को आश्चर्य हुआ यह जानकर कि मंसूर को धोखा देना आसान न था। मंसूर की आंखें खुल चुकी थीं, उसे धोखा देना असंभव था। उसका दर्पण साफ

हो चुका था। उस दर्पण में अब सत्यों का ही सीधा प्रतिबिंब बनता था। मंसूर खिलखिलाकर हंसा और उसने कहा कि जिसने यह फूल मारा है वह समझ ले कि लोगों के पत्थरों से मुझे इतनी चोट नहीं पहुंच रही जितनी इस फूल से पहुंच रही है। क्योंकि लोग तो नासमझ हैं; पत्थर मार रहे हैं तो ठीक, समझा जा सकता है। लेकिन जिसने यह फूल मारा है, वह समझ ले ठीक से कि इससे मुझे बहुत घाव पहुंचा है, इससे मुझे बहुत चोट पहुंची है। क्योंकि यह फूल उसने मारा है जिसे मैं सोचता हूं कि समझदार है; जिसे मैं सोचता हूं कि मुझे प्रेम करता था; जिससे मैंने यह कभी आशा न की थी, अपेक्षा न की थी।
मगर मंसूर को इतनी सी अपेक्षा भी अगर शेष है तो भी वासना का अभी एक पतला सा धागा उसे बांधे हुए है--जरा सा, बहुत सूक्ष्म, बहुत अदृश्य, दिखाई भी न पड़े, पकड़ में भी न आए। लेकिन धागा मौजूद है। अपेक्षा अभी है तो दुख हो गया। हंसा तो, लेकिन हंसी ऊपर-ऊपर थी, उसकी आंख से आंसू भी झलक आए। मंसूर की आंख से आंसू झलक आया, क्योंकि जुन्नैद ने फूल मारा। जुन्नैद से ऐसी आशा न थी, कम से कम जुन्नैद तो समझेगा! शास्त्रों का ज्ञाता, जिसके पास बैठकर ज्ञान की इतनी बातें सुनीं, वह तो समझेगा! लोग नासमझ हैं, ठीक, माफ किए जा सकते हैं, मगर जुन्नैद को कैसे माफ करो?
लेकिन मंसूर को भी वही घटना घटी जो जीसस को। उसे भी होश आ गया कि यह मेरी अपेक्षा ही है, जिसके कारण फूल भी चोट कर रहा है। उसने जो प्रार्थना की आखिरी, उस प्रार्थना में उसने कहा कि हे प्रभु, उनको भी माफ कर देना जिन्होंने पत्थर मारे और उसको भी माफ कर देना जिसने फूल मारा और मुझे भी माफ कर देना कि मैंने शिकायत की। बस, इसी घड़ी में मंसूर भी बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ।
मृत्यु की घड़ी बड़ी कीमती घड़ी है। कोई ठीक उपयोग कर ले तो जीवन से ज्यादा महत्वपूर्ण मृत्यु है। क्योंकि जीवन तो छितरा होता है, बिखरा होता है--सत्तर साल, अस्सी साल। लेकिन मौत सघन होती है। मौत प्रगाढ़ होती है। एक क्षण में सब कुछ हो जाता है। मौत कुछ लंबाई नहीं रखती, गहराई रखती है। लंबाई में चूक सकते हो। फिर जिंदगी में हजार काम हैं, आदमी उलझ सकता है, व्यस्त हो सकता है, स्वाभाविक है। लेकिन मृत्यु के क्षण में तो कोई काम बचता नहीं; कल ही नहीं बचता तो काम क्या बचेगा! अगला क्षण नहीं बचता तो काम क्या बचेगा! पूर्णविराम आ गया। उस घड़ी में तो सारा जीवन संगृहीत हो जाता है, सारी चेतना एक झील बन जाती है। उसका जो सदुपयोग कर ले तो मृत्यु से बड़ा वरदान नहीं है।
प्रेम संगीता, अपेक्षा छोड़। अपेक्षा दुख लाती है। आशा रखोगी, निराशा हाथ लगेगी। अपेक्षा रहेगी, उपेक्षा हाथ लगेगी। सुख मांगोगी, दुख पाओगी। न सुख मांगो, न अपेक्षा रखो, न आशा बांधो। फिर देखो! जैसे ही आशा छूटी कि सब आशाएं पूरी हो जाती हैं। और जैसे ही अपेक्षा गई कि सब दुख गए और सुखों की वर्षा हो जाती है।
मत मांगो जीत, फिर हारने का कोई उपाय नहीं। और लाओत्सु कहता हैः मुझे कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं जीत मांगता नहीं। मैं जीतना चाहता नहीं, मुझे कोई हराएगा कैसे?
उसको हराया जा सकता है जो जीत मांगता हो। उसे दुखी किया जा सकता है जो सुख मांगता हो। उसका अपमान किया जा सकता है जो सम्मान मांगता हो लेकिन जिसे कुछ फर्क ही न रहा अपमान और सम्मान में, जिसे कांटे और फूल बराबर हुए, जिसे जिंदगी और मौत समान हो गई--अब उसे कैसी पीड़ा? कोई उपाय न रहा। और यही क्षण है, यही घड़ी है जब व्यक्ति अतिक्रमण करता है संसार का। इसको कहो निर्वाण, समाधि, बुद्धत्व।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपने सच ही मुझे निराश किया, क्योंकि आपने मेरी शंकाओं का पर्याप्त समाधान नहीं किया। मैं मान लेता हूं कि आपके जैसा संन्यास पृथ्वी पर पहले कभी न था, परंतु ये गैरिक वस्त्र तथा आपके शिष्यों का गले में आपके लाकेट वाली माला पहनना, यह सब धारणा नहीं तो क्या है? यह तो भारतीय संस्कृति ही लगती है। और आप जिस ध्यान और समाधि का वर्णन करते हैं वैसा ही वर्णन शब्दों के थोड़े अलग प्रयोग से अष्टावक्र से लेकर

कृष्णमूर्ति तक सभी बुद्धपुरुषों ने किया है और उन पर बोलते हुए आप भी सहमत हुए हैं। बुद्धपुरुषों की इस लंबीशृंखला को ही मैं भारतीय संस्कृति की दीपमालिका कहता हूं, जिसके जगमगाते वर्तमान दीपक आप हैं। निवेदन है कि आप मुझे अपना आलोचक न समझें, क्योंकि मैं भलीभांति समझता हूं कि आप जो कर रहे हैं उससे ही मनुष्यमात्र का कल्याण संभव है।

भारत भूषण, मैंने तुम्हें निराश नहीं किया। तुमने आशा बांधी होगी। वही आशा तुम्हें निराश करेगी, मैंने तो पर्याप्त समाधान किया था; तुम्हारा नहीं हुआ, यह और बात है। क्योंकि तुमने जो-जो पूछा था उसका मैंने उत्तर दे दिया था। अब तुम जो पूछ रहे हो, यह तो तुमने पूछा ही नहीं था। न तो तुमने गैरिक वस्त्रों की बात उठाई थी, न माला की; न तुमने अष्टावक्र की बात उठाई थी, न कृष्णमूर्ति की। और यूं अगर तुम बातें उठाते जाओगे तो समाधान कभी भी न होगा। चलो, आज फिर कोशिश करें।
तुम कहते हो, "मैं मान लेता हूं... ।"
मान लेने से काम नहीं चलेगा। मान लेने से तो और नए-नए तर्क उठेंगे, और नई-नई शंकाएं उठेंगी। समझो, मानो मत। समझने में समाधान है, मानने में नहीं। मानना तो यूं होता है कि चलो तर्क करने के लिए माने लेते हैं। तर्क करने के लिए ही माना जाता है कि चलो विवाद करने के लिए माने लेते हैं। मगर उस मानने में ही सूचना है कि नए प्रश्न खड़े होंगे।
मैंने जो कहा था, अगर तुमने समझा होता, तो ये कोई भी प्रश्न उठ नहीं सकते थे। जरा भी नहीं तुमने समझने की कोशिश की।
तुम कहते हो, "मैं मान लेता हूं कि आपके जैसा संन्यास पृथ्वी पर पहले कभी न था... ।"
यह भी तुम मान ही रहे हो, मानना नहीं चाहते हो। यह भी तुम न कह सके कि ठीक, यह बात ठीक, इतना मेरा समाधान हुआ। चलो कुछ मात्रा में ही समाधान होता। मगर वह भी हुआ नहीं। वह भी अभी तुमने कामचलाऊ, जिसको हाइपोथेटिकल कहते हैं, मान लिया कि अब इसे मानकर आगे सवाल उठाएंगे तो फिर सवाल उठने शुरू हो गए।
अब तुम पूछते हो, "ये गैरिक वस्त्र... ।"
जिस तरह के गैरिक वस्त्र मेरे संन्यासी पहने हुए हैं, इस तरह के गैरिक वस्त्र कभी नहीं पहने गए। जब मेरा संन्यास ही भिन्न है, जब मेरा संन्यास ही एक नया आयाम है, तो फिर तुम्हें समझ अगर आ गई होती तो तुम्हें गैरिक वस्त्रों का भेद भी समझ में आ जाता।
गैरिक वस्त्र सदियों से इस देश में पलायनवादियों के वस्त्र रहे हैं। मैं गैरिक रंग को पलायनवादियों से छुटकारा दिलाने की कोशिश कर रहा हूं। यूं मुझे कुछ अड़चन न थी, कोई और रंग भी चुन ले सकता था। नीला भी काम देता, पीला भी काम देता, हरा भी काम देता, काला भी काम दे सकता था, सफेद भी काम दे सकता था। जानकर ही मैंने गैरिक वस्त्र चुने हैं। इसलिए गैरिक वस्त्र चुने हैं कि गैरिक वस्त्रों के नाम से जो पलायनवादी परंपरा है, उसको खंडित किया जा सके।
इसलिए तो हिंदू संन्यासी बहुत बेचैन हैं। उसको बड़ी मुश्किल हो रही है। उसको मुश्किल यह हो रही है कि उसके संबंध में जो लोक-प्रचलित मान्यता थी वे मेरे संन्यासी तोड़े डाल रहे हैं। जल्दी ही लाखों की संख्या में मेरे गैरिक संन्यासी होंगे भारत में। अभी दो लाख हैं, लेकिन भारत के बाहर उनकी बड़ी संख्या है। फिर भी भारत में कोई पचास हजार संन्यासी तो हैं ही। जल्दी ही ये पचास लाख भी हो सकते हैं। तब इसमें अखंडानंद और स्वरूपानंद खो जाएंगे। और लोगों की जो सदियों-सदियों से एक जड़ धारणा बनी थी कि गैरिक वस्त्र पलायन का, त्याग का, भगोड़ेपन का, जीवन-निषेध का प्रतीक है, वह टूट जाएगी।
गैरिक रंग पर मैं दया करके उसका छुटकारा करवा रहा हूं। ये गैरिक वस्त्र धारणा नहीं है, वरन गैरिक वस्त्रों के प्रति जो धारणा थी उसको तोड़ने का प्रयास है। और जब किसी चीज को तोड़ना हो तो बाहर की बजाए भीतर से तोड़ना आसान होता है। गैरिक वस्त्र पहनाकर संन्यासियों के नाम देकर... अब

यहां तुम सब तरह के संन्यासी पाओगे--स्वामी अखंडानंद, स्वामी स्वरूपानंद, सरस्वती, भारती, गिरि... सब तरह के संन्यासी मैंने खड़े कर दिए हैं। और जब स्वामी अखंडानंद अपनी प्रेयसी के गले में हाथ डालकर रास्ते पर चलते हैं तो हिंदू संस्कृति की छाती पर सांप लोटते हैं। और तुम कह रहे हो ये हिंदू संस्कृति के प्रतीक हैं! जब स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती होटल में बैठकर चाय पीते हैं, गपशप करते हैं, सिनेमा के बाहर क्यू में खड़े होकर टिकट खरीदते हैं, तो तुम सोच रहे हो यह मैं तुम्हारी धारणा को मजबूत कर रहा हूं! यह तुम्हारी धारणा को तोड़ रहा हूं। तुम्हारी धारणा को खंडित कर रहा हूं। जरूर मेरे संन्यासियों के गले में लाकेट वाली माला है, लेकिन न तो मेरे संन्यासी माला के मनके फेरते हैं... । माला का काम सदियों से यह था कि बैठकर उस पर राम-राम जपो। मेरे संन्यासी तो कुछ माला के मनके फेरते नहीं। लेकिन माला उनको पहना दी है, लाकेट भी उनके गले में डाल दिया है--यह सिर्फ एक गहरा मजाक है, और कुछ भी नहीं। एक व्यंग्य। यह तुम्हारे संन्यास की जो अब तक की धारणा है उसको खंडित करने के लिए एक गहरा मजाक। न माला में कुछ रस है मुझे, न लाकेट में कोई रस है। लेकिन जिन्होंने महावीर को पूजा है, कृष्ण को पूजा है, राम को पूजा है, बुद्ध को पूजा है, इनकी पूजा को कैसे तोडूं? जो सदियों से माला फेरते रहे हैं, इनकी माला को कैसे भ्रष्ट करूं? ये किसी धारणा की मजबूती के लिए नहीं हैं। और जिस दिन पाऊंगा कि ये धारणाएं खंडित हो चुकी हैं, उस दिन अपने संन्यासियों को कहूंगा कि अब मजे से सब रंगों के कपड़े पहनो, अब अपना काम खतम हुआ। अब माला वगैरह पहनने की क्या जरूरत, क्यों गले में वजन लटकाते हो? यह अब लाकेट वगैरह की होली जला दो, इसकी कोई आवश्यकता न रही।
लेकिन अभी थोड़ी देर है। वह दिन भी आएगा कि जब गैरिक वस्त्रों की और माला की और लाकेट की, सबकी होली जलवा दूंगा। तुम जरा ठहरो। तुम जब तक व्यर्थ की शंकाओं में न उलझो... । एक-एक कदम ही उठाना पड़ता है। आहिस्ता- आहिस्ता ही यह सदियों पुरानी धारणाओं पर चोट करनी पड़ती है। चोट करने के मेरे अपने रास्ते हैं। यह भी एक रास्ता है। यह भी एक विधि मात्र है। इसमें कहीं कोई धारणा नहीं है और कहीं कोई भारतीय संस्कृति नहीं है।
और तुम कहते हो, "आप जिस ध्यान और समाधि का वर्णन करते हैं वैसा ही वर्णन शब्दों के थोड़े अलग प्रयोग से अष्टावक्र से लेकर कृष्णमूर्ति तक सभी बुद्धपुरुषों ने किया है और उन पर बोलते हुए आप भी सहमत हुए हैं। बुद्धपुरुषों की इस लंबीशृंखला को ही मैं भारतीय संस्कृति की दीपमालिका कहता हूं, जिसके जगमगाते दीपक आप हैं।"
फिर तुम जापान में हुए रिंझाई, बोकोजू, बासो, इनको भी भारतीय संस्कृति में गिनोगे या नहीं? क्योंकि इन्होंने भी थोड़े शब्दों के हेर-फेर से यही कहा है, जो अष्टावक्र ने कहा, जो कृष्णमूर्ति कह रहे हैं, जो मैं कह रहा हूं। फिर तुम जेरूसलम में हुए मोजेज, बप्तिस्मा वाले जान, जीसस, इनको भी भारतीय संस्कृति में गिनोगे या नहीं? क्योंकि इन्होंने भी थोड़े शब्दों के हेर-फेर से वही कहा है। फिर अरब में हुए अलहिल्लाज मंसूर, बहाउद्दीन, मोहम्मद, इनको तुम भारतीय संस्कृति में गिनोगे या नहीं गिनोगे? क्यों अष्टावक्र और कृष्णमूर्ति को ही गिना? यह कैसा मोह? और फिर यूनान में हुए सुकरात, पाइथागोरस, हेराक्लाइटस, प्लोटिनस, डायोजनीज, डायोनीसियस, इनको तुम भारतीय संस्कृति में क्यों न गिनोगे? अष्टावक्र में ऐसी क्या खूबी है, वही मिट्टी, वही हवा, वही पानी, वही आग, वही पांच तत्व और वही आत्मा। इन सबको क्यों छोड़ दिया? और फिर ईरान में हुए जरथुस्त्र और हाकिम सिनाई और उमर खय्याम और जलालुद्दीन रूमी और नसरुद्दीन, इनको तुम कहां गिनोगे? भारतीय संस्कृति में ही गिनना होगा, क्योंकि ये भी जगमगाते दीपक हैं। अगर जगमगाते दीपकों की इस मालिका का नाम ही भारतीय संस्कृति है तो फिर इसका भारत से कोई संबंध न रहा। फिर चीन में हुए लाओत्सु, च्वांगत्सु, लीहत्सु, हवांगप्पो हुई-हाई; इनको कहां गिनोगे? फिर तिब्बत में हुआ मिलरेपा, मारपा; इनको कहां गिनोगे? तिलोपा, बोधिधर्म, कणहप्पा, सिद्धप्पा; इनको कहां गिनोगे? अगर भारतीय संस्कृति का नाम केवल जगमगाते दीपकों की मालिका हो, तो

फिर इन सबको भी गिन लो, तो मुझे कोई एतराज नहीं, फिर मैं राजी। फिर मैं भी भारतीय संस्कृति का पोषक।
लेकिन तुमने भी सिर्फ अष्टावक्र और कृष्णमूर्ति को ही क्यों गिना? यह बेईमानी क्यों? और क्या खाक कृष्णमूर्ति में भारतीय संस्कृति है! सिर्फ इसलिए कि भारत में पैदा हुए? बस, इसके सिवाय और तो कुछ नहीं। क्योंकि कृष्णमूर्ति तो कहते हैं मैं सौभाग्यशाली हूं कि मैंने भारतीय कोई शास्त्र नहीं पढ़े, न गीता, न वेद, न उपनिषद। सौभाग्यशाली हूं कि इस मूढ़ता से मैं बच गया! धन्यभाग हैं मेरे कि मैं इस जाल में नहीं पड़ा!
और अष्टावक्र को तुम क्यों भारतीय गिनते हो? क्योंकि अष्टावक्र न तो वेदों के पक्ष में हैं, न हवन-यज्ञ, पूजा-पाठ, मंदिर-मूर्ति। तुम अष्टावक्र में ऐसा क्या पाते हो जिसको तुम भारतीय कह सकते हो और जिसको तुम लाओत्सु में नहीं पाओगे? तो या तो भारत की परिभाषा बदल दो, भौगोलिक न रखो। फिर सारे बुद्धपुरुषों का जो गगन-मंडल है, वह भारत है। लेकिन उसको भारत ही क्यों कहो, उसको जापान क्यों न कहो, उसको चीन क्यों न कहो, उसको अरब क्यों न कहो, उसको इजराइल क्यों न कहो? आखिर भारत कहने का क्या मोह है उसे? अगर भारत पूरब है तो जापान और भी पूरब है, ठेठ पूरब, जहां सूरज ही उगता है, सूरज का ही देश! हमसे भी ज्यादा पूरब। जापान के हिसाब से तो हम पश्चिमी हैं। हम पश्चिम में पड़ते हैं। अगर पूरब का ही प्रतीक चुनना है तो जापान को चुन लो। मगर यह बड़ी मुश्किल की बात है। जापान के लिए अमरीका पूरब है। जमीन गोल है। कौन है पूर्वीय और कौन है पाश्चात्य? इस तरफ से देखो तो वही व्यक्ति पाश्चात्य है, इस तरफ से देखो तो वही व्यक्ति पूर्वीय है।
भारत शब्द से ऐसा क्या मोह है? इस शब्द में ऐसी क्या खूबी है? ये सिर्फ हमारे मोह हैं। यहूदियों का मोह हैः इजरायल। मुसलमानों का मोह हैः मक्का- मदीना, अरब। ये सब मोह हैं। न तो अष्टावक्र में कुछ भारतीय है, न कृष्णमूर्ति में कुछ भारतीय है, न मुझमें कुछ भारतीय है। और जो मुझमें है, जो कृष्णमूर्ति में है, जो अष्टावक्र में है, वही बहाउद्दीन में है, वही जलालुद्दीन में है, वही पाइथागोरस में है, वही जरथुस्त्र में है, वही जीसस में है, वही बासो में है, वही लिंची में है, वही हुआंग-पो में है। वह तत्व, जिससे व्यक्ति जीवन को पहचान लेता है--जागरूकता है। जागरूकता का क्या भारत से लेना-देना? जागरूकता क्या कोई भौगोलिक चीज है? जाग तो कोई कहीं भी सकता है। तिब्बत में भी जाग सकता है, चीन में भी जाग सकता है, भारत में भी जाग सकता है। देह तो मिट्टी है, किसी भी देह में जाग सकता है। गोरी चमड़ी हो तो जाग सकता है, काली चमड़ी हो तो जाग सकता है।
अष्टावक्र शरीर से आठ जगह ऐढ़े-टेढ़े थे, इसलिए तो उनका नाम--अष्टावक्र।
आठ जगह से ऐढ़ा-टेढ़ा आदमी देखा कभी? बिल्कुल ऊंट जैसा होगा। अष्टावक्र के आठ जगह से ऐढ़े-टेढ़े शरीर में एक पैर पड़ता होगा इधर तो दूसरा पड़ता होगा उधर, एक आंख देखती होगी इधर तो दूसरी देखती होगी उधर।
एक मजिस्ट्रेट के संबंध में मैं पढ़ रहा था कि उसकी आंखें अलग-अलग दिशाओं में देखती थीं। दो आंखें दो तरफ जाती थीं। तीन मुजरिम उसके सामने खड़े थे। पहले से उसने पूछा कि तुम्हारा धंधा क्या है? दूसरे ने कहा कि जी, मैं होटल करता हूं। उसने कहा, मैंने तुमसे नहीं पूछा जी! तो तीसरे ने कहा कि मैं कपड़े का धंधा करता हूं। अभी पहले पर तो आंख ही नहीं पड़ रही उसकी। अष्टावक्र की हालत ऐसी रही होगीः देखते होंगे कहीं, चलते होंगे कहीं, जाते होंगे कहीं। वह तो अच्छा हुआ पहले हो गए, नहीं तो आजकल के ट्रेफिक में कहीं भी कुचल गए होते। एक कदम आगे जाते होंगे, दो कदम पीछे सरकते होंगे। एक छोटा सा बच्चा स्कूल देर से पहुंचा। अध्यापक ने पूछा कि इतनी देर कैसे हुई?
उसने कहा कि मैं क्या करूं, वर्षा हो रही है, आप देख रहे हैं और कैसी कीचड़ मची हुई है! एक कदम आगे चलता था, दो कदम पीछे सरकता था।
शिक्षक भी था तो होशियार, गणितज्ञ था। उसने कहा, अच्छा एक कदम आगे चलते, दो कदम पीछे सरकते, तो फिर पहुंचे कैसे?
लड़का भी होशियार था। उसने कहा कि फिर मैंने घर की तरफ चलना शुरू किया,
तब बामुश्किल पहुंच पाया!

अष्टावक्र जैसी देह में भी ज्ञान जग गया, दीया जल गया, तो किसी भी देह में जग सकता है। फिर यह भारत शब्द का, भारत भूषण क्यों तुम्हारा मोह है? इसमें ऐसी क्या खास बात है?
तो मैं तो कोई अष्टावक्र या कृष्णमूर्ति को भारतीय नहीं कह सकता और न बुद्धपुरुषों की इस लंबीशृंखला को भारतीय संस्कृति की दीपमालिका कह सकता हूं। इन सबका भूगोल से कुछ लेना-देना नहीं, इतिहास से भी कुछ लेना-देना नहीं। सच तो यह है, इनकी परंपरा को परंपरा कहना भी ठीक नहीं। परंपरा शब्द भी खतरनाक है, और भ्रामक है। विज्ञान की परंपरा होती है, धर्म की कोई परंपरा नहीं होती।
इस सत्य को समझने की कोशिश करो। आमतौर से हालत उलटी है।
लोग विज्ञान की तो परंपरा की बात ही नहीं करते और धर्म की परंपरा की बात करते हैं; जबकि हालत और ही है, असलियत कुछ और है। विज्ञान की परंपरा होती है। जैसे अगर न्यूटन न पैदा हो तो एडीसन पैदा नहीं हो सकता, क्योंकि न्यूटन ने जो खोजें कीं, उनके ही आधार पर एडीसन की खोजें बनेंगी। न्यूटन, एडीसन ने जो खोजें कीं, अगर वे न की गई होतीं तो आइंस्टीन कभी पैदा नहीं हो सकता। विज्ञान तो एक सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी बनाता है। और पहली सीढ़ी न हो तो दूसरी सीढ़ी कैसे बने? वैज्ञानिक एकशृंखला खड़ी करते हैं। एक वैज्ञानिक दूसरे के कंधों पर खड़ा होता है। इसलिए तो न्यूटन से एडीसन ज्यादा दूर तक देख सकता है, क्योंकि न्यूटन के कंधों पर खड़ा है। और आइंस्टीन और भी ज्यादा दूर तक देख सकता है, क्योंकि वह एडीसन के कंधों पर खड़ा है। आगे आने वाले वैज्ञानिक और आगे देख सकेंगे क्योंकि वे आइंस्टीन के कंधों पर खड़े होंगे।
विज्ञान की एक परंपरा है, एकशृंखला है, कड़ी-कड़ी है। लेकिन धर्म की कोई कड़ी नहीं है। अगर अष्टावक्र न हुए होते तो कुछ ऐसा नहीं है कि बुद्ध को होने में अड़चन होगी। कोई अड़चन नहीं। अष्टावक्र हों या न हों, बुद्ध को होने में कोई अड़चन नहीं होगी। अगर बुद्ध को बिना जाने लाओत्सु हो सकता है और लाओत्सु को बिना जाने बुद्ध हो सकते हैं, तो क्या फर्क पड़ता था अष्टावक्र हुए होते या न हुए होते? बुद्ध न भी हुए होते तो भी कृष्णमूर्ति हो सकते हैं, तो भी रमण हो सकते हैं, कोई अंतर नहीं पड़ता। क्योंकि धर्म की कोई परंपरा नहीं होती।
बाहर की खोजें तो दूसरों पर निर्भर होती हैं। जिस आदमी ने बैलगाड़ी खोजी, हमें उसका नाम पता नहीं है, लेकिन अगर उसने बैलगाड़ी न खोजी होती तो हवाई-जहाज नहीं खोजा जा सकता था, इतना पक्का है। क्योंकि बैलगाड़ी ही न होती तो रेलगाड़ी न होती, कार न होती, साइकिल न होती। और जब ये चीजें ही न होतीं तो हवाई-जहाज कहां से होता?
यह तो तुम्हें पता ही होगा कि जिन राइट बंधुओं ने पहला हवाई-जहाज बनाया उनका बाप साइकिल की दुकान करता था, किराए से साइकिलें चलाता था। और साइकिलें टूटती-फूटती थीं तो उसने अपने नीचे घर के तलघरे में एक कबाड़खाना बना रखा था, जिसमें टूटी-फूटी साइकिलें इकट्ठी करता जाता था। कभी किसी का सामान काम में आ जाता था, नहीं तो पड़ा रहता था। ये दो बेटे राइट बंधु ज्यादा उम्र के नहीं थे--एक बीस साल का, एक बाईस साल का। ये उस तलघरे में घुसकर साइकिलों के टूटे-फूटे सामानों से उन्होंने पहला हवाई-जहाज बनाया था। और तलघरा न होता तो बना भी नहीं सकते थे, क्योंकि पूरा गांव इनको पागल समझता था और बाप भी इनको पागल समझता था। लेकिन बाप दुकान करे कि तलघरे में जाकर देखे कि ये क्या कर रहे हैं। बाप दुकान में लगा रहे, ये तलघरे में घुसे रहें। बाप सोया रहे, ये तलघरे में घुसे रहें। तलघरे की वजह से ही हवाई-जहाज बन सका। और पहला हवाई-जहाज जब उन्होंने बना लिया तो तलघरे से निकाल नहीं सकते थे, क्योंकि हवाई-जहाज तो बन गया लेकिन तलघरे से निकालने की जगह नहीं थी, तो उसको तोड़-फोड़कर निकाला। गांव के बाहर जाकर फिर से उसको जमाया और कसा। और किसी को खबर नहीं की, क्योंकि खुद भी भरोसा नहीं था, उड़ेगा कि नहीं उड़ेगा। जब साठ सेकंड तक एक भाई हवा में ठहरा रहा तब उन्होंने गांव में खबर की कि अब बुला लो लोगों को, जो पागल समझते थे हमें।

लेकिन बिना साइकिलों के हवाई-जहाज नहीं बनता और बिना बैलगाड़ी के साइकिल नहीं बन सकती और हवाई-जहाज के बिना चांद पर जाने वाला यान नहीं बन सकता। इन सबकीशृंखला है, सब एक-दूसरे से बंधे हैं। लेकिन बुद्धत्व की कोईशृंखला नहीं होती, कोई एक-दूसरे से बंधन नहीं होता। प्रत्येक बुद्ध निज होता है; अपनी निजता में होता है; अद्वितीय होता है। कोई पीछे हुआ हो बुद्ध या न हुआ हो, कोई आगे हो या न हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि बुद्धत्व की घटना वर्तमान में घटती है, उसका अतीत से कोई संबंध नहीं है-- अतीत से मुक्त होने में ही घटती है। और विज्ञान अतीत पर निर्भर होता है, अतीत के बिना नहीं हो सकता।
इसलिए खयाल रखना, जब विज्ञान वर्तमान की बात करता है तो वर्तमान शब्द
तो वही है लेकिन विज्ञान का शब्द वर्तमान अतीत पर निर्भर होता है। और जब धर्म वर्तमान की बात करता है तो धर्म का अतीत से कोई संबंध नहीं होता; धर्म का वर्तमान अतीत से मुक्त होता है। एक ही शब्द है, लेकिन बड़े अलग उनके अर्थ होते हैं।
इन सबकी कोई दीपमालिका नहीं है, कोईशृंखला नहीं है। लेकिन तुम्हारे
मन में एक स्वाभाविक रोग है, जो सभी के मन में है, सारी दुनिया में है। प्रत्येक व्यक्ति अपने देश को, अपने देश की गौरव-गरिमा को बढ़ा-चढ़ाकर बताना चाहता है। अपने देश के गौरव में उसे अपने अहंकार की तृप्ति भी मालूम होती है। इसीलिए हम बातें करते हैं अतीत-गौरव की, गरिमा की। चाहे अतीत सड़ा हुआ हो... सड़ा हुआ ही था, मगर हम अतीत की सड़ांध को फूलों में ढांक देते हैं। सुगंधियां छिड़क देते हैं कब्रों पर। लाशों पर सुंदर रेशमी वस्त्र उढ़ा देते हैं, चांदी-सोना मढ़ देते हैं, हीरे-जवाहरात जड़ देते हैं। क्योंकि हमारा अतीत अगर गौरववान है तो हम भी गौरववान हैं, क्योंकि हम उसके अंग हैं।
यह सिर्फ अहंकार की ही चेष्टा है। भारत भूषण, इस अहंकार से मुक्त होओ,
तो तुम भी अष्टावक्र हो सकते हो, तुम भी कृष्णमूर्ति हो सकते हो, तुम भी बुद्ध हो सकते हो। लेकिन यह अहंकार रुकावट डालेगा।
मुझे कोई विरोध नहीं है किसी से। मुझे क्या लेना-देना? लेकिन जिन मित्रों ने चुना है मेरा संग-साथ, उनके अहंकार को तोड़ने की तो हर कोशिश करूंगा। और उसमें यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि उनका अहंकार टूटे, ताकि वे वर्तमान में जी सकें। उन्हें अतीत से मुक्त करना होगा।
तुम कहते हो, "निवेदन है कि आप मुझे अपना आलोचक न समझें।"
मैंने समझा भी नहीं। तुमने प्रश्न ही पूछे हैं, आलोचना तो कुछ भी नहीं की। जिज्ञासा ही की है।
तुम ठीक कहते हो, "क्योंकि मैं भलीभांति समझता हूं कि आप जो कर रहे हैं उससे ही मनुष्यमात्र का कल्याण संभव है।"
तुम समझते तो हो, लेकिन अभी समझ ऊपर-ऊपर है। अगर यह समझ गहरी हो जाए तो तुम्हें इस महत कार्य में सम्मिलित होना चाहिए। यह गैरिक वस्त्रों का मजाक तुम्हीं को ग्रहण करना होगा। यह माला तुम्हें भी गले में लटकानी होगी। और घबड़ाओ नहीं, नाम कुछ ऐसा देंगे--स्वामी भारतानंद भारती। ऐसा कुछ नाम देंगे कि तुम्हें याद रहे। कुछ नाम की चिंता न करो। मुझसे प्रेम है तो मुझसे जुड़ो। लेकिन अभी बहुत सी शंकाएं होंगी मन में। कल फिर लिख ले आना। जुड़े बिना कोई राह नहीं। पीए बिना कोई मार्ग नहीं। समाधि के बिना कोई समाधान नहीं।
योग प्रीतम का यह गीत--
मेरी हुसयारियां लो, मुझे इक जाम दे दो
मिटे हस्ती हमारी, वही अंजाम दे दो,
बड़ा है बोझ सर का, करूंगा क्या इसे ले
मेरे सब नाम ले लो, मुझे विश्राम दे दो हवाएं चल रही हैं, घटाएं घिर रही हैं सभी कुछ हो रहा है, मुझे निष्काम दे दो हजारों फूल खिलते, सितारे जगमगाते खिलूं चुपचाप मैं भी, वही पैगाम दे दो

बड़ा ही शोरगुल है, मची है हाय-तोबा मुझे इससे बचा लो, हमारा धाम दे दो खुदी के पांव से चल, बहुत ही थक चुका हूं चले अब राम ही खुद, मुझे आराम दे दो यही इच्छा लिए मैं, दर पर खड़ा हूं
सहर हो तो उसी की, उसी की शाम दे दो मेरी हुसयारियां लो, मुझे इक जाम दे दो मिटे हस्ती हमारी, वही अंजाम दे दो
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
सातवां प्रवचन

प्रार्थना नहीं--ध्यान

पहला प्रश्नः ओशो, महाकवि रवींद्रनाथ ने अपने अंतिम दिनों में एक प्रश्नवाचक कविता लिखी जो इस प्रकार हैः
भगवान तुमि युगे युगे
दूत पठायेछ बारे बारे
दयाहीन संसारे
तारा बले गेल, क्षमा करो सबे,
बले गेल, भालोबासो, अंतर हते
विद्वेषविष नाशो।
वरणीया तारा स्मरणीया तारा,
तबुओ बाहिर-द्वारे
आजि दुर्दिने फिरानु तादेर
व्यर्थ नमस्कारे।
आमि ये देखेछि, गोपनहिंसा कपट रात्रि-छाये हनेछे निःसहाए
आमि ये देखेछि, प्रतिकारहीन शक्तेर अपराधे विचारेर वाणी नीरवे निभृते कांदे
आमि ये देखेनु, तरुण बालक उन्माद हये छूटे
की यंत्रणाय मरेछे पाथरे निष्फल माथाकूटे।।
कंठ आमार रुद्ध आजिके, वांशि संगीतहारा अमावश्यार कारा
लुप्त करेछे आमार भुवन दुःस्वप्नेर तले; ताइ तो तोमाय शुधाइ अश्रुजले--
याहारा तोमार बिषाइछे वायु, निभाइछे तब आलो,
तामि कि तादेर क्षमा करियाछ, तुमि कि बेसेछ भालो?
"भगवान, इस दयाहीन संसार में तुमने युग-युग में बार-बार दूत भेजे हैं।
वे कह गए, सबको क्षमा करो; वे बोल गए, सबको प्रेम करो--अंतस से विद्वेष के विष का नाश करो। वे पूजनीय हैं, वे स्मरणीय हैं; तो भी आज इस अशुभ समय में बाहर के दरवाजे से एक निरर्थक नमस्कार कर उन्हें लौटा दिया है।
मैंने देखा है, हिंसा और कपट ने रात्रि की छाया में छिपकर असहायों को मारा है। मैंने देखा है, शक्तिशाली के अपराध से, जिसका प्रतिकार न किया जा सके, न्याय की वाणी निभृत एकांत में रोती है। मैंने देखा है, तरुण बालक को पागलों की तरह भागते हुए; वह पत्थर पर व्यर्थ माथा पटककर कितनी यंत्रणा सहकर मरा है।
आज मेरा कंठ बंद है, बांसुरी का संगीत सोया हुआ है; अमावस्या के कारागृह ने मेरे भुवन को दुखस्वप्न में लुप्त कर दिया है। इसलिए तो आंखों में आंसू भरकर तुमसे पूछता हूं कि ये जो लोग तुम्हारी वायु को विषाक्त कर रहे हैं, तुम्हारे प्रकाश को बुझा रहे हैं, तुमने क्या उन्हें क्षमा किया है, तुमने क्या उन्हें प्यार किया है?"
ओशो, आपका महाकवि को क्या उत्तर है?

आनंद मैत्रेय, महाकवि रवींद्रनाथ ईश्वर की व्यक्तिवाची सड़ी-गली धारणा से कभी मुक्त न हो सके। उस धारणा में ही मनुष्य का सारा दुर्भाग्य छिपा हुआ है। रवींद्रनाथ के कानों तक जैसे फ्रेड्रिक नीत्शे का उदघोष नहीं पहुंचा कि ईश्वर मर चुका है, बहुत देर हुई तब का मर चुका है, और मनुष्य अब स्वतंत्र है।
नीत्शे स्वयं भी उस कोटि का ही कवि है जिस कोटि के कवि रवींद्रनाथ हैं। नीत्शे स्वयं भी जीवन की गहन समस्याओं से जूझ रहा है जैसे रवींद्रनाथ। पर दोनों की संघर्ष-विधि में भेद है। रवींद्रनाथ पुरानी लकीर के फकीर हैं। नीत्शे चट्टानों में नया मार्ग तोड़ रहा है। और स्वभावतः उसका घातक परिणाम भी उसे भोगना पड़ा। पिटी हुई लकीरों पर जो चलते

हैं, उनके लिए कोई खतरा नहीं है। लेकिन जो नए मार्ग तोड़ते हैं, उनके लिए सब तरह के खतरे हैं।
रवींद्रनाथ के मन में सदियों की जराजीर्ण धारणा कि ईश्वर व्यक्ति है, नियंता है, जिसकी मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, जिसके चलाए सब चलता है, जिसके रुकाए सब रुकता है, जिसने सृष्टि को बनाया और जो एक दिन सृष्टि को मिटाएगा, इस धारणा से रवींद्रनाथ का मन कभी मुक्त न हो सका। इस कारण ही उनके भीतर से प्रार्थनाएं तो उठीं मगर क्रांति की लपट न उठ सकी। और प्रार्थनाएं ऐसी जैसे अंगारा बुझ गया हो और सिर्फ ठंडी राख रह गई हो। अंगारा बुझ गया, यह कहना भी ठीक नहीं; अंगारा कभी था ही नहीं, राख ही राख है। फिर चाहो तुम उस राख को विभूति ही क्यों न कहो। कुछ भेद नहीं पड़ता। रवींद्रनाथ की प्रार्थनाएं नपुंसक हैं। क्योंकि जिस परमात्मा के लिए
की जा रही हैं वैसा कोई परमात्मा कहीं भी नहीं है।
इसलिए पहला तो उत्तर मैं यह देना चाहूंगा कि किस परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हो? खाली आकाश है। कहीं कोई परमात्मा नहीं है जो तुम्हारी प्रार्थनाओं को सुने और उन्हें पूरा करे। किससे बात कर रहे हो? अपने से ही बात कर रहे हो; यह विक्षिप्तता है, और कुछ भी नहीं। ध्यान की तो सार्थकता है, प्रार्थना की कोई सार्थकता नहीं है। ध्यान का अर्थ हैः भगवत्ता का अनुभव। और प्रार्थना शुरू ही होती है भगवान की मान्यता से। भगवत्ता है। जीवन भगवत्ता से भरपूर है। फूल-फूल में, पत्ते-पत्ते में, सागर की लहर-लहर में, हवा के झोंके-झोंके में भगवत्ता है।
लेकिन भेद समझ लेना।
भगवत्ता एक गुण है और भगवान एक व्यक्ति। यह उचित है कि जिसने भगवत्ता
को जान लिया उसे तुम भगवान कहो, भगवत्ता का जिसने अनुभव किया उसे तुम भगवान कहो, लेकिन कोई स्रष्टा नहीं है। किसी ने न कभी इस जगत को बनाया है और न कभी कोई इस जगत को मिटाएगा और न ही कोई इस जगत का नियंता है। यह सृष्टि शाश्वत है।
सृष्टि शब्द ही ठीक नहीं। क्योंकि सृष्टि शब्द में ही स्रष्टा की भ्रांति भरी हुई है। प्रकृति शब्द ठीक है। इसलिए महावीर ने और बुद्ध ने सृष्टि शब्द का उपयोग नहीं किया, प्रकृति शब्द का उपयोग किया। सृष्टि का अर्थ है, जो बनाई गई। और बनाई गई, तो कोई बनाने वाला होगा और जब बनाने वाला होगा तो कोई सम्हालने वाला होगा और तब ये सारे सवाल उठने शुरू हो जाएंगे। तब प्रश्नों की कतारें बंध जाएंगी।
बुद्ध ने और महावीर ने प्रकृति शब्द का उपयोग किया है। प्रकृति शब्द बड़ा प्यारा है। इस शब्द को तोड़ो और समझो। प्रकृति का अर्थ होता हैः कृति के पूर्व। जो कभी बनाई नहीं गई। जिसके पीछे कोई कर्ता नहीं है। जो हर कर्ता के पहले मौजूद है--प्रकृति। जो हर कृत्य के पहले मौजूद है--प्रकृति। प्रकृति है और प्रकृति सिर्फ पदार्थ नहीं है, उसमें चैतन्य भी है। सच पूछो तो पदार्थ चैतन्य की ही सोई हुई अवस्था है। और भगवत्ता चैतन्य की जाग्रत अवस्था है। इसलिए सवाल है तुम्हारे भीतर जो सोया है उसे जगाने का। किसी से प्रार्थना नहीं करनी है। किसी की पूजा नहीं करनी है। और तुम पूजा करोगे, तुम प्रार्थना करोगे तो ये सारे प्रश्न उठने शुरू हो जाएंगे। रवींद्रनाथ कहते हैं--
कंठ आमार रुद्ध आजिके...
"आज मेरा कंठ बंद है।"
... वांशि संगीतहारा अमावश्यार कारा
लुप्त करेछे आमार भुवन दुःस्वप्नेर तले; ताइ तो तोमाय शुधाइ अश्रुजले--
याहारा तोमार बिषाइछे वायु, निभाइछे तब आलो,
तामि कि तादेर क्षमा करियाछ, तुमि कि बेसेछ भालो?
"क्या तुमने सारे अन्यायियों को, सारे पापियों को, हे परमात्मा, क्षमा
कर दिया है? क्या तुमने उन्हें प्यार किया है?" तब तो बहुत अन्याय हो जाएगा। "आज मेरा कंठ बंद है, बांसुरी का संगीत सोया हुआ है, अमावस्या के

कारागृह ने मेरे भुवन को दुखस्वप्न में लुप्त कर दिया है। इसलिए तो आंखों में आंसू भरकर तुमसे पूछता हूं... ।"
मगर फिर भी किससे पूछ रहे हो? तुमसे? वहां कोई भी नहीं है। न कोई सुनने वाला है, न कोई उत्तर देने वाला है।
"आंखों में आंसू भरकर मैं तुमसे पूछता हूं कि जो लोग तुम्हारी वायु को विषाक्त कर रहे हैं, तुम्हारे प्रकाश को बुझा रहे हैं, तुमने क्या उन्हें क्षमा किया है? तुमने क्या उन्हें प्यार किया है?"
यह प्रश्न तो सार्थक है, लेकिन जिससे तुम पूछ रहे हो, वह वहां नहीं है।
वह वहां कभी नहीं था। तुम्हारी सब प्रार्थनाएं खाली आकाश में खो गई हैं। तुमने व्यर्थ ही सिर पटका है। लेकिन मानकर चलते हो कि कोई ईश्वर है। तो फिर ये प्रश्न उठने शुरू होते हैं।
"भगवान, इस दयाहीन संसार में", रवींद्रनाथ कहते हैं, "तुमने युग-युग में बार-बार दूत भेजे हैं।"
न कोई भेजने वाला है, न कोई दूत कभी आए हैं। हां, जिन्होंने भगवत्ता को अनुभव किया है, उन्होंने जो कहा है, वही संदेश हो गया है। वे किसी के संदेशवाहक नहीं हैं, पैगंबर नहीं हैं, दूत नहीं हैं। उनके भीतर ही जो जागा है, उसका ही गीत उन्होंने गाया है। उनके भीतर जो उठा है, उसको ही उन्होंने ढाला है शब्दों में, संगीत में, चित्रों में। उसने उस तरफ हर तरफ से इशारा करने की कोशिश की है, जिसने भी अपने भीतर चैतन्य का साक्षात्कार किया है। लेकिन वे दूत नहीं हैं। पर हम पहली ही बात मानकर चल पड़ते हैं, तो फिर उपद्रव शुरू हो जाता है। मान लिया कि कोई भगवान है व्यक्ति की भांति। उपस्थिति की भांति समझो भगवान को, व्यक्ति की भांति नहीं। सुगंध की भांति समझो भगवान को, फूल की भांति नहीं। फिर रवींद्रनाथ के ये सारे प्रश्न बदल जाएंगे। और ये प्रश्न रवींद्रनाथ के ही नहीं हैं, सदियों- सदियों में पूछे गए हैं। रवींद्रनाथ ने तो उन्हीं को सुंदर पंक्तियों में आबद्ध कर दिया है।
"भगवान, इस दयाहीन संसार में तुमने युग-युग में बार-बार दूत भेजे हैं।"
अगर भगवान निर्माता है इस जगत का, तो क्या जरूरत है दयाहीन संसार बनाने की? प्रथमतः ही जरूरत क्या है दयाहीन संसार बनाने की? यह भी खूब पागलपन हुआ! अगर है कोई परमात्मा तो विक्षिप्त होगा। कि पहले ये दयाहीन लोग बनाओ; ये दुष्ट, हत्यारे, हिंसक, अन्यायी, पापी, दुराचारी, ये निर्मित करो और फिर दूत भेजो इनके सुधार के लिए। यह भी खूब बात हुई! पहले बीमार बनाओ, जन्म से ही उन्हें रोग दो और फिर चिकित्सक भेजो! और फिर वे चिकित्सकों की न सुनें तो उन पर नाराज होओ! फिर उनको दंड दो और नरक में डालो। और अगर वे चिकित्सकों की सुन लें और मान लें तो उन पर प्रसन्न हो जाओ और उनको स्वर्ग का पुरस्कार दो। यह सब कैसा पागलपन है!
लेकिन एक व्यक्तिवादी ईश्वर की धारणा को मान लेने के बाद ये सारी बातें सार्थक मालूम होने लगती हैं। परमात्मा है तो फिर दूत भेजता है। पहले दुनिया बनाता है और हर व्यक्ति को पाप के बीज देता है, वासना देता है, काम देता है, क्रोध देता है, घृणा देता है, वैमनस्य देता है, लोभ देता है-- जन्म के साथ! तो फिर देने वाला ही जिम्मेवार है। फिर लोगों का क्या कसूर है?
तुमने पाप अपने हाथ से पैदा नहीं किया है। तुम उसके निर्माता नहीं हो। न तुमने अपना जीवन बनाया है, न जीवन में छिपी हुई वासनाएं बनाई हैं। तुम जीवन लेकर आए हो। और कौन तुम्हें दे गया है वासनाएं? और फिर आते हैं महात्मा और पैगंबर और अवतार, और वे समझाते हैं कि वासनाएं छोड़ो। परमात्मा संसार बनाता है और महात्मा समझाते हैं कि संसार का त्याग करो। यह कैसा गोरखधंधा है! अगर संसार का त्याग ही करना है तो बनाना ही क्यों? और जब महात्मा ही भेजने हैं तो परमात्मा यह संसार को बनाने का इतना आयोजन, इतना कष्ट क्यों लेता है? बनाए ही न। न होगा बांस, न बजेगी बांसुरी। बांस भी बनाओ और बांसुरी भी बनाओ और बजाने वाले भी बनाओ, फिर दूत भेजो कि देखो शोरगुल न करो! कि देखो बांसुरी न बजाओ! कि बांसुरी बजाने में बड़ा पाप है!

कि नर्कों में सड़ोगे! अगर बांसुरी न बजाई तो स्वर्गों में सुख पाओगे! फिर नर्क बनाओ, फिर स्वर्ग बनाओ, फिर सुखों का और दुखों का इंतजाम करो। लेकिन यह सब किसलिए? एक परमात्मा की धारणा को मान लेने के बाद यह सारा उपद्रव खड़ा होता चला जाता है।
तो रवींद्रनाथ कहते हैं कि "भगवान, इस दयाहीन संसार में तुमने युग-युग में बार-बार दूत भेजे हैं।"
मैं कहूंगाः कोई भगवान नहीं है। और न कोई दूत है।
और फिर वे कहते हैं, "वे कह गए हैं, सबको क्षमा करो; वे बोल गए, सबको प्रेम करो--अंतस से विद्वेष के विष का नाश करो।"
अब यह थोड़ा सोचने जैसा है कि ये सारे तथाकथित दूत और पैगंबर कहते हैं सबको प्रेम करो और परमात्मा खुद सबको प्रेम करता नहीं। प्रेम उसको करता है जो परमात्मा की मानकर चलता है; सबको नहीं। उसका प्रेम सशर्त है। क्षमा उसको करता है जो पुण्यात्मा है। पुण्यात्मा को क्षमा की जरूरत नहीं है। उसको क्षमा करता है जिसको क्षमा की जरूरत नहीं है। और पापी को नर्कों में डालता है; नर्कों की अग्निशिखाओं में जलाता है। तेल के कड़ाहों में भूनता है--पापियों को, जिनको कि क्षमा की जरूरत है। यह कैसा गणित? यह कैसा न्याय? इसलिए तो बुद्ध और महावीर ने ईश्वर की धारणा को इनकार कर दिया। नीत्शे से ढाई हजार वर्ष पहले इनकार कर दिया। साफ कहा कि कोई परमात्मा नहीं है। इसलिए फिर यह सवाल न रहा कि परमात्मा क्षमा करता है, पुरस्कार देता है। फिर बात बदल गई। बात ही और हो गई। फिर तुम जो करते हो, उसका परिणाम पाते हो। शुभ करते हो तो शुभ, अशुभ करते हो तो अशुभ। कोई देने वाला नहीं है। आग में हाथ डालते हो तो हाथ जल जाता है। और फूल को छूते हो तो हाथ में फूल की सुगंध बस जाती है। बस यूं ही। एक प्राकृतिक नियम है। सम्हलकर चलोगे; गिरोगे नहीं, हाथ-पैर न टूटेंगे। नशा करके चलोगे, बेहोशी में चलोगे; गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे।
ये महात्मा, ये दूत कह गए--सबको क्षमा करो। क्या उनको भी क्षमा कर दिया जाए जिन्होंने महत हत्याएं की हैं? क्या तैमूरलंग, चंगेजखां और नादिरशाह को क्षमा कर दिया जाए? क्या इनको भी प्रेम किया जाए? इनको क्षमा करने और प्रेम करने के कारण ही तो जिन देशों में धर्मों की, इन तथाकथित देवदूतों की बहुत प्रभावना रही है वहां लोग कायर हो गए। यह देश बाईस सौ साल से गुलाम रहा। क्योंकि जिन्होंने इसे गुलाम बनाया उनको भी इसने क्षमा कर दिया। जिन्होंने इसकी छाती पर कांटे बोए, जिन्होंने इसकी छाती को संगीनों से रौंदा, उनको भी क्षमा कर दिया। क्योंकि महात्मागण समझा रहे थे--सबको क्षमा करो, सबको प्रेम करो!
इसलिए रवींद्रनाथ ठीक पूछ रहे हैं कि "मैं तुमसे पूछता हूं कि क्या तुमने भी उन्हें क्षमा कर दिया है, क्या तुमने भी उन्हें प्यार किया है जिन्होंने तुम्हारे प्रकाश को बुझाया है और जो तुम्हारी वायु को विषाक्त कर रहे हैं?"
लेकिन इसके पहले कि रवींद्रनाथ यह पूछें कि क्या तुमने उन्हें क्षमा
कर दिया है, यह पूछना चाहिए कि तुमने उन्हें बनाया क्यों?
एक चित्रकार एक गंदा चित्र बनाए, अश्लील चित्र बनाए तो जिम्मा किसका है? चित्र अश्लील है, यह चित्र का कसूर है या चित्रकार का? एक मूर्तिकार एक भद्दी और बेहूदी प्रतिमा बनाए तो कौन उत्तरदायी है? प्रतिमा? क्या तुम प्रतिमा को सजा दोगे? हथकड़ियां पहनाओगे? कारागृह में डालोगे? या कि जिम्मेवार है मूर्तिकार? अगर इस संसार में पाप है, अगर इस संसार में जीवन की ज्योति को बुझाने वाले लोग हैं, अगर इस संसार में शोषण है, उत्पीड़न है, तो कौन जिम्मेवार है? यह क्यों नहीं पूछते?
रवींद्रनाथ ने बुनियादी प्रश्न नहीं पूछा है। पूछना चाहिए रवींद्रनाथ को कि परमात्मा, तुम हो भी? इस संसार को देखकर तो पक्का सबूत मिलता है कि तुम नहीं हो। तुम्हें बहुत बार कहा गया है कि संसार को देखकर प्रमाण मिलता है कि परमात्मा है--नहीं तो कौन संसार को चलाएगा?
मैं तुमसे कहता हूंः इस संसार को देखकर पूरा प्रमाण मिलता है कि अगर कोई चलाने वाला भी होगा तो शैतान होगा, परमात्मा नहीं हो सकता। और यह

संसार जिस अटपटे ढंग से चल रहा है, जिस उलटे-सीधे ढंग से चल रहा है, जगह-जगह गिरता है और टकराता है, जिस अंधेपन से चल रहा है, उससे जाहिर होता है कि इसके पीछे कोई बनाने वाला नहीं है। लोग सोए हैं और सोए-सोए चल रहे हैं, इसलिए टकरा रहे हैं। हां, लोग जाग सकते हैं।
अगर तुम मुझसे पूछो तो सोया हुआ आदमी जो भी करेगा, वह गलत होगा। और सोए हुए आदमी को क्या दंड दो! सोया था, नींद में कुछ बक गया होगा, बड़बड़ा गया होगा, उसे क्या दंड दो! और जो जाग गया है, उससे गलत होता नहीं। उससे रोशनी बुझती नहीं, उससे रोशनी बढ़ती है।
मगर रवींद्रनाथ की धारणा वही है, सड़ी-गली, एक परमात्मा की। उससे ही प्रार्थना कर रहे हैं। यद्यपि उनके मन में संदेह उठे हैं लेकिन संदेह बहुत गहरे नहीं हैं। दूतों पर तो संदेह उठ गए हैं लेकिन दूत भेजने वाले पर संदेह नहीं उठा है।
वह कहते हैं कि "वे पूजनीय हैं; माना कि तुमने जो दूत भेजे वे पूजनीय हैं, क्योंकि तुमने भेजे; वे स्मरणीय हैं, तो भी आज इस अशुभ समय में बाहर के दरवाजे से एक निरर्थक नमस्कार करके उन्हें लौटा दिया है।"
रवींद्रनाथ कहते भी हैं तो बहुत माधुर्य से कहते हैं। वे कहते हैं-- वरणीया तारा स्मरणीया तारा, तबुओ बाहिर-द्वारे
आजि दुर्दिने फिरानु तादेर व्यर्थ नमस्कारे।
"मैंने तेरे दूतों को--माना कि वे पूजनीय हैं, माना कि वे स्मरणीय हैं क्योंकि तेरे दूत हैं--मगर फिर भी इस दुर्दिन में उन्हें बाहर के ही द्वार से एक व्यर्थ के खाली अर्थहीन नमस्कार को देकर लौटा दिया है।"
वही तो तुम सबने किया है। मंदिरों में तुम जो प्रतिमाएं बनाकर बैठे हो, किसलिए? वह खाली और व्यर्थ नमस्कार करने को। तुम्हारी मस्जिदों में, तुम्हारे गुरुद्वारों में, तुम्हारे गिरजों में तुम क्या कर रहे हो? वही खाली नमस्कार। मजबूरी है, ईश्वर के दूत हैं, इनकी प्रतिमा तो बनानी होगी, दो फूल तो चढ़ाने ही होंगे। लेकिन रवींद्रनाथ के पास आंखें तो हैं। धुंधला दिखाई पड़ता है मगर आंखें हैं। उनको यह दिखाई पड़ता है--
आमि ये देखेछि, गोपनहिंसा कपट रात्रि-छाये हनेछे निःसहाए
आमि ये देखेछि, प्रतिकारहीन शक्तेर अपराधे विचारेर वाणी नीरवे निभृते कांदे
आमि ये देखेनु, तरुण बालक उन्माद हये छूटे
की यंत्रणाय मरेछे पाथरे निष्फल माथाकूटे।।
"देखता हूं बहुत अन्याय, अपनी आंखों से देखा है हिंसा और कपट ने रात्रि को अंधकार की तरह घेर लिया है, असहायों को मारा गया है; मैंने देखा है शक्तिशाली के अपराध से, जिसका प्रतिकार न किया जा सके, न्याय की वाणी निभृत एकांत में रोती है। मैंने देखा है तरुण बालक को पागलों की तरह भागते हुए। वह पत्थर पर व्यर्थ माथा पटककर कितनी यंत्रणा सहकर मरा है।" छोटे-छोटे बच्चे मर जाते हैं। इनका तो कोई कसूर नहीं, इनका तो कोई पाप नहीं। और अगर पाप ही था इनका पिछले जन्मों का तो जन्म ही क्यों दिया? तो मरने की यह यंत्रणा क्यों दी? प्रश्न तो उठ रहे हैं मगर प्रश्न पूरे गहरे नहीं जा रहे हैं। धुंधले-धुंधले हैं।
"आज मेरा कंठ बंद है, बांसुरी का संगीत सोया हुआ है, अमावस्या के कारागृह ने मेरे भुवन को दुखस्वप्न में लुप्त कर दिया है; इसलिए तो आंखों में आंसू भरकर तुमसे पूछता हूं... ।"
लेकिन फिर भी किससे पूछ रहे हो? आंखों में आंसू भरो, लाख आंसू भरो, जार-जार रोओ, किससे पूछ रहे हो? वहां कोई उत्तर देने वाला नहीं है। कोई प्रतिध्वनि भी पैदा नहीं होगी। तुम अकेले हो। यह एकालाप है। तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं एकालाप हैं, वार्तालाप नहीं। और सदियां हो गईं ये प्रार्थनाएं करते, कब जागोगे?
संदेह ही करना हो तो परमात्मा पर करो। और मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा पर संदेह उठ आए पूरा-पूरा और तुम्हारी संदेह की अग्नि में तुम्हारी परमात्मा की तथाकथित धारणा भस्मीभूत हो जाए तो तुम्हारे जीवन में क्रांति घट सकती है। तब तुम बाहर हाथ न फैलाओगे। तुम बाहर हाथ न

जोड़ोगे। तुम भीतर मुड़ोगे। तुम भीतर तलाशोगे। बाहर तो कोई नहीं है। आकाश में तो कोई भी नहीं है। सात आसमानों के पार तो कोई भी नहीं है। तब फिर एक ही जगह बचती है कि अपने भीतर झांक लूं और तलाश लूं, शायद वहां हो। और जिन्होंने वहां झांका है, निश्चित पाया है। तुम्हीं हो। तुम्हारे ही केंद्र पर वह दीया जल रहा है। और यह दीया प्रार्थनाओं से नहीं पाया जा सकता। क्योंकि प्रार्थना बहिर्मुखी होती है। यह दीया ध्यान से ही पाया जा सकता है। ध्यान अंतर्मुखी होता है।
रवींद्रनाथ प्रार्थनाएं ही करते रहे। जिस गीतांजलि पर उन्हें नोबल पुरस्कार मिला, वह केवल प्रार्थनाओं का ही संकलन है। काश, वे थोड़े ध्यान की तरफ मुड़ते। तो यह भी हो सकता था कि गीतांजलि पैदा न होती, यह भी हो सकता था नोबल पुरस्कार न मिलता, लेकिन जो जीवन की धन्यता है, वह उन्हें जरूर मिल जाती। वह जो जीवन की भगवत्ता है, जरूर उन्हें मिल जाती।
एक क्रांति चाहिए--एक महत क्रांति, जो तुम्हें बाहर की तलाश से भीतर
की तरफ मोड़ दे और तुम्हारे सोए हुए चैतन्य को जगा दे। तब तुम पाओगे कि न कोई परमात्मा है, न कोई दूत है, न कोई उसकी किताब है। सब किताबें आदमियों की ईजादें हैं। फिर वेद हों कि बाइबिल हो कि कुरान हो। और सब शब्द आदमियों की उदघोषणाएं हैं। हां, एक शून्य है भीतर जो आदमी के पार है, जो आदमी की तंद्रा और निद्रा के पार है। एक ऐसे जागरण का लोक है भीतर जिसके सामने हजारों सूर्य भी फीके पड़ जाते हैं। और एक ऐसी सुगंधि है, जो एक बार मिल जाती है तो सदा को मिल जाती है। जो कालातीत है। जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती। और उसके मिल जाते ही तुम्हारे जीवन की पूरी शैली बदल जाती है। तब तुम इस जगत में अन्याय से लड़ोगे, यद्यपि तुम्हारे लड़ने में तुम विचलित न होओगे। तुम्हारे भीतर सब शांत और मौन रहेगा और तुम्हारी परिधि पर क्रांति उठेगी। तुम्हारे केंद्र पर शांति और तुम्हारी परिधि पर क्रांति। तुम्हारे भीतर अखंड मौन और तुम्हारी परिधि पर अन्याय का प्रतिकार। फिर तुम गुलाम होने को राजी न होओगे। चाहे गुलामी राजनैतिक हो, चाहे आर्थिक, चाहे मानसिक, चाहे आध्यात्मिक, तुम किसी तरह की गुलामी के लिए राजी न होओगे। तुम सारी गुलामी के पर्दों को हटा दोगे। तुम्हारे भीतर अगर तुम्हें मोक्ष का स्वाद आ जाए तो तुम बाहर भी उस मोक्ष के स्वाद को बांटने में लग जाओगे।
और तब हम एक नई दुनिया का निर्माण कर सकते हैं। अभी तक तो हमने नई दुनिया का निर्माण किया नहीं। अब तक तो हम नए-नए परमात्मा ढालते रहे।
हर नई पौद ने इक ताजा सनम ढाल लिया
नित नए बुत, नए मंदिर, नए पूजा के उसूल
शंख बजते रहे, जलते रहे रंगीं फानूस
रूह घुलती रही, होता रहा इंसान मलूलक
स्रे-शाही से गिराए गए नीलम पुखराज
संगरेजों को निगलते रहे मजबूर अवाम खुश्क कांटों में बदलते रहे खैरात के फूल सूखे जबड़ों को जकड़ती रही जरतार लगाम हुस्न बिकता रहा जरबफ्त के पर्दों के उधर इश्क सुनता रहा बजते हुए फौलाद का शोर काफिले लुटते रहे, मंजिलें बेगाना रहीं चांद बुझते रहे, तकते रहे महबूस चकोर
हर नया दौर सद-उम्मीद-बदामां आया जिंदगी खस्ता-ओ-दर्मांदा-ओ-मजबूर रही इक शहनशाह उठा इक शहनशाह बढ़ा
इसी चक्कर में अजल से ये जमीं चूर रही नागहां एक धुआं-धार दरीचा खड़का शोख-सी शम्मअ बढ़ी, लौ की जबां थर्राई सरसराती हुई जुल्मत के निशेबों से उठी शफ्के-सुर्ख नई सुबह के नग्मे गाती इक नए दौर का परतौ है उफक की लाली

इक नए हुस्न की खातिर ये हिनाबंदी है एक ही सतह पे उतरे हैं निशेब और फराज
अब किस इंसान को दावा-ए-खुदावंदी है
इक नए दौर का परतौ है उफक की लाली
इक नए हुस्न की खातिर ये हिनाबंदी है
एक ही सतह पे उतरे हैं निशेब और फराज
अब किस इंसान को दावा-ए-खुदावंदी है
आ गया वह समय जब हम और सनम न ढालें। और नए मंदिर न खड़े करें। और नए रिवाज और नए क्रियाकांड न बुनें। उतर चुकीं बहुत किताबें, उतर चुके बहुत रसूल, बन चुके बहुत उसूल, अब समय आ गया कि यह सब बकवास बंद हो और हम भीतर उतरें। और भीतर तलाशें। बाहर की खोज हार गई, चुक गई, समाप्त हो गई। अगर कोई जगह बची है अब खोजने को तो वह मनुष्य का अंतर-आकाश है।
इसलिए मेरा जोर प्रार्थना पर नहीं, ध्यान पर है। इसलिए मेरा जोर मंदिरों पर, मस्जिदों पर नहीं; गीता पर, कुरानों पर, बाइबिलों पर नहीं; तुम्हारे भीतर के प्रगाढ़ मौन पर है। काश, तुम जान सको भीतर की शून्यता तो भगवत्ता तुम्हारी है। और तब तुम जानोगे कि कोई भगवान नहीं है, यद्यपि सारा जगत भगवत्ता से ओतप्रोत है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपने भगवान कृष्ण की सोलह हजार पत्नियों के प्रसंग में कहा कि उनमें से अनेक दूसरों की पत्नियां थीं और कृष्ण उन्हें बलपूर्वक भगा लाए थे। यह बात सही है। लेकिन उसमें इतना जोड़ना जरूरी है कि ये सबकी सब अपने पतियों द्वारा प्रताड़ित-पीड़ित थीं और उन्होंने कृष्ण से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना की थी। कृष्ण ने बस उद्धारक का काम किया था। आप क्या कहते हैं?

पंचानन पाठक, यह बात सबसे पहले जान लेनी जरूरी है कि क्या प्रमाण है तुम्हारे पास कि इन पत्नियों ने कृष्ण से उद्धार की प्रार्थना की थी? हां, कृष्ण की खुशामद में लिखी गई किताबों में यह बात लिखी है? अगर रावण जीत गया होता तो रावणलीला लिखी गई होती, रामलीला नहीं। और उसमें यह बात जरूर लिखी गई होती कि सीता ने ही प्रार्थना की थी उद्धार की।
यह सूत्र तुमने बार-बार सुना है--सत्यमेव जयते, कि सत्य की सदा विजय होती है। बात बिल्कुल उलटी है। जो जीत जाता है, लोग उसको सत्य कहने लगते हैं। सत्य की विजय होती है या नहीं, यह तो पक्का नहीं, लेकिन जो विजयी हो जाता है लोग उसी को सत्य कहने लगते हैं। तुमने राम को पूजा क्योंकि राम विजयी हो गए। तुम रावण को पूजते अगर रावण विजेता हो जाता। विजय की पूजा है। कहते हैं नः लोग उगते सूरज को नमस्कार करते हैं, डूबते को कौन नमस्कार करता है!
किसने ये ग्रंथ लिखे? ये सोलह हजार स्त्रियों ने उद्धार के लिए प्रार्थना की थी। इतने बड़े देश में केवल सोलह हजार स्त्रियां ही प्रताड़ित थीं! कहते हैं महाभारत के युद्ध में कोई सवा अरब आदमी मरे। जब सवा अरब आदमी मर सकते हैं महाभारत के युद्ध में तो इस देश में कम से कम तीन-चार अरब आदमी तो रहे ही होंगे। दो अरब स्त्रियां रही होंगी। और जब सवा अरब आदमी मर गए तो इनकी सवा अरब औरतें तो कम से कम दुखी रही ही होंगी। केवल सोलह हजार स्त्रियां! क्योंकि ऐसा तो कोई उल्लेख मिलता नहीं कि महाभारत के बाद सवा अरब स्त्रियों ने अग्नि में जलकर सती होने का कोई निर्णय किया हो। सवा अरब स्त्रियां जलतीं तो अग्नि अभी तक भी बुझती नहीं। बहुत दुखी रही होंगी स्त्रियां। इन सबने प्रार्थना तो की ही होगी--और तो करने को क्या था? बिचारे रवींद्रनाथ तक प्रार्थना कर रहे हैं! तो बाकी स्त्रियां और तो करतीं ही क्या?
केवल सोलह हजार स्त्रियां और वे भी सुंदर ही सुंदर! एकाध कुरूप स्त्री ने कोई प्रार्थना नहीं की? सुंदर स्त्रियां ही पीड़ित थीं? और चलो ये भी मान लें, एकाध पति ने प्रार्थना न की? क्योंकि मेरे देखे में तो अनुभव कुछ और ही है। पत्नियों से पति कहीं ज्यादा पीड़ित हैं। अगर सोलह

हजार स्त्रियों को भगाया था तो कम से कम बत्तीस हजार पतियों को भी भगाना पड़ता। तुम पतियों से पूछ लो।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे कह रहा था, पापा, आपने मम्मी से शादी क्यों की?
मुल्ला नसरुद्दीन ने उसे गौर से देखा और कहा, हरामजादे, तो तुझे भी आश्चर्य होने लगा?
अपनी पत्नी के हाथ में क्रिकेट का बल्ला देखकर मुल्ला नसरुद्दीन ने पूछा, क्या तुम छक्के लगा सकती हो?
पत्नी ने कहा, मैं छक्के-वक्के लगाना नहीं जानती, मैं छक्के छुड़ा सकती हूं।
चंदूलाल मुल्ला नसरुद्दीन से कह रहे थे, जादू वह जो सिर चढ़कर बोले। मुहावरा सुनकर नसरुद्दीन ने कहा, जादू न हुआ, पत्नी हो गया।
टानिक बनाने वाली कंपनी के पास एक महिला का प्रशंसापत्र इन शब्दों में आया--आपका टानिक निस्संदेह बहुत कारगर है। पहले मैं अपने बच्चे तक को भी पीट नहीं सकती थी। टानिक खाने के बाद अब घर के सारे कामकाज निपटा लेने के अलावा अब पति को भी एक-दो हाथ जमा देती हूं।
पति-पत्नी में झगड़ा हुआ, दोनों बहुत गुस्से में थे, पति रोते हुए बोला, भगवान, हे भगवान, मुझे उठा ही लो!
पत्नी भी चिल्लाई, भगवान, मुझे भी उठा लो।
पति ने इस पर फौरन कहा, तो भगवान, मुझे वहां न ले जाना जहां इस बाई को
ले जाओ। नहीं तो मरे और बेकार मरे!
एक जीवन-बीमा कंपनी का दफ्तर। बीमा कंपनी का आफीसर मुल्ला नसरुद्दीन
से पूछ रहा है कि मुल्ला, आप अपने हाथ-पैरों का बीमा कराना चाहते हैं? कराइए, लेकिन यदि आपकी पत्नी आपके हाथ-पैर तोड़ देगी तो हम इसे दुर्घटना नहीं समझेंगे।
यह तो रोजमर्रा की बात है। यह कोई दुर्घटना नहीं।
शादी की सालगिरह नजदीक थी। पत्नी ने पति से पूछा, इस बार हम शादी की सालगिरह किस तरह मनाएंगे? तुम ने कुछ सोचा?
मेरे विचार से इस बार वर्षगांठ के दिन पांच मिनट अगर मौन रखें तो कैसा रहे!--पति ने अपनी योजना बताई।
कहां मौन! पांच मिनट मौन हो जाए तो बहुत!
चीनी की कीमती प्याली हाथ से गिरकर टूट जाने से पलंग के नीचे दुबके हुए मुल्ला नसरुद्दीन से पत्नी बोली, अजी, मैं कहती हूं बाहर निकलो! मुल्ला नसरुद्दीन बोला, घर का मालिक मैं हूं, जहां मेरी मर्जी होगी वहां बैठूंगा!
और पलंग के नीचे बैठने का कारण है। क्योंकि पत्नी मोटी है और पलंग के नीचे नहीं घुस सकती, वही जगह एकमात्र सुरक्षित है।
कृष्ण को एक भी पति ने प्रार्थना न की! सोलह हजार पत्नियां, तुम कहते हो, पंचानन पाठक, कि आप अपनी बात में इतना और जोड़ दें कि ये सबकी सब अपने पतियों द्वारा प्रताड़ित-पीड़ित थीं और उन्होंने कृष्ण से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना की थी।
बस, स्त्रियों ही स्त्रियों ने प्रार्थना की? या उनने सिर्फ स्त्रियों की ही प्रार्थना सुनी, पतियों की कोई दरखास्त स्वीकार ही नहीं की। एकाध पति का भी उद्धार करते तो मैं भी कहता कि हां, उद्धारक हैं। स्त्रियों के कपड़े चुरा-चुराकर झाड़ों पर बैठते रहे, कभी तो पुरुषों
के भी चुराते! पुरुषों का उद्धार ही नहीं करते, बस स्त्रियों ही स्त्रियों का उद्धार! द्रौपदी की साड़ी बढ़ाते गए, बढ़ाते गए, एकाध पुरुष का लंगोट भी तो बढ़ाते! कि पुरुषों की लंगोट भी छिन गई। कि जो बड़े लंगोट के पक्के थे वे भी लंगोट गंवा बैठे। एकदम बढ़ाते जाते लंगोट, कितना ही गंवाने की कोशिश करते, न गंवा पाते! ऐसा मजबूत लंगोट दे देते।... बस, स्त्रियों ही स्त्रियों की रक्षा! बड़ा गजब उद्धार किया!
और क्या इन सोलह हजार स्त्रियों का उद्धार कर लेने से स्त्रियां प्रताड़ित होना बंद हो गईं? जरूर मैं उद्धारक कहता अगर विवाह को ही समाप्त

कर देते। तो पुरुषों का भी उद्धार हो जाता, स्त्रियों का भी उद्धार हो जाता। कुछ नई ईजाद करते। स्त्री और पुरुष के बीच कोई नए संबंध की शैली बताते। यह सड़ी-गली शैली, जिसके परिणाम स्त्रियां भुगत रही हैं, पुरुष भुगत रहे हैं, दोनों नर्क में जी रहे हैं! ऐसा एकाध-दो का उद्धार कर लेने से, हजार-दो हजार का उद्धार कर लेने से या सोलह हजार का उद्धार कर लेने से क्या होता है! यह तंत्र ही सड़ा-गला है। इस तंत्र की जगह कोई नया तंत्र सुझाते। तो मैं जरूर कहता कि उद्धारक थे।
इसलिए, पंचानन पाठक, मैंने तो जो बात कही उतनी ही कहूंगा, उसमें कुछ जोड़ नहीं सकता हूं।

तीसरा प्रश्नः ओशो, यह मेरा आखिरी प्रश्न है। इसके बाद मैं आपसे संन्यास लेकर मौन हो जाना चाहता हूं। मेरा प्रश्न यह है कि आप बुद्धपुरुषों तथा धर्मगुरुओं के संबंध में कुछ ऐसे वक्तव्य दे देते हैं जिससे उनके मानने वाले भड़क जाते हैं। जैसे इन्हीं दिनों आपने हरेकृष्ण आंदोलन वालों तथा कुछ पारसियों को अपने वक्तव्यों द्वारा नाराज कर दिया। महर्षि महेश योगी, साईं बाबा, मुक्तानंद, आचार्य तुलसी, मदर टेरेसा, पोप, शंकराचार्य और सभी धर्मगुरु आपसे खिन्न हैं। धीरे-धीरे आप सभी को नाराज किए जा रहे हैं। आपके काम करने की यह कैसी बेबूझ शैली है? ओशो, एक निवेदन और कि आप मेरा नाम भारतानंद भारती नहीं रखना।

भारत भूषण, इस बात से मैं राजी हूं। भारतानंद भारती तुम्हारा नाम नहीं रखूंगा। और आनंदित हूं कि तुमने संन्यास का साहस जुटा लिया। और इससे भी आनंदित हूं कि यह तुम्हारा आखिरी प्रश्न है। क्योंकि जो निष्प्रश्न हुआ, वह बुद्धत्व से बहुत दूर नहीं। जिसने आखिरी प्रश्न पूछ लिया, उसके बाद फिर उत्तर ही बचता है, फिर और कुछ बचता नहीं।
रही मेरे काम करने की शैली, वह निश्चित बेबूझ है। लेकिन इतनी बेबूझ भी नहीं कि थोड़ी तलाश करो तो समझ में न आ जाए।
तुम पूछते हो कि "आप बुद्धपुरुषों तथा धर्मगुरुओं के संबंध में कुछ ऐसे वक्तव्य दे देते हैं जिनसे उनके मानने वाले भड़क जाते हैं।"
कम से कम जगते तो हैं। नहीं तो सोए हैं--घुर्राते हैं। भड़क जाते हैं,
यह तो ठीक। अरे, सौ भड़केंगे तो एकाध तो मेरे पास चला आएगा। मगर सौ ही सोए रहे तो एक के भी आने की संभावना नहीं। सो मैं निन्यानबे जो भड़क गए उनकी फिक्र नहीं करता वे फिर सो जाएंगे। कितनी देर भड़के रहेंगे? कइयों को भड़काकर मैं देख चुका, थोड़े दिन बाद सो जाते हैं। फिर घुर्राने लगते हैं। मगर एकाध-दो जो उस भड़काने में आ जाते हैं वे आ जाते हैं। यह सौदा महंगा नहीं। थोड़ी-बहुत गालियां मुझे देकर वे तो फिर सो जाएंगे।
अब जैसे कि अभी पारसियों को भड़का दिया। ये तो जल्दी सो जाएंगे। पारसी ऐसे ही भले आदमी हैं, भड़केंगे भी तो क्या खाक भड़केंगे! थोड़ा उछल-कूद करेंगे और फिर कहेंगे कि अब क्या सार है! अपना चादर ओढ़कर फिर सो जाएंगे! ऐसे ही बहुत बहादुर होते तो ईरान छोड़कर काहे को भागे होते... ! ईरान छोड़कर भागे, सारा ईरान गया, अब कुल बचे हैं थोड़े से। वह भी बस बंबई के भीतर और बंबई के आसपास। नब्बे प्रतिशत बंबई में और दस प्रतिशत समझ लो कि खंडाला, लोनावाला... बहुत दूर निकले तो पूना! या वे बहुत ही बहादुर हुए तो पंचगनी! बस, यहां सारा नक्शा समाप्त। सीधे-साधे भोले-भाले लोग हैं। ऐसे तो सुनते ही नहीं, ऐसे तो सोए ही रहते हैं, सो भड़काना जरूरी था। जो भड़क गए हैं, उनमें से कुछ जरूर मेरे पास आ जाएंगे। और जो समझदार हैं, वे निश्चित समझेंगे। समझदार के सोचने के ढंग अलग होते हैं।
कल ही मुझे एक पत्र मिला। पत्र हैः महंत खेमदासजी साहब का। लिखा हैः भगवान, महंत खेमदास का प्रेम स्वीकार करें। मैं कबीर-मंदिर, बड़ौदा में महंत हूं। आपकी किताबें और प्रवचन सुनकर महसूस होता है कि आप राम, कृष्ण, कबीर, बुद्ध, मोहम्मद आदि सब बुद्धों के निचोड़ हैं। आपके दर्शन के लिए तड़प रहा हूं! लेकिन भक्तों के बीच से छूटकर आना मुश्किल बन गया है। भीड़ में भी अकेला जीने के लिए तूफान बढ़ रहा है। मेरे पास आते हुए लोगों को देने के लिए

प्रेम के अलावा कुछ भी नहीं है। हरि नहीं मिले, लेकिन हरि दर्शन के लिए जी तड़पने लगा है।
भगवान, मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूं। जिससे दिल में उठी कोई अनजानी प्यास को बुझा सकूं। कबीर साहब पर बोलकर आपने सब काम पूरा कर दिया।
अब किसी मंदिर के महंत से ऐसी आशा तुम कर सकते हो? लेकिन जब कुछ लोग जगेंगे--भड़केंगे तो जगेंगे--जो जगेंगे, उनमें से कुछ तो जरूर खिंचे चले आएंगे। अब कोई महंत अगर यह स्वीकार करता हो कि हरि की प्यास जगी, हरिदर्शन की आकांक्षा जगी, और आने को आतुर हो रहा है, तो भड़काना महंगा सौदा नहीं है। बाकी निन्यानबे तो सोए थे, फिर सो जाएंगे। उनकी क्या चिंता लेनी!
यह मेरे काम की शैली सीधी-सीधी है, गणित की है। आखिर इतने लोग जो मेरे पास इकट्ठे हो रहे हैं, ये कैसे इकट्ठे हो रहे हैं? मैं यहां बैठा रहता हूं, अपने कमरे से निकलता नहीं--और सारी दुनिया में लोगों को भड़काए रखता हूं। चमत्कार और किसे कहते हैं? कमरे से बाहर भी नहीं निकलता!
अभी कल खबर मुझे आई--पोस्टर आया है--एमस्टर्डम के विश्वविद्यालय ने छह महीने कीशृंखलाबद्ध प्रवचनमालाएं रखी हैं मेरे ऊपर, मेरे पक्ष और विपक्ष में। जिसमें छह महीने तक सतत अनेक लोग व्याख्यान देने वाले हैं। वैज्ञानिक बोलेंगे, मनोवैज्ञानिक बोलेंगे, दार्शनिक बोलेंगे, धर्मगुरु बोलेंगे, पादरी बोलेंगे, मेरे संन्यासी बोलेंगे।
हालैंड में--जिसका मुझे ठीक-ठीक नक्शा भी पता नहीं कि सच में कहां है! क्योंकि भूगोल में मैं पहले ही से कमजोर। सच पूछो तो सभी चीजों में कमजोर-- इतिहास में, भूगोल में... । इस तरह की व्यर्थ बातों में मुझे कोई रस रहा नहीं। अगर मुझसे तुम एकदम पूछो कि हालैंड कहां है तो मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकता। लेकिन मैं कहा हूं, हालैंड में हर आदमी जानता है। असली बात वही है। इसको कहते हैं भूगोल का ज्ञान।
तीन दिन पहले हालैंड के एक बहुत बड़े अखबार ने आपके भीतर कितना संतोष है, इसकी जांच के लिए प्रश्न रखे हैं। पहला प्रश्न, इसमें दस अंक मिलते हैं; दूसरा प्रश्न, इसमें चालीस; इसका हां में उत्तर दो तो पचास, न में उत्तर दो तो इतना। और दो सौ चालीस अंक जिसको मिलते हैं, उसके लिए सुझाव है संपादक का कि फिर भगवान के पास पूना जाओ। कि तुम्हारा संतोष अब जरूरत से ज्यादा हो गया। इतना संतोष रखकर यहां क्या कर रहे हो?
जर्मनी में उपद्रव है, भारी उपद्रव है। इटली में उपद्रव है, इंग्लैंड में उपद्रव है, जापान में उपद्रव बढ़ रहा है। तुम सोचते हो मेरे काम करने के ढंग में कुछ गलती है? और तो किसी तरह से काम किया जा सकता नहीं। ये सब तो मेरे बहाने हैं; मुझे क्या लेना-देना है--महेश योगी से कि साईंबाबा से कि मुक्तानंद से कि तुलसी से कि टेरेसा से कि शंकराचार्य से। जाएं सब नरक, मुझे क्या लेना-देना है। जहां जाना हो जाएं। मगर इनको मैं कुछ कह-कहकर इनके पीछे चलने वालों की जो भीड़ है उसको भड़का देता हूं। उसमें से कुछ भड़ककर इधर चले आते हैं कि देखें मामला क्या है! बस, यहां आए कि आए।
अब जैसे भारत भूषण, तुम आ गए। सोचा भी न होगा कि संन्यास लेना पड़ेगा! तुम तो यूं ही बातचीत कर रहे थे, प्रश्नों में से प्रश्न उठा रहे थे, उलझ गए, उलझते चले गए। अब बात बिगड़ने के करीब आ गई। अब डुबकी मारनी पड़ेगी। आखिर जब कपड़े उतार कर बिल्कुल खड़े हो गए किनारे पर तो अब लौट भी नहीं सकते। बेफिक्र रहो! प्यारा नाम दूंगा! अब मारो डुबकी!
मेरे काम करने के अपने ढंग हैं।

आखिरी प्रश्नः ओशो,
चल बुल्लिया चल ओथे चलिए
जित्थे वसण सारे अन्ने
ना कोइ साडी जात पछाणें
ते न कोई सानूं मन्ने।।
"अर्थात बुल्लेशाह कहते हैं कि बुल्ले,
चल वहां चलें जहां सब अंधे बसते हैं और जहां न हमारी कोई जाति पहचाने
और न ही हमें माने।"

ओशो, मैंने बिना अर्थ समझे इसे बहुत गाया और गुनगुनाया है।
निवेदन है कि अब आप इसका अर्थ भी समझा दें।

योग शुक्ला, यह मुसीबत आती है। अब जैसे मैं ही हूं। अभी लोगों को भड़का रहा हूं, जगा रहा हूं। फिर ज्यादा लोग भड़क जाएं और ज्यादा लोग जग जाएं और यहां भीड़-भड़क्का इतना हो जाए कि जीना मेरा मुश्किल हो जाए, तो फिर मैं भी कहूंगाः
चल बुल्लिया चल ओथे चलिए
जित्थे वसण सारे अन्ने।
ना कोइ साडी जात पछाणें
ते न कोई सानूं मन्ने।।
फिर और क्या करूंगा? फिर कहूंगाः संत महाराज, चल बुल्लिया, चल ओथे चलिए, जित्थे वसण सारे अन्ने! एक संत ही समझेंगे इस भाषा को। ना कोई साडी जात पछाणें, ते न कोई सानूं मन्ने। जब बहुत मेला भर जाए यहां--कुंभ का मेला भर जाए--तो मैं संत को लेकर नदारद! आखिर बरदाश्त की भी एक सीमा होती है न! ऐसी हालत बुल्लेशाह की हो गई थी। बहुत भक्त इकट्ठे हो गए। और वह जमाना
और ढंग का था। मैं तो व्यवस्था से रहता हूं, मुझे भक्त कितने ही इकट्ठे हो जाएं, ऐसी नौबत आएगी नहीं। इतने पहरेदार हैं कि घुसोगे कहां? मैं तो अकेला ही रहता हूं। यहां कितनी ही भीड़ इकट्ठी हो जाए, मुझे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये पहरेदार तुम सोचते हो किसलिए बिठा रखे हैं! ये इसीलिए बिठा रखे हैं कि यह हालत न आए अपनी कि जो बुल्लेशाह की हो गई थी।
मैं जबलपुर में कोई दस-पंद्रह वर्ष रहा। वहां एक फकीर थे--मग्गा बाबा। बहुत प्यारे आदमी थे। कोई उनका नाम नहीं जानता था। मग्गा बाबा इसलिए कि हाथ में हमेशा एक मग्गा रखते थे। उसी में खाना, उसी में पानी पी लेते, उसी में कोई पैसा डाल जाता--बस, मग्गा ही उनका सब कुछ था, इसलिए मग्गा बाबा। कोई उनका नाम जानता नहीं था, नाम उन्होंने किसी को कभी बताया नहीं, लोग पूछते तो वे मग्गा बता देते। तो लोग कहने लगे--मग्गा बाबा। अब और क्या करो!
उनको लोग सोने ही नहीं देते थे। दिनभर उनकी सेवा होती रहे! और रात भी। क्योंकि बेचारे रहते थे एक दुकान के छप्पर में। दुकान जब बंद हो जाती तो रात वे छप्पर के बाहर सोते। और रात में रिक्शा वालों की जमात वहां इकट्ठी हो जाती। अब रिक्शा वालों को कोई काम नहीं रात में। जब ट्रेन आएगी तब वे लोग ले जाएंगे, लाएंगे, बाकी समय खाली बैठे। तो मग्गा बाबा के पास आग भी जलती थी--सर्दी की रात हो तो आग जलती--और मग्गा बाबा लेटे हैं और रिक्शा वाले उनके पैर दबा रहे हैं; कोई उनका माथा दबा रहा है, कोई उनका हाथ दबा रहा है। कभी-कभी मैं उनके पास जाता था। जहां तक मेरा खयाल है उन्होंने मेरे सिवाय शायद ही किसी से कभी कोई बात की!
कभी न होता कोई तो वे मुझसे कहते कि मुझे बचाओ! ये दुष्ट सोने ही नहीं देते। रात भी पांव दबा रहे हैं! आखिर मैं सोऊं कब? और एकाध नहीं, चार-छह आदमी इकट्ठे लगे हैं। वे अपनी सेवा कर रहे हैं। और मग्गा बाबा सीधे-सादे आदमी, वे ना भी न कहें, हां भी न कहें--न किसी से कभी उन्होंने कहा कि सेवा करो, न कभी किसी से कहा मत करो।
रिक्शे वाले उनके खास भक्त थे, क्योंकि रातभर सेवा करते थे। तो हर किसी रिक्शे में बैठकर वे चल देते थे। जहां रिक्शा जा रहा हो। क्योंकि उन्हें कहीं जाना नहीं। अब वहां पहुंच ही चुके थे जहां पहुंचना है। किसी भी रिक्शे में बैठ जाते। और रिक्शा वाला बहुत ही आनंदित हो जाता कि सौभाग्य है उसका! कि बाबा, कहां चलना है? बाबा कहते कि कहीं भी। सो रिक्शा वाला चक्कर लगाता--जहां भी! और लोग देखते कि बाबा जा रहे हैं, तो कोई उनके मग्गा में पैसा डाल जाता, कोई रुपए डाल जाता, कोई कुछ डाल जाता। और लोग उनके मग्गे में से रुपए निकाल भी लेते, तो भी कोई अड़चन नहीं थी। कोई एकाध आदमी आकर पूरा मग्गा खाली करके ले जाता, तो वे अपना मग्गा खाली कर लेने देते। कोई भर जाता तो भर लेने देते। उनकी चोरी हो गई कई दफा--कई दफा! कोई रिक्शा वाला उनको चुराकर ही ले जाता। दूसरे गांव ही ले गया। महीने-पंद्रह दिन बाद पता चलता कि मग्गा बाबा को चुराकर ले गया है कोई। फिर उनको दूसरे

गांव से लाया जाता। और आखिरी बार वे जो चोरी गए सो आज तक पता नहीं है कि क्या हुआ।
जहां तक मेरा खयाल है, वे आखिरी बार चोरी नहीं गए--
चल बुल्लिया चल ओथे चलिए
जित्थे वसण सारे अन्ने।
ना कोई साडी जात पछाणें
ते न कोई सानूं मन्ने।।
घबड़ा गए होंगे बहुत! सो भाग खड़े हुए थे। कि बुल्ले, चल, वहां चलें जहां
सब अंधे बसते हों और जहां न कोई हमारी जात पहचाने और न ही हमें माने।
मुझे तो ऐसी अड़चन नहीं आ सकती। क्योंकि कितनी ही भीड़ हो, मैं अकेला हूं। यहां सारी दुनिया इकट्ठी हो जाए तो मैं अकेला हूं।
लेकिन बुल्लेशाह के ढंग तो ऐसे नहीं थे। मेरा तो अपने जीवन का ढंग है। मैं कोई लकीर का फकीर नहीं हूं। मैं फकीर भी हूं तो अपने ढंग का हूं, बादशाही ढंग का फकीर हूं। मेरे कमरे में कोई आवाज नहीं पहुंचती। और नए कम्यून में तो जो कमरा बना रहा हूं वह बिल्कुल साउंड-प्रूफ है। क्योंकि नए कम्यून में तो आने वाली है संख्या भारी। इत्ते जो लोग भड़का रहा हूं सारी दुनिया में! फिर इसका फल तो भोगना ही पड़ेगा! अरे, कर्म जो करता है उसको फल भोगना ही पड़ता है। इसमें तरह-तरह के पागल, तरह-तरह के झक्की, तरह-तरह के लोग आएंगे। तो साउंड-प्रूफ ही होना चाहिए रूम।
और वातानुकूलित, तो मुझे कोई फिक्र नहीं पड़ती--कौन सी सर्दी है, कौन सी गर्मी है, वर्षा है, क्या हो रहा है बाहर की दुनिया में, मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं तो अपने तापमान पर ही जीता हूं। और अपने शून्य में और अपनी मस्ती में। सुबह-सांझ निकल आता हूं जरा देखने कि क्या हाल हैं! अंधे कहां तक पहुंचे? किसी ने आंखें खोलीं कि नहीं खोलीं? या कितनों की आंखें खुल गईं? जिनकी नहीं खुली हैं उनको कहता हूंः खोलो; जिनकी खुल गई हैं उनसे कहता हूंः बंद करो। क्योंकि जो लोग अभी अंधे हैं, खुली आंख आदमी को देख लें, नाराज हो जाएं, आंखें फोड़ दें। एकदम गुस्से में आ जाते हैं।
अभी यूं हुआ न कि विमलकीर्ति संबोधि को उपलब्ध हुआ। मेरे पिता की मृत्यु हुई और वे संबोधि को उपलब्ध हुए तो बहुत अड़चन नहीं हुई। क्योंकि लोगों को लगा मेरे पिता थे, होना ही चाहिए! लेकिन विमलकीर्ति संबोधि को उपलब्ध हो गया, तो कई को अड़चन हो गई। इसलिए तो मर जाने के बाद मैं घोषणा करता हूं, कि अब क्या बिगाड़ लोगे बिचारे का! अब तो गया ही। यहां और भी बहुत से लोग हैं जो जिंदा हैं और संबोधि को उपलब्ध हो गए हैं, मगर मैं उनके नाम न लूंगा। मैं चुप्पी साधे रहूंगा। कहूंगा कि बच्चू, पहले मरो, फिर बताऊंगा। क्योंकि नहीं तो दूसरे मार डालेंगे। समझ लो कि मैं कह दूं अजित सरस्वती संबोधि को उपलब्ध हो गए, अभी पिटाई हो गई! अभी धक्कम धक्की हो जाएगी। हजार तरह के लोग प्रश्न खड़े करने लगेंगे कि तुम कैसे हुए उपलब्ध? मराठी मानस और संबोधि को उपलब्ध हो गए! अरे, किसी और को चराना! किसी और को बनाना! कभी नहीं हो सकते! हजार प्रश्न खड़े करेंगे। हजार झंझटें खड़ी करेंगे। हजार परीक्षाएं लेंगे कि आदमी घबड़ाकर ही कह दे कि भइया, माफ करो, मैं नहीं हुआ! इसलिए जब कोई मर जाता है तब मैं घोषणा करता हूं कि यह आदमी संबोधि को उपलब्ध हुआ था या नहीं। जैसे विमलकीर्ति। अब विमलकीर्ति के साथ जो लोग और काम में लगे थे--विमलकीर्ति कभी बगीचे में काम करता था, तो बगीचे में जितने माली हैं काम करने वाले, वे सब कहते हैं कि यह नहीं हो सकता। अरे, अभी हम नहीं हुए! अब विमलकीर्ति गार्ड का काम करता था। तो विमलकीर्ति की जहां समाधि बनी है वहां एक गार्ड है, वह गार्ड भी मानने को राजी नहीं कि विमलकीर्ति संबोधि को उपलब्ध हो गए। वह भी गार्ड किसी को समझा रहा था कि भगवान ने मजाक किया है। अरे, अभी मैं नहीं हुआ! मैं विमलकीर्ति से पुराना गार्ड! और किसी ने कभी सुना है कि कोई जर्मन और संबोधि को उपलब्ध हो गया हो! मजाक किया है।
लेकिन अगर विमलकीर्ति जिंदा होता तो ये लोग मुसीबत खड़ी कर देते। ये मानते ही न। ये भरोसा ही नहीं करते।

आदमी बहुत अजीब है। बुल्लेशाह जैसे लोग मुश्किल में पड़ गए हैं। और खुद पड़े अपने हाथ से! किसी ने कहा न था। मगर मुसीबतें हैं ऐसी जिनसे बचा नहीं जा सकता। जब आनंद उपलब्ध होता है तो बांटना ही पड़ता है। अनिवार्यरूपेण। जब बोध उपलब्ध होता है तो बुद्धुओं को जगाना ही पड़ता है। अनिवार्यरूपेण। एक ऐसी भीतरी बेचैनी हो जाती है। जब सब तरह से चैन आ जाता है तो एक नई बेचैनी आ जाती है कि जगाओ! जैसे बादल जल से भरा हो तो बरसे बिना नहीं रह सकता। और दीया जले तो रोशनी फैलेगी। और फूल खिले तो गंध उड़ेगी। ऐसे बुल्लेशाह मुश्किल में पड़ गए होंगे, योग शुक्ला! बहुत भीड़-भाड़ हो गई होगी।
बुल्लेशाह सचमुच शहंशाह थे। उन थोड़े से अदभुत लोगों में एक हैं जिन्होंने जाना है। तो खबर तो भेज दी। जब खबर भेजी तब तो पता नहीं था, जब पाती लिखी तब तो पता नहीं था कि कितने लोग आ जाएंगे, फिर भीड़-भाड़ आ गई। और मेरे जैसी व्यवस्था भी नहीं थी। तो लोग दबा रहे होंगे पैर। कोई फूलमाला पहना रहा होगा। एक से एक अजीब लोग हैं!
फ्रांस में ऐसा रिवाज था कि अगर कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो जाए
तो उसका कपड़ा फाड़ लो। कपड़े का फाड़कर ताबीज बना लो। उससे बड़ा पुण्य होता है।
तो अब तुम सोच लो! जो आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, अगर उसे अपने कपड़े बचाने हों तो चुप ही रहे। नहीं तो कपड़े छिन जाते, आदमी नंगा घर लौटता। और कपड़े ही नहीं छिनते, छीना-झपटी ऐसी हो जाती कि खरोंचें लग जातीं, खून निकल जाता।
एक से एक धारणाएं हैं लोगों की।
एक गांव में--मैंने सुना कहानी है--कि काशी का एक पंडित आया। और काशी
के ज्ञान से भरा हुआ आया था। गांव में भी एक मूर्ख था, जो पंडित के न आने तक पंडित समझा जाता था। अरे, गांव का ही मूर्ख था, मगर गांव के लोग उससे भी और पहुंचे हुए थे, और भी बड़े महामूर्ख थे। तो उनके बीच तो वह अंधों में काना राजा था। काशी के पंडित ने उसको चुनौती दी कि तू मुझे हरा, नहीं तो पंडित नहीं, मेरा शिष्य हो।
विवाद हुआ। बेचारा गांव का गरीब क्या करे! मगर मूर्ख भी साधारण न था,
वह असाधारण मूर्ख था। पंडित ने बड़ी ज्ञान की बातें कीं। उससे पूछा, कितने वेद होते हैं? उसे यह भी पता नहीं था, सीधा-सादा आदमी गांव का, उसने कहा-- कितने वेद! तुम्हीं बताओ कितने होते हैं? तो पंडित ने कहा, चार होते हैं। उस गांव के पंडित ने गांव के लोगों से कहा, सुन लो, क्या कह रहे हैं! चार होते हैं! ... और उनकी पत्नियां कितनी?
काशी का पंडित तो बहुत घबड़ाया कि यह तो हद हो गई, वेद की और पत्नियां! मगर गांव के लोग बहुत प्रसन्न हुए कि मारा, फैसला कर दिया, खतम कर दिया! कि एक झटके में उतार दिया! और गांव के मूर्ख ने कहा, जब चार वेद हैं तो चार वेदनियां भी होंगी कि नहीं होंगी? और उनके बाल-बच्चे कितने जी?
काशी का पंडित तो चौंका ही रह गया, उसकी तो कुछ समझ में ही न आया। और गांव के मूर्ख ने एक और तरकीब निकाली कि यह आदमी बड़ा पहुंचा हुआ है, देखो कैसा चुपचाप बैठा है! इसके दाढ़ी के बाल खींच लो! जिसके हाथ में बाल पड़ जाएगा उसका मोक्ष निश्चित है।
काशी के पंडित की जो गति हुई वह तुम सोच सकते हो। दाढ़ी के ही नहीं, सिर
के भी बाल नहीं बचे। सारे बाल ही खतम हो गए, जो कुटाई-पिटाई हुई। बहुत चीखा- पुकारा-चिल्लाया, मगर कौन सुने? अरे, सब अपनी में पड़े थे कि अपने को जितने मिल जाएं! और फिर अपने ही लिए थोड़े ही, बच्चों के लिए, पत्नी के लिए, मोहल्ले वालों के लिए, मेहमानों के लिए, रिश्तेदारों के लिए, खींच लो! रोता हुआ काशी का पंडित वापस लौटा।
बुल्लेशाह मुश्किल में पड़ गए होंगे। तो उन्होंने कहा कि अब तो ऐसा करें कि उस जगह चलें जहां सब अंधे हों और जहां हमारी जात कोई न पहचाने। जहां साधु को कोई पहचान न सके। जहां बुद्ध को कोई पहचान न सके। ऐसी जात। और न कोई हमें माने। जब पहचानेगा ही नहीं तो मानेगा क्या?
शुक्ला! प्रीतिकर वचन हैः

चल बुल्लिया चल ओथे चलिए जित्थे वसण सारे अन्ने।
ना कोई साडी जात पछाणें
ते न कोई सानूं मन्ने।।
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
आठवां प्रवचन

एक अभिनव धर्म चाहिए

पहला प्रश्नः ओशो, आपने महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर के उत्तर में कहा कि सात आसमानों के पार कोई व्यक्तिवाची ईश्वर नहीं है जो तुम्हारी प्रार्थना सुने; सब प्रार्थनाएं अनसुनी रह जाती हैं। महाकवि ने अनगिनत प्रार्थना के गीत गाए; पता नहीं, किसी ने उन्हें सुना या नहीं; लेकिन मुझे लगता है, उनकी एक प्रार्थना जरूर सुनी गई। प्रार्थना इस प्रकार हैः
आमि हब ना तापस, हब ना, हब ना, येमनी बलुन यिनि।
आमि हब ना तापस निश्चय यदि ना मेले तपस्विनी।
आमि करेछि कठिन पन, यदि ना मिले बकुलवन
यदि मनेर मतन मन ना पाई जिनि
तबे हब ना तापस, हब ना, यदि ना पाइ से तपस्विनी।
आमि त्यजिब ना घर, हब ना बाहिर उदासीन संन्यासी यदि घरेर बाहिरे ना हासे केहइ भुवन-भुलानो हासि। यदि ना उड़े नीलांचन मधुर बातासे विचंचल,
यदि ना बाजे कांकन मन रिनिक-झिनि--
आमि हब ना तापस, हब ना, यदि ना पाइगो तपस्विनी।
आमि हब ना तापस, तोमार शपथ, यदि से तपेर बले
कोनो नूतन भुवन न पारि गड़िते नूतन हृदय-तले
यदि जागाए वीणार तार कारो टुटिया मरम-द्वार,
कोनो नूतन आंखिर ठार ना लइ चिनि
आमि हब ना तापस, हब ना, हब ना, ना पेले तपस्विनी।
"मैं तापस नहीं होऊंगा, नहीं होऊंगा, चाहे जो जैसा कहे, यदि तपस्विनी न मिले। मैंने कठिन प्रतिज्ञा की है, यदि बकुलवन न मिले, यदि मन जैसा मनमीत नहीं मिले; यदि उस तपस्विनी को न पाऊं; मैं तापस नहीं होऊंगा, नहीं होऊंगा, मैं घर नहीं छोडूंगा, बाहर नहीं जाऊंगा। उदासीन संन्यासी नहीं बनूंगा; यदि घर के बाहर कोई पृथ्वी को लुभाने वाली हंसी न हंसे, यदि मीठी हवा में अत्यंत चंचल नीलांचल न उड़े, यदि कंकण और नूपुर रुनझुन-रुनझुन न बजें। मैं तापस नहीं होऊंगा, नहीं होऊंगा, यदि उस तपस्विनी को न पाऊं।
तुम्हारी सौगंध, मैं तापस नहीं होऊंगा, यदि उस तपस्या के बल से किसी नूतन हृदय में कोई नूतन भवन की सृष्टि न कर सका; यदि वीणा के तार झंकृत कर किसी के मर्म-द्वार को तोड़कर किसी नूतन आंखों के इशारे को न पहचान लूं। मैं तपस्विनी को पाए बिना तापस नहीं होऊंगा, नहीं होऊंगा, नहीं होऊंगा।" ओशो, क्या आपका नव-संन्यास महाकवि की प्रार्थना की पूर्ति नहीं है?

निखिलानंद, प्रार्थना और ध्यान के भेद को समझ सको, इसलिए मैंने कहा कि कोई प्रार्थना कभी सुनी नहीं जाती है; कोई सुनने वाला नहीं है। प्रार्थना है बहिर्मुखी; दूसरे पर निर्भर; उस परमात्मा के लिए पुकार है, जो कहीं बाहर है। और परमात्मा बाहर नहीं है, परमात्मा भीतर है; तुम्हारा स्वभाव है; तुम्हारा स्वरूप है।
पुकारने की कोई जरूरत नहीं है। चुप हो जाना है, मौन हो जाना है, निर्विचार होना है। ध्यान है अंतर्यात्रा; प्रार्थना है बहिर्यात्रा। प्रार्थना पर आधारित धर्म सांसारिक है। ध्यान पर आधारित धर्म ही संसार का अतिक्रमण करता है।
इसलिए मैंने कहा कि रवींद्रनाथ की प्रार्थनाएं बहिर्मुखी हैं। प्रार्थनाएं बहिर्मुखी ही हो सकती हैं। निवेदन है किसी से, जिसका कोई पता नहीं। कविता प्यारी हो सकती है, लेकिन कविता और सत्य जरूरी नहीं कि एक हों।
इस बात पर जोर देने के लिए कि तुम अंतर्मुखी होओ; मत पुकारो; मत चिल्लाओ। मत बजाओ घंटियां मंदिरों की। मत पढ़ो नमाजें मस्जिदों में। ये गुरुद्वारों में चल रहे तुम्हारे जपुजी के पाठ कोरे आकाश में खो जाते

हैं। यह सब उधेड़बुन व्यर्थ है। चुप होओ। चुप्पी साधो। ऐसी चुप्पी कि जहां विचार की एक तरंग भी न हो। जहां भाव की जरा सी भंगिमा भी न बचे। जहां चित्त के आकाश में कोई मेघ न घिरे हों। जहां प्रकाश ही प्रकाश रह जाए।
उस अनाच्छादित, विचारमुक्त, विकल्पशून्य चित्त की दशा का नाम ध्यान है। उस ध्यान में बिना मांगे सब मिल जाता है।
और प्रार्थना में मांग ही मांग है, मिलता कुछ भी नहीं। हां, कभी ऐसा हो सकता है कि तुम अंधेरे में तीर चलाते रहो और कोई तीर लग जाए। लग जाए तो तीर, नहीं लगे तो तुक्का!
तो कभी ऐसा हो सकता है, संयोगवशात कि तुम्हारी प्रार्थना पूरी हो जाए,
तो उससे भ्रांति में मत पड़ जाना। इस जगत में बहुत सी बातें संयोग से हो जाती हैं। लेकिन संयोग को तुम जीवन के सत्य मत समझ लेना।
मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में यह उल्लेख है कि लेटा था अपनी बगिया में। बांसों का छप्पर बनाकर कद्दुओं की बेल उसने चढ़ाई थी। बड़े-बड़े कद्दू बांसों के उस छप्पर पर लटक रहे थे। पास ही अंगूरों की बेल भी चढ़ी थी। और नसरुद्दीन कुछ दार्शनिक भावदशा में रहा होगा। सोचने लगा कि परमात्मा भी कैसा है! अरे, जब बनाना ही था, तो अंगूर बनाता कद्दुओं जैसे; मजा आ जाता। एक अंगूर काफी होता। तो अंगूर तो बनाए छोटे-छोटे और कद्दू बना दिए इतने बड़े- बड़े! न कोई तुक है, न कोई संगति।
और तभी संयोग की बात, हवा का एक झोंका आया और एक कद्दू उसके सिर पर गिर पड़ा! सिर फूटते-फूटते बचा। उसने कहा, क्षमा कर। माफ कर। अरे, मैं कौन हूं, जो तुझे सुझाव दूं! ठीक ही कहा है ज्ञानियों ने कि कर्म का ही फल नहीं मिलता; विचार का भी फल मिलता है। मैं सिर्फ विचार ही कर रहा था और तत्क्षण फल पाया। इससे कर्म का सिद्धांत सिद्ध होता है।
एक दिन गुजर रहा था रास्ते से। मस्जिद के पास से निकला। अजान देने मौलवी मस्जिद की मीनार पर चढ़ा था। पैर फिसल गया और गिरा; नसरुद्दीन के ऊपर गिरा। नसरुद्दीन की हड्डियां टूट गईं। अस्पताल में पड़े-पड़े नसरुद्दीन सोचता था कि कर्म का सिद्धांत सही तो है; उस आदमी ने कोई पाप किए होंगे, इसलिए गिरा गुंबज से। लेकिन उसको तो चोट भी न आई और मेरी हड्डी-पसलियां टूट गईं! यह कैसा कर्म का सिद्धांत कि कोई करे और कोई और भरे? कोई और बोए-- कोई और काटे!
लेकिन पहली बात भी संयोग थी और दूसरी बात भी संयोग है। आदमी समझा लेता
है बहुत तरकीबों से अपने को।
सदियों-सदियों से गरीब को हम समझाते रहे हैं कि तुम गरीब हो, क्योंकि पिछले जन्मों में पाप किए। इससे गरीब को एक सांत्वना मिली है। इससे बगावत नहीं हो सकी। भारत में जहां कि कर्म का सिद्धांत बहुत प्रभावी रहा, बगावत मर ही गई। क्रांति की अंगार ही खो गई। राख ही राख रह गई।
कोई कौम बाईस सौ सालों तक गुलाम रहती है? वर्ष-दो वर्ष कोई किसी को जबर्दस्ती गुलाम रख ले। लेकिन बाईस सौ वर्ष! कोई जबर्दस्ती किसी को गुलाम रख सके! और छोटी-छोटी कौमें आईं जिनकी कोई सामर्थ्य न थी। और भारत हारता ही गया, हारता ही गया? इसके पीछ वही कर्म का सिद्धांत काम कर रहा है।
भारत हर चीज के लिए राजी हो गया। जब गरीबी के लिए राजी हो गया, तो उसने सोचा कि गुलामी भी भाग्य का फल है। जो होना है; वह होकर रहेगा। हमारे किए क्या होता है। परमात्मा कर रहा है। इससे गरीब को सांत्वना तो मिल गई, लेकिन गरीबी न मिटी। गरीबी बढ़ती चली गई। यह सांत्वना जहर सिद्ध हुई। इससे अमीर को भी लाभ हुआ। अमीर को सुरक्षा मिल गई। इसलिए अमीर प्रवचन करवाता है; पंडितों से सत्यनारायण की कथा करवाता है। मंदिर बनवाता है।
जहां यही सिद्धांत ठोंक-ठोंककर लोगों के मनों में भरे जाते हैं, यही संस्कार, क्योंकि अमीर को सुरक्षा मिल गई। उसके सारे पाप ढंक गए। उलटी बात हो गईः पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण उसे धन मिला है। गरीब अपनी गरीबी को स्वीकार कर लिया; अमीर को उसकी अमीरी के लिए बल मिल गए। लेकिन यह सब संयोग की ही बात थी।
लेकिन हमारा एक आग्रह है कि हम संयोग को नहीं मानना चाहते। हम हर संयोग को सिद्धांत में ढाल लेना चाहते हैं। जब तक सिद्धांत न ढाल लें, तब

तक हमें बेचैनी बनी रहती है। फिर हम उलटे-सीधे करके किसी भी तरह अपने को समझाते रहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन गुजर रहा था एक बगीचे के पास से। आम पक गए थे। और आम्रकुंज की गंध हवाओं में तैर रही थी। नहीं रोक सका अपने को। बहुत सम्हाला; बहुत संयम साधा। बहुत याद किया कि कसमें खा चुका हूं कि चोरी नहीं करूंगा, मगर फिर होशियार आदमी, समझाया कि अरे, आम तो परमात्मा ने लगाए, ये किसी के हैं? सबै भूमि गोपाल की! रस उसने भरा। फल उसने लगाए। और कोई कमबख्त समझ रहा है--इसके हैं!
घुस गया तोड़ लिए आम। डालियां झुकी आ रही थीं, यूं आमों का बोझ था--ऐसे
पक गए थे; ऐसे रस भरे थे! अपनी पूरी झोली भर ली। और तभी मालिक आ गया और उसने कहा कि मुल्ला, शर्म नहीं आती। और तुम्हें लोग धार्मिक समझते हैं! तुम मुल्ला हो और चोरी कर रहे हो?
नसरुद्दीन ने कहा, कौन कहता है मैं चोरी कर रहा हूं? अरे, हवा का इतने जोर का झोंका आया; मैं तो रास्ते से निकल रहा था कि हवा के झोंके ने, अंधड़ ने मुझे उठाकर बगीचे में फेंक दिया!
दोनों हाथों में आम थे। तो उसने कहा, चलो, यह भी ठीक। मालिक ने कहा, यह
भी मान लेते हैं कि हवा के अंधड़ ने तुम्हें बगीचे में फेंक दिया। चलो यह भी ठीक। जंचती तो बात नहीं कि इतने हवा का अंधड़! कभी देखा नहीं इस इलाके में। पर ठीक है, तुम कहते हो तो माने लेता हूं। तुम्हारे हाथों में आम कैसे आए? ये भी हवा के अंधड़ ने ला दिए?
उसने कहा कि नहीं, इनका कारण दूसरा है। मैं किसी तरह आम के झाड़ को पकड़कर अपने को रोका। अंधड़ मुझे उड़ाए ही लिए जा रहा था। सो ये आम टूट गए। इसलिए तुम मेरे हाथों में आम देख रहे हो।
उसने कहा, चलो, यह भी ठीक। मगर इस झोले में इतने आम कैसे आए?
नसरुद्दीन ने कहा, मैं कोई दार्शनिक हूं! यही तो मैं सोच रहा हूं कि इस झोले में इतने आम कैसे आए? वही तुम पूछते हो। अब हर प्रश्न का कोई उत्तर है मेरे पास। तुम मुझसे यही पूछने लगो कि आम के भीतर गुठली कैसे आई, जब आम के भीतर गुठली कैसे आई, इसका कोई उत्तर नहीं; तो आम कैसे झोले के भीतर आए, इसका भी उत्तर क्या जरूरी है?
आदमी अपने को समझा लेने के लिए तरकीबें खोज लेता है।
तुम पूछते हो निखिलानंद, कि मैंने कहा, "कोई प्रार्थना नहीं सुनी गई, लेकिन यह एक प्रार्थना तो सुनी गई!"
नहीं, यह भी संयोग है। संयोग की ही बात है। यह प्रीतिकर है। मैं इन वचनों से राजी हूं।
मैं भी कहूंगाः
आमि हब ना तापस, हब ना, हब ना, येमना बलुन यिनि।
आमि हब ना तापस निश्चय यदि ना मेले तपस्विनी।
आमि करेछि कठिन पन, यदि ना मिले बकुलवन
यदि मनेर मतन मन ना पाइ जिनि
तबे हब ना तापस, हब ना, यदि ना पाइ से तपस्विनी।
तपश्चर्या के रवींद्रनाथ विरोध में थे। और उनकी इस बात से मैं राजी हूं, सहमत हूं। समग्रतया सहमत हूं। तपश्चर्या एक तरह की आत्महिंसा है। तापस कुछ पूजनीय बात नहीं। तापस रुग्णचित्त है। जो अपने को सता रहा है, वह स्वाभाविक नहीं है। क्योंकि स्वभाव अपने को सताना नहीं चाहता। स्वभाव तो स्वस्फुरणा से आनंद की खोज करता है--दुख की नहीं। हमारे हृदय के गहनतम में, अंतरतम में आकांक्षा है, अभीप्सा है आनंद की। और आनंद की अभीप्सा कैसे अपने को सताएगी!
लेकिन क्यों लोग अपने को सताते हैं? लोग दो ही तरह की बातें जानते हैंः या तो दूसरों को सताएंगे और या अपने को सताएंगे। धार्मिक जो लोग होते हैं, वे दूसरों को तो सता नहीं सकते। वह तो हुआ पाप! तो अब करें क्या? सताना तो है। किसी और को तो पाते नहीं। खुद को सताते हैं। किसी दूसरे को तो मार नहीं सकते।

ईसाइयों का एक संप्रदाय है, जो खुद को कोड़ों से मारता है। यह तापस है। सुबह से उठकर उस संप्रदाय को मानने वाले साधु-संत पहला जो काम करते हैं, शरीर को नग्न करके कोड़ों से पिटाई करते हैं। अपने ही हाथ से लहूलुहान कर लेते हैं। और भीड़ देखने इकट्ठी होती है। भीड़ भी हिंसक है। क्योंकि जो हिंसा देखने इकट्ठा होता है, जो दूसरे को अपने को मारते देखने के लिए सुबह-सुबह उठकर आता है--हजार काम छोड़कर आता है--इसका मन भी रुग्ण है।
और ये अपने को पीटते हुए लोग, अपने को लहूलुहान करते हुए लोग, उसे लगते हैं महात्मा हैं! स्वभावतः क्योंकि वह सोचता हैः यह मैं तो कभी कर नहीं सकता। जो मैं नहीं कर सकता, कोई दूसरा कर रहा है। निश्चित ही मुझसे बहुत आगे है। दूसरा सिर्फ मूर्खता कर रहा है। दूसरा जघन्य अपराध कर रहा है। क्योंकि तुम किसी और को सताओ तो दूसरा आदमी बचाव भी कर सकता है। तुम अपनी ही गरीब देह को सताने लगो तो बचाव का भी कोई उपाय नहीं।
और देह परमात्मा की देन है; प्रकृति की देन है; समग्र की देन है। इसका अपमान अस्तित्व का अपमान है। और क्या होगा कोड़े मारने से? शरीर को लहूलुहान भी कर लिया और कांटों पर भी लिटा लिया, और धूप में भी खड़े रहे, और अपने को अंगारों पर भी चला लिया, तो भी क्या होगा? क्या तुम सोचते हो, इससे कुछ जीवन की ज्योति जग जाएगी? कोई बुद्धत्व का प्रकाश हो जाएगा?
बुद्ध ने छह वर्षों तक अपने को सताया और कुछ भी न पाया। और जब थक गए, सता-सताकर थक गए, तो एक दिन उन्होंने अपने को सताना छोड़ दिया। और जिस दिन अपने को सताना छोड़ा... । दूसरों को सताना तो पहले ही छोड़ चुके थे जिस दिन महल छोड़ा था, जिस दिन राज-पाट छोड़ा था; फिर अपने को सताने में लग गए थे। एक संध्या अपने को सताना भी छोड़ दिया। देख लियाः वह भी व्यर्थ, यह भी व्यर्थ। और उस रात वह महाक्रांति घट गई। जब सुबह आंख खुलीं, तो वही व्यक्ति नहीं थे वे, जो सोए थे। एक नव-जन्म हुआ था। एक निर्मल प्रज्ञा का आविर्भाव हुआ था। धूम्ररहित शिखा भीतर जल रही थी। सब मौन था। सब आनंद था। चारों तरफ अमृत की वर्षा हो रही थी।
बुद्ध ने कहा हैः जो कर-करके न पा सका, वह न करके पा लिया। जो श्रम से न
पा सका, वह विश्राम से पा लिया। चमत्कारों का चमत्कार!
नहीं कोई अपने को सताने से कुछ पाता है। इसलिए तपश्चर्या का मैं पक्षपाती नहीं हूं। तपश्चर्या भोग की अति है। कुछ लोग हैं, जो खूब खा-खाकर अपने को परेशान किए हुए हैं। फिर कुछ लोग हैं, ये वही लोग हैं वस्तुतः जो पहले खूब खा-खाकर अपने को परेशान किए थे। फिर ये उपवास कर-करके अपने को परेशान करते हैं। एक परेशानी से दूसरी परेशानी पर चले जाते हैं।
मन अतियों पर चलता है। एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। काश, बीच में ठहर जाए, तो मुक्ति हो जाए!
तो न तो मैं कहता हूं भोग, और न मैं कहता हूं तप। मैं कहता हूंः मध्य में ठहर जाओ। बुद्ध ने तो अपने मार्ग को ही मज्झिम निकाय कहा। वही है स्वर्ण-रेखा--ठीक मध्य में रुक जाना। तुम मध्य में रुके, जैसे कोई घड़ी के पेंडुलम को रोक दे मध्य में, तो घड़ी रुक जाती है। तुम मध्य में रुके कि मन रुका। मन भी घड़ी है; वस्तुतः घड़ी है। क्योंकि मन समय है। जहां मन ठहरा--तुम समयातीत हुए, कालातीत हुए।
बुद्ध के पास एक राजकुमार, श्रोण ने दीक्षा ली थी। महाभोगी था। और जो होना था वही हुआ। जैसे ही उसने दीक्षा ली, अपने को सताना शुरू कर दिया। बौद्ध भिक्षु दिन में एक बार भोजन करते हैं। वह दो दिन में एक बार भोजन करता था। खुद बुद्ध और उनके भिक्षु रास्ते पर चलते; वह रास्ते के किनारे कांटों में, पत्थरों में चलता। उसके पैर लहूलुहान हो गए। उसकी देह सुंदर थी--राजकुमार था--कोमल थी; फूल जैसी थी। छह महीने में ही सूखकर कांटा हो गई; काला पड़ गया। उसके परिवार के लोग आते थे, पहचान भी नहीं पाते थे। इतना विकृत, कुरूप हो गया। सारे पैरों में घाव हो गए। पेट पीठ से लग गया।
बुद्ध ने एक सांझ उसके झोपड़े पर जाकर कहा कि श्रोण तुझसे मुझे एक बात पूछनी है। मैंने सुना है कि तू जब राजकुमार था, तो तू वीणा बजाने में बहुत कुशल था।

श्रोण ने कहा, यह बात सच है। वीणा में मुझे बड़ा रस था। मैंने अपने जीवन
का अधिक समय वीणा को साधने में ही बिताया था। मैं दीवाना था। घंटों वीणा का अभ्यास करता था। और निश्चित मैंने वीणा के बजाने में गहरी कुशलता पा ली थी। दूर-दूर तक मेरा नाम हो गया था। लेकिन आपको यह पूछने की क्या जरूरत पड़ी?
बुद्ध ने कहा, मैं इसलिए पूछने आया हूं, कि मैंने कभी वीणा बजाई नहीं।
तू मुझे समझा सकेगा। अगर वीणा के तार बहुत ढीले हों, तो संगीत पैदा होता है या नहीं?
श्रोण ने कहा, आप भी कैसी बात करते हैं! वीणा बजाना या वीणा को जानना जरूरी नहीं; कोई भी कह सकता है कि वीणा के तार अगर बहुत ढीले होंगे, तो संगीत पैदा नहीं होगा।
तो बुद्ध ने पूछा, अगर तार बहुत कसे हों, तब संगीत पैदा होता है या नहीं?
श्रोण ने कहा, बहुत कसे हों तो टूट जाएंगे। बहुत ढीले हों तो उनमें टंकार न हो सकेगी। बहुत कसे हों तो छुओगे तो टूट जाएंगे।
तो बुद्ध ने कहा, फिर वीणा के तार कैसे होने चाहिए श्रोण?
श्रोण ने कहा, मध्य में होने चाहिए। ठीक बीच में होने चाहिए। न बहुत कसे, न बहुत ढीले; न कसे, न ढीले। उस ठीक मध्य की रेखा पर होने चाहिए, तभी उनसे संगीत पैदा होता है।
बुद्ध ने कहा, मैं तुझसे इतना ही कहने आया हूं, जो वीणा का नियम है, वही जीवन का नियम भी है। ठीक मध्य में होने से ही जीवन-संगीत पैदा होता है। यह तू अति छोड़। पहले तू भोग की अति में था। शराब पीता था। देर रात वेश्याओं को नृत्य करवाता था। दिन में सोता था। अब तू ठीक उलटा करने लगा।
न तो मैं भोग के पक्ष में हूं, न तप के। पश्चिम भोगी है, पूरब तपस्वी है। और दोनों कष्ट पा रहे हैं। पश्चिम भोग से पीड़ित है, और पूरब तपश्चर्या से पीड़ित है।
एक अभिनव धर्म चाहिए। एक नई धार्मिकता चाहिए, जो न पूरब की हो, न पश्चिम की हो। ये अतियां हैं। जो न भोग की हो, न तप की हो। जो बुद्धिमत्ता की हो। जो मध्य में ठहर जाने की हो। जो जीवन-वीणा से संगीत उठाने में सफल हो सके।
इसलिए रवींद्रनाथ की बात प्यारी है। लेकिन रवींद्रनाथ की बात है काव्य की बात। उन्होंने स्वयं कभी जीवन में ध्यान नहीं साधा। करते तो रहे प्रार्थनाएं ही। यह भी प्रार्थना है।
और उनकी प्रार्थना के कारण मेरा नव-संन्यास पैदा नहीं हो गया है। उनकी प्रार्थना से मेरे नव-संन्यास का क्या संबंध? उन्होंने प्रार्थना न की होती, तो भी यह होता। वे न भी होते, तो भी यह होता।
मेरे संन्यास की धारणा का जन्म तो, मनुष्य जाति का पूरा अतीत इतिहास कारण है, इस जन्म के पीछे। क्योंकि मैंने देखा कि दोनों तरह से लोग परेशान हुए। भौतिकवादी परेशान हुए, अध्यात्मवादी परेशान हुए। अब हमें एक ऐसी जीवन-दृष्टि चाहिए, जो समग्र हो। जो भौतिकवादी हो--और अध्यात्मवादी हो। या यूं कहो कि न भौतिकवादी हो, न अध्यात्मवादी हो। जो वादी न हो, विवादी न हो। जैसे शरीर और आत्मा के बीच एक तालमेल है, एक छंदबद्धता है; ऐसी ही एक छंदबंद्धता भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच होनी चाहिए। उस छंदबद्धता में ही अनुभव होगा जीवन के सत्य का।
रवींद्रनाथ कवि हैं--ध्यानी नहीं। काश, ध्यानी होते तो यह जो उन्होंने कहा है, यह प्यारा गीत ही न होता, इस गीत के पीछे अनुभव के प्राण भी होते। कवि अक्सर ऋषियों जैसी बातें कह देते हैं। मगर बस, जैसी! कभी-कभी ऋषियों से भी बेहतर बातें कह देते हैं। कहने में कुशल होते हैं, मगर अनुभव कुछ भी नहीं होता। इसलिए किसी की कविता पढ़कर कवि से मिलने मत चले जाना। क्योंकि कविता में हो सकता है आसमान छुआ हो, और कवि को देखो तो बहुत हैरान हो जाओ--कि बैठा हो किसी शराबघर में और शराब पी रहा हो। कि कहीं बैठा जुआ खेल रहा हो। कि कहीं रास्ते पर खड़ा किसी से झगड़ा कर रहा हो, और एक से एक

वजनी गालियां दे रहा हो। और तुम सोच ही न पाओ कि इसकी कविता में और इसकी गालियों में कोई भी तो संबंध नहीं, कोई भी तो तुक नहीं।
कवि किन्हीं-किन्हीं क्षणों में जीवन के झरोखे को खुला पाता है। ऋषि
के झरोखे सदा के लिए खुल गए हैं। कवि के लिए कविता अकस्मात है। रवींद्रनाथ तक के लिए अकस्मात थी। इसलिए जब कविता उतरती थी रवींद्रनाथ पर, तो वे द्वार-दरवाजे बंद कर लेते थे। कभी-कभी दिन-दो दिन--एक बार तो तीन दिन तक निकले ही नहीं। और उन्होंने कह रखा था परिवार के लोगों को कि कोई मुझे बाधा न दे। भूख भूल जाते थे; प्यास भूल जाते थे--जब तक कि पूरी कविता न उतर आए। जब तक जो उनके ऊपर मंडराता था, पूरा-पूरा रूप न ले ले, रूपायित न हो जाए--तब तक भूख, प्यास, नींद सब भूल जाते थे। लेकिन यह कभी-कभी होता था। और जब होता था, तब अकस्मात होता था।
ऋषि के लिए अकस्मात नहीं होता। उसके हाथ में ध्यान की कुंजी होती है। यूं नहीं कि कभी झरोखा अपने आप खुल गया हवा के झोंके में तो देख लिया सूरज को। बल्कि यूं कि चाबी अपने हाथ में है, जब चाहा तब खोला और देखा।
ऋषि मालिक होता है अपना। कवि अपना मालिक नहीं होता। इसलिए कवि को अक्सर लगता है कि कोई चीज ऊपर से उतर रही है। ऋषि को लगता है--मेरे भीतर से आ रही है; मेरे अंतरतम से आ रही है।
रवींद्रनाथ के वचन प्यारे हैं। काश, इन वचनों के पीछे उनके ध्यान का अनुभव भी होता! तो इन वचनों का बल बहुत हो जाता। अभी ये वचन सुंदर हैं, मगर कागज के फूल हैं। तब ये असली फूल होते; इनकी जड़ें भी होतीं। इनमें जड़ें नहीं हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मुझे याद है कि आपने कई बार अपने प्रवचनों में रवींद्रनाथ के काव्य की तुलना उपनिषदों से की है। और उनके सौंदर्य-बोध की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। लेकिन कल आपने उन्हें लकीर के फकीर कहा, तो विश्वास नहीं हुआ कि महाकवि रवींद्रनाथ सच में ही लकीर के फकीर हैं! उनकी ईश्वर की धारणा एक काव्य प्रतीक भी तो हो सकती है? ओशो, निवेदन है कि आप इसे स्पष्ट करें।

निर्मल घोष, मैंने जब उनके सौंदर्य-बोध की भूरि-भूरि प्रशंसा की, और उनके काव्य की तुलना उपनिषदों से की, तब तुमने न सोचा कि उनकी ये सारी बातें एक काव्य-प्रतीक भी हो सकती हैं! तब निर्मल घोष--तुम बंगाली हो-- तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिली होगी। तुम्हें प्यारा लगा होगा कि अहा, धन्य बंगला देश! बंग भूमि। सोनार भूमि! तब तुम आह्लादित हुए होओगे। तुम्हारे अहंकार को रस आया होगा।
और ऐसा तुम्हारे ही साथ नहीं है। यहां इन पिछले पच्चीस वर्षों का मेरा यह निरंतर अनुभव है। मैं कृष्ण पर बोला। सैकड़ों प्रवचन कृष्ण पर दिए। कृष्ण की गीता पर बोला; इतना बोला जितना संभवतः मनुष्य जाति के इतिहास में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं बोला। लोकमान्य तिलक का "गीता-रहस्य" गीता पर लिखी गई सबसे बड़ी टीका है। लेकिन मैं जितना बोला हूं, उसका केवल बारहवां हिस्सा है। लेकिन किसी हिंदू ने मुझसे यह न कहा कि आप तो हिंदू नहीं हैं, आप कृष्ण की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? आपको कृष्ण की प्रशंसा का कोई हक नहीं!
और जब मैंने जरा सी कृष्ण की आलोचना की, तो मेरे पास सैकड़ों पत्र आने शुरू हो गए कि आप हिंदू नहीं हैं। आपको क्या हक है--कृष्ण की आलोचना करने का!
यह दोहरा मापदंड देखते हो। प्रशंसा करूं तो हक है। और आलोचना करूं तो
हक नहीं? अगर प्रशंसा का हक है तो आलोचना का भी हक है।
मैं महावीर पर बोला; इतना बोला, जितना जैनियों के इतिहास में कोई महावीर पर नहीं बोला है। उनके जीवन पर बोला; उनकी वाणी पर बोला। और जैन गदगद हुए। भूरि-भूरि प्रशंसा की। और जब मैंने महावीर की जरा सी आलोचना की कि तत्क्षण आग लग गई!--कि मुझे क्या हक है?--मैं उनकी धार्मिक भावनाओं को

चोट पहुंचा रहा हूं। और इतने दिन तक मैंने धार्मिक भावनाओं पर फूल चढ़ाए तो एकाध कांटा चुभाने का हक भी मुझे है।
जब गुलाबों की बात करूं तो ठीक। और जब गुलाबों में लगे कांटों की बात करूं, तो बस, गलत! जब गुलाबों की बात करूं तो सत्य; और जब कांटों की बात करूं तो काव्य-प्रतीक!
यह अनुभव मुझे बहुत बार हुआ है। अमरीका से एक महिला ने--पैंसठ वर्ष की उम्र की महिला--जीसस पर मेरी किताबें पढ़ीं। जब जीसस पर मैंने बोला, तो जीसस के मानने वालों ने न मालूम अलग-अलग देशों से कितनी प्रशंसा की। इस वृद्धा ने मुझे लिखा कि आपको पढ़कर ही मैं जीसस को पहली दफा समझ पाई। मानती तो थी, मगर समझती नहीं थी। आपने मुझमें जीसस की समझ पैदा की है, इसलिए मैं संन्यासिनी होना चाहती हूं। वह संन्यासिनी हो गई। और तीन वर्ष तक निरंतर मुझे किताबें भेजती थी--पत्रिकाएं भेजती थी। और हमेशा कुछ न कुछ भेंट भेजती थी। सतत यह क्रम जारी रहा। और एक प्रवचन में मैंने सिर्फ मजाक किया-- और मजाक भी झूठ नहीं है।
एक बहुत प्राचीन जीसस के संबंध में लिखी गई किताब में यह उल्लेख है कि जीसस बहुत कुरूप थे। कुरूप ही नहीं थे, कुबड़े भी थे। कुबड़े ही नहीं थे, उनकी ऊंचाई भी केवल चार फीट पांच इंच थी। कुरूप; चार फीट पांच इंच ऊंचाई; और कुबड़े! और मैंने तो सिर्फ इसका उल्लेख किया था और इस बात के लिए उल्लेख किया था कि इस बात की संभावना है; क्योंकि और भी ऐसे उल्लेख पुराने शास्त्रों में हैं यहूदियों के कि जीसस अति कुरूप थे। लेकिन उनके भक्तों ने, उनके प्रेमियों ने कहीं भी उनकी इस कुरूपता का कोई वर्णन नहीं किया है।
तो मैंने यह कहा था कि भक्त जिस भाव से देखता है, जिस हार्दिकता से देखता है, वहां शरीर तो खो जाता है। वहां दिखाई पड़ती है भीतर की अंतरात्मा। वहां भीतर की ज्योति दिखाई पड़ती है। उसकी नजर दीए पर नहीं टिकती; ज्योति पर टिकती है। और जो भक्त नहीं है, जो श्रद्धा से देखते नहीं हैं, उनको ज्योति तो दिखाई पड़ती नहीं; सिर्फ दीया दिखाई पड़ता है। तो मिट्टी का दीया है, कि सोने का दीया है--इस पर ही उनकी नजर अटकती है।
तो जो विरोधी थे, उन्होंने तो केवल जीसस की देह देखी। और जो प्रेमी थे, उन्होंने जीसस की आत्मा देखी। इस बात का उल्लेख किया था। मगर बुढ़िया एकदम नाराज हो गई। उसने फौरन माला वापस भेज दी। और बड़ी नाराजगी का पत्र लिखा कि आपने ऐसी बात कही कि मेरी धार्मिक भावना को बहुत चोट पहुंच गई। हृदय बिल्कुल खंड-खंड कर डाला।
लोग--उनकी धारणाओं का समर्थन हो--उनकी धारणाएं ठीक हों या गलत, इससे कुछ सवाल नहीं; उनकी हैं, इसलिए उनका समर्थन होना चाहिए, तो बड़े प्रसन्न होते हैं।
अब जब मैंने कहा था कि रवींद्रनाथ की सौंदर्य-संवेदनशीलता अद्वितीय है, तब निर्मल घोष, तुमने जरा भी प्रश्न न उठाया कि आप यह कैसे कहते हैं! इसको तुमने मान ही लिया। और जब मैंने उनके वचनों की तुलना उपनषिदों से की, तब तुमने यह न कहा कि कहां उपनिषद, और कहां रवींद्रनाथ! आप कैसी तुलना कर रहे हैं?
लेकिन कल जब मैंने यह कहा कि वे लकीर के फकीर हैं, बस, चोट लग गई। तो तुम मुझे समझाने बैठे हो कि उनकी ईश्वर की धारणा एक काव्य-प्रतीक भी तो हो सकती है! तुम अपने मन को समझा रहे हो कि काव्य-प्रतीक ही होगी। रवींद्रनाथ की धारणा काव्य-प्रतीक नहीं है। रवींद्रनाथ मानते थे कि ईश्वर है--और व्यक्तिवाची ईश्वर है। आस्तिक थे--नास्तिक नहीं थे; बुद्ध जैसे नहीं थे; महावीर जैसे नहीं थे। और फिर भी मैं कहता हूं कि उनके वचन बहुत बार उपनिषदों के करीब आ जाते हैं। वही ऊंचाई ले लेते हैं। मगर यह ऊंचाई अचेतन है।
और उनका सौंदर्य-बोध निश्चित ही बहुत गहन है; बहुत प्रगाढ़ है। लेकिन
वह भी अचेतन है और मूर्च्छित है। यह ध्यान और साक्षी से नहीं जन्मा है।
इसलिए लकीर का फकीर होने वाली बात भी मौजूद है।

अचेतन आदमी में सब होता है--गलत भी होता है, सही भी होता है। मगर दोनों
के संबंध में वह अचेतन होता है। चेतन व्यक्ति में सिर्फ सही ही बचता है। क्योंकि चेतना के साथ गलत का कोई संबंध नहीं जुड़ता। जैसे अंधेरे घर में कभी-कभी तुम टटोलकर दरवाजे से निकल भी जाते हो। और कभी-कभी दीवालों से भी टकरा जाते हो। और कभी फर्नीचर पर गिर पड़ते हो। और कभी टटोलने में दीवाल से तस्वीर गिर जाती है। और कभी तुम बिल्कुल ठीक निकल भी जाते हो।
शराबी भी कितना ही शराब पीए हो, डगमगाता-डगमगाता अपने घर पहुंच जाता है। शराबी भी इतना पहचान लेता है कि अपना घर आ गया। शराबी भी अपने खीसे से चाबी निकालकर ताला खोलने की कोशिश करता है। ताले को भी पहचान लेता है। खोलना मुश्किल होता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन खोल रहा था चाबी से। खुल नहीं रहा था। खुले कैसे! हाथ कंप रहा था। पुलिस वाला रास्ते पर खड़ा हुआ देख रहा था। हंसी भी आई, दया भी आई। पास आकर उसने कहा कि नसरुद्दीन, चाबी मुझे दो, मैं खोले देता हूं।
नसरुद्दीन ने कहा कि भई, चाबी तुम्हें देने की जरूरत नहीं। बेहोश हूं, मगर इतना बेहोश नहीं कि चाबी किसी और को दे दूं। तुम्हें अगर सहायता ही करनी है, तो इतना कृपा करके करो कि ताले को जरा पकड़ लो कि ताला हिले न।
यह सब बात ही चल रही थी कि पत्नी की नींद खुल गई। उसने ऊपर दूसरी मंजिल
की खिड़की से कहा कि क्या चाबी खो गई? तो दूसरी चाबी फेंक दूं!
नसरुद्दीन ने कहा, चाबी तो नहीं खोई, लेकिन अगर तू दूसरा ताला फेंक दे,
तो काम हल हो जाए। यह ताला इतना हिल रहा है। सच पूछो तो पूरा मकान हिल रहा है। यह पुलिस वाला भी बेचारा क्या रोक पाएगा! इतना बड़ा मकान, इसको कैसे सम्हालेगा? तू दूसरा ही ताला फेंक दे तो मैं खोल दूं अभी।
बेहोश है आदमी, लेकिन फिर भी अपने घर पहुंच गया है। बेहोश है, फिर भी ताली दूसरे को नहीं देनी है, यह भी जानता है। बेहोश है, फिर भी ताली से ही ताला खोल रहा है, कोई सिगरेट से नहीं खोल रहा है। बेहोश इतना है कि ताला भी हिल रहा है, मकान भी हिल रहा है, मगर फिर भी कुछ होश भी है।
ऐसी ही हमारी मूर्च्छित दशा है। रवींद्रनाथ ने सुंदर गीत गाए हैं, वे
भी मूर्च्छा में। और जिस परमात्मा की वे बात कर रहे हैं, वह भी अनुभव की बात नहीं, वह भी मूर्च्छा है। लेकिन अगर कोई मूर्च्छा में भी दरवाजे से निकल जाए, तो मैं इतना तो कहूंगा कि निकला दरवाजे से! यूं तो चमत्कार है। होश वाला निकले, यह कोई चमत्कार है?
उपनिषद के ऋषियों ने सुंदर गीत गाए, यह कोई चमत्कार नहीं। चमत्कार यह
है कि रवींद्रनाथ, खलील जिब्रान जैसे लोग, जिनको कोई समाधि का अनुभव नहीं है, इन्होंने भी उपनिषद की ऊंचाइयां छू लीं। यह चमत्कार है। यह काव्य-प्रतिभा है।
कवियों ने कैसी-कैसी ऊंचाइयां पा लीं! मगर उनके जीवन में उन ऊंचाइयों
के लिए कोई आधार नहीं है। उनकी सारी ऊंचाइयां बस, विचार की उड़ानें हैं। विचार की उड़ान में वे कुशल हैं। कल्पना में, स्वप्न को देखने में, सपनों को सजाने में, सजावट देने में, निखार देने में उनकी प्रतिभा का कोई मुकाबला नहीं है।
निर्मल घोष, मैं तो गुलाबों की बात भी करूंगा और कांटों की भी।
अभी कुछ दिनों पहले बंबई से पारसियों के एक धर्मगुरु अपने पचास शिष्यों को लेकर यहां आए थे। मुझसे उन्होंने प्रार्थनाएं भी की, पत्र भी लिखा कि आप जरथुस्त्र पर कभी बोलें। निश्चित ही जरथुस्त्र में मुझे लगाव है, बहुत लगाव है। कभी उन पर बोला नहीं हूं। जानकर नहीं बोला हूं। जरथुस्त्र की जीवन-दृष्टि मुझसे मेल खाती है। वे जीवन के पोषक हैं। वे जीवन को जीने के पक्षपाती हैं। त्याग के नहीं, पलायन के नहीं, भगोड़ेपन के नहीं।
लेकिन जरथुस्त्र के नाम से जो वचन संगृहीत किए गए हैं, वे बहुत साधारण हैं। इसलिए कभी बोला नहीं। क्योंकि बोलूंगा तो झंझट खड़ी होगी। वे वचन साधारण हैं। अब जो भी जिम्मेवार रहा हो उन वचनों के लिए। शायद जरथुस्त्र

ही कहने में बहुत कुशल न रहे हों। कोई आवश्यक नहीं है कि समाधिस्थ व्यक्ति वक्तव्य देने में कुशल हो।
जब गैर-समाधिस्थ व्यक्ति सुंदर वक्तव्य दे सकता है, तो यह भी खयाल रहे, समाधिस्थ व्यक्ति भी हो सकता है सुंदर वक्तव्य न दे पाए। जब गैर-समाधिस्थ व्यक्ति इतनी गहन बातें कह सकता है, जिनका उसे कुछ पता नहीं है, तो यह भी खयाल रखनाः समाधिस्थ व्यक्ति भी हो सकता है, जिसे पता है मगर कह न पाए। बहुत बार गूंगे का गुड़ हो जाता है सत्य। अनुभव में तो आ जाता है, लेकिन कहने के लिए वाणी नहीं होती।
तो जरथुस्त्र के वचनों में बहुत मूल्य नहीं है, इसलिए मैं टालता रहा हूं यह बात। जरथुस्त्र की जीवन-दृष्टि अगर विहंगम रूप से देखी जाए, तो मैं उसका पक्षपाती हूं। लेकिन अगर एक-एक वचन का मैं विश्लेषण करने गया, तो मेरी मजबूरी है; कांटे आएंगे, तो मैं क्या करूंगा! इसलिए टालता रहा हूं। लेकिन उन्होंने खुद प्रार्थना की थी और अभी किसी और प्रसंग में मैंने
यह बात कह दी कि गुरु तो कुछ कहता है, शिष्य कुछ समझ लेते हैं। जैसे जरथुस्त्र ने तो भीतर की अग्नि की बात कही थी, और शिष्यों ने समझ लिया-- बाहर अग्नि की पूजा करनी है। और अभी भी पूजा जारी है! अगियारियां बन गई हैं। अग्नि के मंदिर बन गए हैं। पारसी अग्नि की पूजा कर रहे हैं।
इतना ही कहा था, और मेरे पास पत्र आने शुरू हो गए हैं कि आप कौन हैं? आप पारसी नहीं हैं। आपको हमारे धर्म में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है? प्रशंसा करने का अधिकार है! मैं प्रशंसा करूं, तो अधिकार है! और अभी मैंने कोई हस्तक्षेप भी नहीं किया। और मुझसे प्रार्थना करने पारसी आए थे कि जरथुस्त्र पर बोलूं। और अभी इतनी सी बात कही कि भीतर की अग्नि की जगह बाहर की अग्नि मत पूजो। भीतर की अग्नि खोजो। इसमें तो कोई निंदा भी नहीं हुई, कोई आलोचना भी नहीं हुई। और जरथुस्त्र की तो कोई आलोचना नहीं।
मैंने कहा, गुरु ने कुछ कहा, शिष्यों ने कुछ समझा। गुरु सदा भीतर की बात कहते हैं, और शिष्य सदा बाहर की बात समझ लेते हैं और यह होने वाला है, क्योंकि शिष्य की दृष्टि बहिर्गामी है और गुरु की दृष्टि अंतर्गामी है। इसलिए रूपांतर हो जाएगा। होने ही वाला है।
मगर बड़े क्रोध से भरे हुए पत्र आ गए हैं। अखबारों में पत्र छप गए हैं;
कि मुझे कोई हक नहीं है। एक सज्जन ने तो यह भी लिखा है कि अगर हमें भीतर की अग्नि भी उपलब्ध हो जाए, तो भी हम बाहर की अग्नि की पूजा नहीं छोड़ेंगे। मैंने कहा, कौन तुमसे कह रहा है, तुम छोड़ो। मैंने किसी से कहा भी नहीं
कि कोई छोड़े। जिसको जो करना हो, करे। यहां तो एक से एक पागल हैं। कोई गऊमाता की पूजा कर रहे हैं, कोई हनुमान जी की पूजा कर रहे हैं! तो कोई हर्जा नहीं है; अग्नि की पूजा करो। कोई पीपल देवी की पूजा कर रहे हैं! और पत्थरों पर फूल चढ़ाए जा रहे हैं, तो अग्नि कुछ बुरी नहीं; सुंदर प्रतीक है।
लेकिन ये सज्जन कह रहे हैं कि हमें भीतर की अग्नि का अनुभव भी हो जाए
तो भी हम बाहर की पूजा बंद नहीं करेंगे। और आप हैं कौन? आप पारसी नहीं हैं। जैसे कि मेरा पारसी होना जरूरी है! जरथुस्त्र के संबंध में कुछ कहने
को मेरा पारसी होना जरूरी है? बुद्ध के संबंध में कुछ कहने के लिए मेरा बौद्ध होना जरूरी है? ये क्या ठेकेदारियां बना रखी हैं? मेरा जरथुस्त्र से प्रेम है--कहूंगा। जो मुझे कहना है--कहूंगा।
मुझे रवींद्रनाथ से भी प्रेम है। लेकिन प्रेम का मतलब यह नहीं होता, जैसा कि तुम समझते हो निर्मल घोष, और सारे लोग समझते हैं कि प्रेम अंधा होता है। मेरा प्रेम आंख वाला है। जब फूल होगा तो फूल कहूंगा; जब कांटा होगा, तो कांटा कहूंगा।
शायरों, राहिबों, सूफियों ने कहा--ऐ नशेबों के कीड़ो खुदा दूर है
आदमी का खुदा तक पहुंचना गलत--आदमी का तसव्वुर भी मजबूर है
शायरों ने कहा, पादरियों ने कहा, सूफियों ने कहा कि ऐ नीचाइयों के कीड़ो, कहां तुम--और कहां खुदा! बहुत दूर है और आदमी खुदा तक पहुंचे, यह बात ही गलत। अरे, आदमी की कल्पना भी नहीं पहुंच सकती वहां तक।
शायरों, राहिबों, सूफियों ने कहा--ऐ नशेबों के कीड़ो खुदा दूर है
आदमी का खुदा तक पहुंचना गलत--आदमी का तसव्वुर भी मजबूर है

मैंने फूलों से, शबनम से, तारों से पूछा, तो सब झेंप कर मुस्कराने लगे मैं तो समझा था इख्फाए-हक सिर्फ खल्लाक दानिशवरों ही का दस्तूर है मैंने एहसास के अनगिनत तार छेड़े मगर कोई नग्मा न पैदा हुआ
यानी इन्सां का वजदान भी इस अल्वही धुंदलके की शिद्दत से मसहूर है आखिरे-कार जब आदमियत से पूछा तो ये देखकर दम-बखुद रह गया
आदमी का खुदा तक पहुंचना गलत!--आदमी से अभी आदमी दूर है
आदमी आदमी को समझने लगा तो खुदा खुद जमीं पर उतर आएगा
आदमी का खुदा तक पहुंचना तो क्या! आदमी तो खुदाई पे छा जाएगा
ईश्वर की बात ही व्यर्थ है। आदमी को ही समझ लो, आदमियत को ही समझ लो। आदमी के भीतर छिपे हुए राज को पढ़ लो। यह आदमी के हृदय में जो कुरान और वेद और बाइबिल है, थोड़ी सी इसकी समझ आ जाए, थोड़ी यह लिखावट पहचान में आ जाए, तो किसी खुदा को खोजने की जरूरत नहीं है आदमी खुद खुदा है।
आदमी का खुदा तक पहुंचना तो क्या! आदमी तो खुदाई पे छा जाएगा
मैं मनुष्य की भगवत्ता में भरोसा करता हूं, और किसी भगवान में नहीं। इसलिए मैंने कहा कि रवींद्रनाथ जिस भगवान से प्रार्थनाएं कर रहे हैं, वैसा भगवान कहीं भी नहीं है।
वे प्रार्थनाएं सूने आकाश में खो जाती हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो, आपकी चोटें इतनी चोटीली होती जा रही हैं कि हमें चिंता होती है। एक बार आप पर छुरे का हमला भी तो हो चुका है! खुदा न करे और ऐसे खतरे आएं! आखिर बात क्या है? आखिर इतनी तेज गोलन्दाजी क्यों?

मोहम्मद कृष्ण,
मैंने कहा न; दो ही दिन पहले कहाः
न उनकीरीतिनई, न अपनीप्रीतनई!
न उनकी हार नई, न अपनी जीत नई!
छुरा फेंकना तो सिर्फ हार गए इसका प्रतीक है। जब तुम किसी आदमी को जवाब न दे सको; जब तुम्हारी बुद्धि पराजित हो जाए, तभी लोग छुरे फेंकने को तैयार होते हैं।
सुकरात को जहर दिया, इसलिए कि एथेंस के पंडित और पुरोहित और तथाकथित ज्ञानी सुकरात को उत्तर देने में असमर्थ हो गए। अब एक ही उपाय था कि इसका गला ही घोंट दो। लेकिन क्या सुकरात का गला घोंटने से गला घुटता है? क्या सत्य का गला घोंटने से गला घुटता है? सत्य तो जीए चला जाता है। सुकरात मर गया हो, लेकिन सुकरात ने जिस सत्य की ज्योति को जलाया था, उसे तो नहीं बुझाया जा सकता।
जब जेरूसलम के पादरी और पुरोहित, पंडित, धर्मशास्त्री हारने लगे जीसस से; जवाब न बन पड़े उनसे--तो जीसस को सूली दी। सरमद का गला काटा। किसने काटा? उन लोगों ने काटा, जिनके पास इतनी प्रतिभा न थी कि सरमद का मुकाबला करते। मोहम्मद कृष्ण, मुझ पर जो छुरा फेंका गया, वह इस बात का प्रतीक है कि
अब साफ होने लगा कि लोगों के पास जवाब नहीं है। जब लोग मार-काट पर उतरने लगें, तो समझ लेना कि हार चुके। अब अपनी पराजय को स्वीकार कर रहे हैं।
और तुम कहते हो, "खुदा न करे और ऐसे खतरे आएं!"
किस खुदा की बात कर रहे हो? फिर तुमने वही बात छेड़ दी! तो क्या तुम सोचते हो, यह खुदा ने किया था, यह जो छुरा फेंका गया? पहले यह तो सोचो कि खुदा का... फिर बड़ी झंझट हो जाएगी। फिर खुदा ने सुकरात को जहर पिलवाया! फिर खुदा ने जीसस को सूली लगवाई! फिर खुदा ने सरमद का गला काटा! अगर खुदा ये काम करवा रहा हो, तो ही सोचा जा सकता है--खुदा न करे, और ऐसे खतरे आएं!
कोई खुदा नहीं है। और खतरे आएंगे। तुम मुझ पर छोड़ो। खुदा पर मत छोड़ो।
जब तक मैं मौजूद हूं, खतरे आएंगे। क्या खाक खुदा करेगा। खुदा लाख उपाय करे, मुझे जो कहना है--कहूंगा। जो जीना है--जीऊंगा। उसमें रत्तीभर समझौता नहीं कर सकता हूं। और समझौता करना उचित भी नहीं है। जिंदगी तो यूं ही चली जाने वाली है। जिंदगी को बचाने का कोई उपाय भी नहीं है। तो जो जिंदगी चली ही जाने वाली है, उसके लिए क्या समझौते करने।

मैं कोई पंद्रह-बीस वर्षों तक देश में यात्रा करता रहा। महीने में कोई बीस दिन, कभी पच्चीस दिन, बस, या तो ट्रेन पर था या हवाई जहाज पर या कार में। ऊंट से लेकर हवाई जहाज तक, जो मिल जाए--चलता ही रहा, चलता ही रहा। मेरी नानी सीधी-सादी महिला थीं। वह हमेशा मुझे, जब भी मैं यात्रा पर जाता, तो मुझसे कह देतीं कि देखो, दो बातें खयाल रखना। एक तो चलती गाड़ी में मत चढ़ना। और दूसराः गाड़ी में किसी से विवाद मत करना। तुम्हें क्या पड़ी? तुम क्यों झंझट मोल ले लेते हो। जो जिसको करना है, करने दो। जो जिसको ठीक जंचे--करे। जिसको गिरना है भूल में--गिरे। तुम क्यों झंझट में पड़ते हो? वह आखिरी तक यही बात मुझे समझाती रहीं।
एक दिन मैंने उनको कहा कि चलती गाड़ी में क्या खतरा है?
अरे, गिर जाओ, चोट लग जाए। आदमी मर तक जाते हैं चलती गाड़ी में!
और मैंने कहा, विवाद में क्या खतरा है?
विवाद में, कहा कि खतरा है। क्योंकि मैंने देखा है कि तुम जिससे विवाद करो, उसको ही क्रुद्ध कर देते हो। वह भनभना जाता है। जवाब तो उससे बनते नहीं। मार-काट पर कोई उतारू हो जाए! अरे, गुंडा हो, बदमाश हो! क्या फायदा झगड़े से?
तो मैंने उनसे कहा, बात इतनी है ना कि गाड़ी में चढ़ना, चलती गाड़ी में चढ़ना या उतरना या किसी से विवाद करना, इसमें जीवन को खतरा है।
उन्होंने कहा, हां, जीवन को खतरा है।
मैंने कहा, जीवन को वैसे ही खतरा है। क्योंकि सौ में से निन्यानबे आदमी तो खाट पर ही मरते हैं। तो खाट पर सोऊं कि न सोऊं? चलती गाड़ी, उतरती गाड़ी में तो बहुत कम लोग मरते हैं। वाद-विवाद में भी बहुत कम लोग मरते हैं। मगर खाट पर तो निन्यानबे प्रतिशत... !
उन्होंने कहा, लो, सुनो! कर दिया तुमने शुरू बकवास। तुमने विवाद शुरू
कर दिया। यही मैं समझाती हूं कि विवाद नहीं करना। अब इसका कौन उत्तर देगा? इसमें झगड़ा हो जाएगा। अब मुझे भी उत्तर नहीं सूझता। इसका क्या उत्तर! बात तो सच्ची है। बात तो तुम सच्ची कहते हो, मगर कड़वी कर देते हो।
अब यह बात तो सच्ची है कि खाट पर ही मरना पड़ता है। तो अब क्या खाट से ही बचने लगें। तो फिर जीना ही मुश्किल हो जाएगा। फिर कहां जाओगे, क्या करोगे? कहां सोओगे? कहीं तो सोओगे, कहीं तो उठोगे, कहीं तो बैठोगे। मकान के भीतर-- और मकान गिर जाए! मकान में आग लग जाए!
जिंदगी तो मोहम्मद कृष्ण, यूं ही है। आई--गई।
मुल्ला नसरुद्दीन शिष्य हो गए थे एक फकीर के। रात थी अभी। दोनों सोने
जा रहे थे। अपने-अपने बिस्तर पर लेट गए थे। फकीर ने कहा कि नसरुद्दीन जरा देख तो बाहर बरसा तो नहीं हो रही!
नसरुद्दीन ने कहा, गुरुदेव, सुख-दुख में समभाव रखना। अरे, बरसा हो कि न हो, अपने को क्या पड़ी? सब बराबर है। आप भी कैसी बातों में पड़े हैं। और आपने ही तो समझाया कि सब हालत में समभाव रखना। तो जाने की क्या जरूरत? हो रही हो तो ठीक, न हो रही हो तो ठीक।
अब गुरु क्या कहे! चुप रहा। मगर उसे बेचैनी तो लग ही रही थी। उसने कहा
कि भई, यह कोई ज्ञान की बात का समय नहीं है। मेरे कपड़े बाहर पड़े हैं। वे भीग गए, तो सुबह क्या पहनूंगा? फकीर आदमी हूं, दो ही जोड़े कपड़े हैं। तू जरा देख तो आ।
नसरुद्दीन ने कहा, मेरे जाने की कोई जरूरत नहीं। वह बिल्ली चली आ रही है। जरा आप ही उसके ऊपर हाथ फेरकर देख लो। आपके ही पास तो खड़ी है। अगर भीगी हो, तो समझना हो रही है बरसा। अगर न भीगी हो, समझना नहीं हो रही है।
गुरु अब क्या कहे! गुरु ने कहा, तू कम से कम इतना तो कर कि बिल्ली को भगा दे बाहर।
नसरुद्दीन ने कहा, गुरुदेव, इस जगत का स्वभाव ही आवागमन है। आना-जाना
तो लगा ही हुआ है। अरे, जैसी आई, वैसी चली जाएगी! जो आया, सो गया। कौन रहा है! आप भी कैसी बातें कर रहे हो आज!
गुरु को क्रोध तो बहुत आया कि इस बकवासी को क्या उत्तर देना? फिर कहा, अच्छा, कम से कम इतना तो कर कि दरवाजा बंद कर दे।

नसरुद्दीन ने कहा, गुरुदेव, तीन काम मैंने कर दिए। अब एक आप कम से कम
कर दो।
मोहम्मद कृष्ण, तुम पूछते हो, "इतनी तेज गोलन्दाजी क्यों?"
अभी तो कुछ भी नहीं है यह। यह तो शुरुआत है। तुम जैसे-जैसे तैयार हो जाओगे, वैसे-वैसे मैं भी छुरे पर धार रखता रहता हूं। तुम जितने तैयार होओगे, उतने ही निपट नग्न सत्य तुमसे कहना चाहूंगा। तुम तैयार न थे, तो इन्हीं सत्यों को मैंने थोड़ी सी शक्कर की पर्त चढ़ाकर कहा था। तुम तैयार हो गए, तो शक्कर की पर्त को गिराए जा रहा हूं।
लोग सोचते हैं कि मेरी बातों में असंगति है, वे गलती में हैं। असंगति उन्हें इसलिए दिखाई पड़ती है कि कल मैंने कुछ कहा था, आज कुछ कह रहा हूं। मेरी बातों में एक समग्र संगति है। मगर संगति को देखने के लिए सूझ चाहिए। मैं तुम्हारी तैयारी देखकर ही बोलता हूं। तुम्हारी तैयारी बढ़ती जाती है, तो मेरे बोलने का ढंग बदलता चला जाता है। फिर मुझे किन्हीं सत्यों पर चासनी चढ़ाने की कोई जरूरत नहीं। फिर वैसा ही कह दूंगा, जैसे हैं।
जब बाजार में, भीड़-भाड़ में बोल रहा था, तो निश्चित ही उस ढंग से बोल रहा था, जिस ढंग से भीड़-भाड़ समझ सकती थी। जिनके बीच बोलना हो, उनकी ही भाषा बोलनी पड़ती है।
अब बोल रहा हूं संन्यासियों के बीच। अब उनके बीच बोल रहा हूं, जो कि तैयार हैं समझने को, सुनने को। सत्य चाहे फिर कितना ही कड़वा क्यों न हो; जो निर्वस्त्र सत्य को, नग्न सत्य को समझने को राजी हैं, अब उनके बीच बोल रहा हूं। इसलिए चोट तो गहरी होती चली जाएगी। और चोट गहरी होगी, तो खतरे भी आएंगे। खुदा के किए न किए कुछ होने वाला नहीं, मोहम्मद कृष्ण! मैं ही खतरों को निमंत्रण दे रहा हूं। और निमंत्रण दिए बिना काम हो भी नहीं सकता। सिर्फ ताराजिए-गुलजार का शिकवा तो नहीं
आस्मां पर भी सितारों की कमी पाता हूं
शफके-शाम हो या सुबह की अंगड़ाई हो
सब नजारों में बहारों की कमी पाता हूं
जिस्म कहता है कि मैं हद्दे-नजर को छू लूं
जहन कहता है सहारों की कमी पाता हूं अजनबी राह से पहुंचा हूं यहां तक, लेकिन मुझको इस बज्म से मानूस न होना आया
मैं महक बनके कफस में भी पर
अफ्शां ही रहारंग बनकर मुझे महबूस न होना आयातीरगी कुल्बा-ए-दहकां की रही मद्दे-नजर हजला-ए-शाह का फानूस न होना आया
मेरी मंजिल को उफक पार बताने वाले
मैंने देखा है उफक-ता-ब-उफक कोई नहीं
एक मर्कज हो तो जंचता है तजस्सुस,
लेकिन अनगिनत दायरों में घूमती रहती है जमीं हर उफक पर उफके-नौ की सदा आती है तेरी मंजिल है बहुत दूर कहीं, और कहीं अब मुसाफिर को नए अज्मे-सफर से क्या काम अब इसी बज्म पे परचम मेरा लहराएगा
इस बियाबां में चमनजार सजाने के लिए मेरा एहसास मेरा आईना बन जाएगा
इतने तूफान उठाऊंगा कि तारीखों में
अपने ताबूत से दहकान निकल आएगा
मुंजमिद कुहरे को चटखाएगी सूरज की किरन
इन धुंदलकों के कलेजे में उतर जाएगी
साए सिमटेंगे कि जुल्मत पे कोई आंच न आए तीरगी चाहेगी लेकिन न अमां पाएगी सीना-ए-संग की हिद्दत से खिलेंगे गुलजारइतनी शिद्दत से जमाने में बहार आएगी

बहुत पतझड़ पाता हूं; वसंत चाहिए। तारों तक को उदास पाता हूं; नृत्य चाहिए। कुछ करना होगा।
इतने तूफान उठाऊंगा कि
तारीखों में अपने ताबूत से
दहकान निकल आएगा
इतने तूफान उठाने हैं कि ताबूतों में जो बंद हैं लाशें, वे भी निकल आएं। लोग मुर्दा हो गए हैं; मर चुके हैं। उनको फिर से जिंदगी देनी है। उनको फिर से जगाना है। और यह नींद कोई साधारण नींद नहीं! सदियों पुरानी नींद है। यह मौत की नींद है। तूफानों के बिना कुछ होने वाला नहीं।
मुंजमिद कुहरे को चटखाएगी सूरज की किरन
यह जमी हुई धुंध, सदियों पुरानी धुंध; इसको चटखाना है। सूरज की किरण उगानी है।
इन धुंदलकों के कलेजे में उतर जाएगी
और जब किरण इन धुंधलकों के कलेजे में उतरेगी--
साए सिमटेंगे कि जुल्मत पे कोई आंच न आए
और अंधेरा तो इनकार करेगा कि अंधेरे पर कोई आंच न आए; कि अंधेरे को कोई चोट न लगे।
साए सिमटेंगे कि जुल्मत पे कोई आंच न आए
तीरगी चाहेगी लेकिन न अमां पाएगी
और अंधेरा अपने को बचाना चाहेगा, लेकिन उसे शरण नहीं मिलने देनी है। तीरगी चाहेगी लेकिन न अमां पाएगी
सीना-ए-संग की हिद्दत से खिलेंगे गुलजार
पत्थर की छाती की गर्मी से फूल खिलाने हैं। पत्थर की छाती पर फूल खिलाने हैं। छाती आदमी की पत्थर की हो गई है। यूं कोई साधारण काम नहीं है अब।
सीना-ए-संग की हिद्दत से खिलेंगे गुलजार
इतनी शिद्दत से जमाने में बहार आएगी
कठिन तो काम है, लेकिन इसीलिए तो उसे करने में मजा भी है; एक चुनौती भी है।
सनसनाते हैं अंधेरे तो लरजते क्यों हो
हर नई सुबह की तखलीक यूं ही होती है
याद रखो, अंधेरा टूटता है, रात टूटती है, रात मरती है, तभी तो सुबह का जन्म होता है। ऐसे ही तो उत्पत्ति होती है सुबह की।
सनसनाते हैं अंधेरे तो लरजते क्यों हो
हर नई सुबह की तखलीक यूं ही होती है
रात की आंख से ढलका हुआ ताबां आंसू
दरहकीकत मेरे झूमर का गिरा मोती है
बतने-गेती में धड़कती हैं तजल्लीगाहें
जब शफक शाम की वादी में लहू बोती है
कौन जाने कि चटकने की रियाजत है
यही लोग कहते हैं कि मासूम कली सोती है
जब कली चौंक के चटकी तो गुलिस्ताने-जहां
इक अलाओ की तरह शोला-फिशां भड़केगा कद्रें बदलेंगी, यकीं बदलेंगे, तुम बदलोगे
तीरगी में भी तजल्ली का गुमां धड़केगा
मैं तो कहता हूं मशीयत भी तड़प उट्ठेगी
दस्ते-इन्सां से जब इद्राक का दर खड़केगा
नकहते-गुल में पिघल जाएगा कांटों का
वुजूदइतनी शिद्दत से मेरा अब्रे-रवां कड़केगा
इतने जोर से बिजली कड़कानी है, कि कांटे पिघल जाएं; कि कांटे पिघलें और फूलों में ढल जाएं।
नहकते-गुल में पिघल जाएगा कांटों का वुजूद

इतनी शिद्दत से मेरा अब्रे-रवां कड़केगा मैं तो कहता हूं मशीयत भी तड़प उट्ठेगीदस्ते-इन्सां से जब इद्राक का दर खड़केगा
कद्रें बदलेंगी, यकीं बदलेंगे, तुम बदलोगे
तीरगी में भी तजल्ली का गुमां धड़केगा
अंधेरे में रोशनी को जगाना है, तो मामला तो उपद्रव का है।
जब कली चौंक के चटकी तो गुलिस्ताने-जहां
इक अलाओ की तरह शोला-फिशां भड़केगा
एक अलाव बन जाएगा, जब कली चटकेगी। एक आग भड़केगी। खतरे तो आएंगे।
मेरे साथ हो मोहम्मद कृष्ण, तो खतरे की तैयारी रखो और खतरे में जीना
ही एकमात्र जीना है। खतरे में जो जीने से डरता है, वह जीना ही नहीं चाहता है। इस दुनिया में सत्य केवल उनका है, जो खतरों की चुनौती स्वीकार करते हैं। जो अनंत की यात्रा पर निकलते हैं, अज्ञात की यात्रा पर निकलते हैं। जो ज्ञात किनारों को छोड़ देते हैं और अपने शफीने को लेकर बिना किसी नक्शे के उस दूर की यात्रा पर निकल जाते हैं, जिसका कुछ ठीक पता नहीं, ठिकाना नहीं। हो भी, न भी हो। वह दूर किनारा--पता नहीं, है भी या नहीं। लेकिन उस दूर किनारे की खोज का मजा इतना है कि खोजी अगर सागर के बीच में भी डूब जाए, मझधार में भी डूब जाए, तो पहुंच जाता है और जो इसी किनारे बैठे रह जाते हैं डरे हुए, भयभीत--वे किनारे पर भी बैठे रहें, तो सड़ते रहते हैं, उनकी जिंदगी मौत है।
एक ऐसी भी जिंदगी है, जो मौत है; और एक ऐसी भी मौत है, जो जिंदगी है।
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
नौवां प्रवचन

जिन डूबे तिन ऊबरे

पहला प्रश्नः ओशो, इधर आप भगवान की जगह भगवत्ता और धर्म की जगह धार्मिकता की बात कर रहे हैं। हमें भगवत्ता और धार्मिकता को विशद रूप से समझाने की कृपा करें।

पूर्णानंद, भगवत्ता एक सत्य है; भगवान एक कल्पना। भगवत्ता एक अनुभव है; भगवान, एक प्रतीक, एक प्रतिमा। जैसे तुमने भारत माता की तस्वीरें देखी हों। कोई चाहे तो प्रेम की तस्वीर बना ले। लोगों ने प्रभात की तस्वीरें बनाई हैं, रात्रि की तस्वीरें बनाई हैं। प्रकृति को भी रूपायित करने की चेष्टा की है। काव्य की तरह वह सब ठीक, लेकिन सत्य की तरह उसका कोई मूल्य नहीं।
जीवन, अस्तित्व संज्ञाओं से नहीं बनता, क्रियाओं से बनता है। और हमारी भाषा संज्ञाओं पर जोर देती है। जैसे सच पूछो तो जब हम कहते हैं वृक्ष है, तो गलत कहते हैं। कहना चाहिए--वृक्ष हो रहा है। वृक्ष एक क्रिया है, जीवंतता है। वृक्ष कोई ऐसी चीज नहीं जो ठहरी है; गतिमान है, गत्यात्मक है, प्रवाहमान है। वृक्ष की तो छा.ेड ही दो, हम तो यह भी कहते हैं कि नदी है। यूनान के रहस्यवादी हेराक्लाइटस ने कहा हैः एक ही नदी में दुबारा उतरना संभव नहीं है। और मैं तो कहता हूंः एक ही नदी में एक बार भी उतरना संभव नहीं। क्योंकि जब तुम्हारा पैर नदी के ऊपरी तल को छूता है तब नदी भागी जा रही है। जब तुम्हारा पैर थोड़ा पानी में भीतर धंसता है तब तक ऊपर का पानी भागा जा रहा है। जब तक तुम अपने पैर से नदी के तल को छू पाते हो तब तक कितना पानी बह चुका! एक ही नदी में एक बार भी उतरना संभव नहीं है। नदी प्रवाह है। लेकिन हम नदी को एक ठहरी हुई संज्ञा बना लेते हैं। काश, हम भाषा को क्रियाओं में बदल दें तो हम सत्य के ज्यादा करीब पहुंच जाएंगे। और वही मेरी चेष्टा है।
इसलिए भगवान पर जोर नहीं देता हूं, भगवत्ता पर जोर देता हूं। भगवत्ता
का अर्थ हुआः अनुभूति, प्रवाहमान अनुभूति। भगवत्ता का अर्थ हुआः नहीं कोई पूजा करनी है, नहीं कोई प्रार्थना, नहीं किन्हीं मंदिरों में घड़ियाल बजाने हैं, न पूजा के थाल सजाने हैं, न अर्चना, न विधि-विधान, यज्ञ-हवन, वरन अपने भीतर वह जो जीवन की सतत धारा है उस धारा का अनुभव करना है। वह जो चेतना है, चैतन्य है, वह जो प्रकाश है, स्वयं के भीतर जो बोध की छिपी हुई दुनिया है, वह जो बोध का रहस्यमय संसार है, उसका साक्षात्कार करना है। उसके साक्षात्कार से जीवन सुगंध से भर जाता है। ऐसी सुगंध से जो फिर कभी चुकती नहीं। उस सुगंध का नाम भगवत्ता है।
भगवान की तरह तुम किसी व्यक्ति को कभी न मिल सकोगे। तुम अगर सोचते होओ
कि कभी मुलाकात होगी, कभी दो बातें होंगी, कि कभी जीवन का दुखड़ा रोएंगे, कथा-व्यथा कहेंगे, तो तुम गलती में हो। ऐसा भगवान न कहीं है, न कभी था। इसलिए तुम जिन प्रतिमाओं के सामने सिर झुका रहे हो वे प्रतिमाएं तुम्हारी ही ईजाद हैं। काव्य की तरह मैं उन्हें स्वीकार करता हूं, सुंदर हो सकती हैं, लेकिन तथ्य की भांति उनमें कुछ भी नहीं है। अपनी ही बनाई हुई चीजों के सामने झुकने से ज्यादा और नासमझी क्या होगी?
मैं मूर्तिभंजक हूं। और पत्थर की मूर्तियां नहीं तोड़नी हैं। पत्थर की मूर्तियां तोड़ने से क्या होगा? वे तो कलाकृतियां हैं। लेकिन तुम्हारे चित्त से जो मूर्ति की धारणा है वह जरूर खंडित करनी है।
लोग अक्सर सवाल उठाते हैं। जैसे कि जैनों ने सवाल उठाया है कि हम कैसे कृष्ण को भगवान कहें? या हिंदुओं ने सवाल उठाया है कि हम कैसे महावीर को भगवान कहें, कैसे बुद्ध को भगवान कहें? या बौद्धों ने सवाल उठाया है कि हम कैसे महावीर को भगवान कहें? क्योंकि व्यक्ति की तो सीमाएं हैं--जन्म है और मृत्यु है; बीमारी है, बुढ़ापा है; आज व्यक्ति है, कल नहीं हो जाएगा। और उनकी बात तर्कयुक्त मालूम होती है।

लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि व्यक्तियों को चाहो तो भगवान कह सकते हो--इस अर्थ में कि जिन्होंने भगवत्ता को पहचान लिया, जिन्होंने अपने भीतर की भगवत्ता को पी लिया, आकंठ जो उसमें डूब गए, उनको तुम भगवान कह सकते हो, फिर वे जीसस हों कि मोहम्मद हों, मंसूर हों कि महावीर हों, कि कबीर हों कि नानक हों--कुछ फर्क नहीं पड़ता कौन। जिसने प्रेम को जाना, वह प्रेमी और जिसने भगवत्ता को जाना, वह भगवान। लेकिन भगवत्ता असली बात है। जिसने उसे पीया, जो तृप्त हुआ, वह भगवान। ऐसा कोई भगवान नहीं है जिसने जगत को बनाया हो। ऐसा कोई भगवान नहीं है जो स्रष्टा हो। जरूर यह पूरी प्रकृति ओतप्रोत है एक अनिर्वचनीय रहस्य से; एक अपरिभाष्य, एक असीम इस पूरी प्रकृति में समाविष्ट है। वह इसके बाहर बनाने वाला नहीं है, इसके रोएं-रोएं में, इसके कण-कण में ओतप्रोत है। वही है।
भगवान से स्रष्टा की भ्रांति पैदा होती है। और भगवत्ता से सृजनात्मकता का बोध पैदा होता है।
और ऐसे ही मैं धर्म की जगह धार्मिकता की बात करता हूं। क्योंकि धर्म
से अर्थ होता हैः बंधी-बंधाई धारणाएं। धर्म से अर्थ होता हैः मान्यताएं, विश्वास। और धार्मिकता से अर्थ होता हैः चैतन्य की उज्ज्वल स्थिति; भीतर का ज्योतिर्मय हो जाना, आलोकित हो जाना। भीतर अंधेरा है अभी, यह अधर्म। या ज्यादा ठीक होः अधार्मिकता। और भीतर चेतना का प्रकाश फैल जाए, ध्यान जगे, ध्यान की लपट उठे, तो धार्मिकता।
धार्मिकता कोई सिद्धांत नहीं है, जैसे भगवत्ता कोई व्यक्ति नहीं है। सिद्धांत तो दो कौड़ी की चीजें हैं। जैसा चाहो बना लो, जैसा चाहो मिटा लो। सिद्धांत तो तर्कों का जाल है। और तर्क का मालिक आदमी है। वही तर्क सिद्ध कर सकता है, वही तर्क असिद्ध कर सकता है। तर्क का कोई भरोसा नहीं। और ऐसा कौन सा सिद्धांत है जिसका खंडन न किया जा सके? और ऐसा कौन सा विचार है जिसका समर्थन न किया जा सके? तर्क तो वेश्या है। किसी के भी साथ खड़ा कर दो। या कहो कि तर्क वकील है। वकील और वेश्याओं में बहुत भेद नहीं। वकील तो किसी के भी साथ खड़े हो जाने को तैयार है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक वकील के पास गया था। वकील ने उससे पूरा मामला सुना और सुनकर कहा कि बिल्कुल घबड़ाओ मत, हजार रुपया फीस लगेगी लेकिन मुकदमा तुम निश्चित जीतोगे। तुम्हारी जीत सुनिश्चित है। तुम्हारा मामला बिल्कुल साफ है। इसमें हार की कोई संभावना नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन उठकर खड़ा हो गया।
वकील ने पूछा, कहां जाते हो?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि जब जीत साफ ही है और हार का कोई उपाय ही नहीं, तो क्या फायदा लड़ने से?
वकील ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं। तो क्या हारने के लिए लड़ना चाहते हो? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अब तुम से क्या छिपाना? यह मैंने अपने विरोधी की तरफ से जो मामला है वह कहा था। जब जीत की बिल्कुल निश्चय ही है और हार हो ही नहीं सकती तो अब लड़ना क्या? यह मैंने विरोधी की तरफ से जो-जो दलीलें थीं वे तुम्हारे सामने रखीं। और तुम कहते हो जीत बिल्कुल सुनिश्चित है। सो विरोधी जीतेगा। अब ये हजार रुपए और किसलिए खराब करने। वकील तो सभी को कहता है कि जीतोगे। इसने अगर अपना मामला बताया होता तो
भी यही कहता। इसने किसी और का मामला बताया तो भी यही कहा। वकील का तो धंधा यही है।
तर्क का भी धंधा है। ईश्वर को सिद्ध कर सकते हो तर्क से, असिद्ध कर सकते हो। इसीलिए तो नास्तिक और आस्तिक सदियों से उलझते रहे, जूझते रहे, कोई निर्णय न हुआ।
मैं धर्म को सिद्धांत की बात नहीं मानता। सिद्धांत तो बदल जाते हैं।
नए तथ्य निकल आते हैं तो सिद्धांतों में रूपांतरण करना होता है। विज्ञान सिद्धांतों की बात है। इसलिए विज्ञान में रोज सिद्धांत बदलते हैं।
न्यूटन के समय में एक सिद्धांत था, एडीसन के समय में दूसरा हुआ, आइंस्टीन के समय में तीसरा हुआ, अब आइंस्टीन के भी आगे बात जा रही है। नए तथ्य प्रकट हो रहे हैं। यह रोज बदलाहट होती रहेगी।

धर्म सिद्धांत नहीं है।
धर्म फिर क्या है? धर्म ध्यान है, बोध है, बुद्धत्व है। इसलिए मैं धार्मिकता की बात करता हूं। चूंकि धर्म को सिद्धांत समझा गया है, इसलिए ईसाई पैदा हो गए, हिंदू पैदा हो गए, मुसलमान पैदा हो गए। अगर धर्म की जगह धार्मिकता की बात फैले तो फिर ये भेद अपने आप गिर जाएंगे। धार्मिकता कहीं हिंदू होती है कि मुसलमान होती है कि ईसाई होती है! धार्मिकता तो बस धार्मिकता होती है। स्वास्थ्य हिंदू होता है कि मुसलमान कि ईसाई? प्रेम जैन होता है, बौद्ध होता है कि सिक्ख?
जीवन, अस्तित्व इन संकीर्ण धारणाओं में नहीं बंधता। जीवन सभी संकीर्ण धारणाओं का अतिक्रमण करता है। इनके पार जाता है।
धार्मिकता धर्मों के पार है। और भगवत्ता तुम्हारे तथाकथित भगवान की धारणाओं के पार है। भगवानों की तो बहुत धारणाएं हैं। हिंदुओं का भगवान है, उसके तीन चेहरे हैं, हजार हाथ हैं। फिर ईसाइयों का भगवान है, फिर मुसलमानों का भगवान है। भगवान की तो धारणाएं जितने लोग हैं उतनी हो सकती हैं। लेकिन भगवत्ता कोई धारणा नहीं है। इसलिए भगवत्ता का कोई रूप न बन सकेगा। सौंदर्य का तुम क्या रूप बनाओगे? सुंदर सुबह की तस्वीर हो सकती है, सुंदर फूल की तस्वीर हो सकती है, सुंदर चेहरे की तस्वीर हो सकती है, लेकिन सौंदर्य की क्या तस्वीर होगी? सौंदर्य का तो सिर्फ अनुभव हो सकता है। भगवत्ता सौंदर्य है।
भगवत्ता और धार्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर भगवान को मानोगे तो धर्म को मानोगे। भगवान आया तो सिद्धांत आए, शास्त्र आए। भगवत्ता आई तो सिद्धांत गए, शास्त्र गए, धार्मिकता आई।
इसलिए पूर्णानंद, मैं निश्चित जोर दे रहा हूं भगवत्ता पर, धार्मिकता पर। काश, तुम व्यक्ति से, सिद्धांत से, शास्त्र से, शब्द से मुक्त हो सको तो तुम्हारा अपने भीतर आगमन संभव हो जाए। और जिस क्षण तुम अपने भीतर आओगे उसी क्षण पाओगे--वह महत संपदा, जो दबी पड़ी है। जिसकी तुम खोज कर रहे हो, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है और जिसकी तुम पूजा कर रहे हो, वह पूजा करने वाले में बैठा हुआ है। किसकी तुम बाहर पूजा करते हो?
लोग फिर मंदिर बदल लेते हैं। एक मंदिर से थक जाते हैं तो दूसरे मंदिर जाने लगते हैं। मंदिरों से थक गए तो मस्जिद जाने लगते हैं, मस्जिदों से थक गए तो गिरजे जाने लगते हैं, गिरजों से थक गए तो गुरुद्वारा जाने लगते हैं। लेकिन इन सारी बदलाहटों से कुछ भी न होगा। बाहर से थको तो कोई क्रांति
घट सकती है। बाहर से थको और भीतर आओ--अपने पर आओ। वहीं मुकाम है। वहीं अंतिम पड़ाव है। वहीं विराम है। वहीं विश्राम है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, समय कब बदलेगा? हम नारियों की स्थिति कब सुधरेगी?

रामप्यारी अग्रवाल,
बदलेगा बाई, जरूर बदलेगा। बदल ही रहा है। ठहरा कब था? जो बदलता है उसी
का नाम तो समय है। और जोर से बदल रहा है। थोड़ा सब्र, थोड़ा सा धीरज और। यूं भी अनादि काल से धीरज रखा है। थोड़ा सा धीरज और ऐसा बदलने वाला है--समय बदलता जा रहा है--कि सदियों का बदला इकट्ठा ले लेना।
चंद रोज और मेरी जान फकत चंद ही रोज
जुल्म की छांव में दम लेने पे मजबूर हैं हम
और कुछ देर सितम सह लें, तड़प लें, रो लें
अपने अजदाद की मीराज से माजूर हैं हम
जिस्म पर कैद है, जज्बात पे जंजीरें हैं
फिक्र महबूस है, गुफ्तार पे ताजीरें हैं अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिए जाते हैं जिंदगी क्या किसी मुफलिस की कबा है जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबंद लगे जाते हैं
लेकिन अब जुल्म की मीयाद के दिन थोड़े हैं इक जरा सब्र कि फरियाद के दिन थोड़े हैं

अर्साए-दहर की झुलसी हुई वीरानी में, हमको रहना है तो यूं ही तो नहीं रहना है अजनबी हाथों का बेनाम गिरांबार सितम
आज सहना है, हमेशा तो नहीं सहना है
ये तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम की गर्द
अपनी दोरोजा जवानी की शिकस्तों का शुमार
चांदनी रातों का बेकार दहकता हुआ दर्द
दिल की बेसूद तड़प, जिस्म की मायूस पुकार
चंद रोज और मेरी जान फकत चंद ही रोज
बस, थोड़ा ही सा सब्र। पुरुष का बनाया हुआ घर गिरा जा रहा है। खंडहर ही
रह गए हैं। यूं भी पुरुष बाहर ही बाहर मालिक रहा है। कहने को ही मालिक रहा है। दिखाने को ही मालिक रहा है। लाख उसने उपाय किए हैं मालकियत के, मगर जीता कब? जीत उसकी हुई कब? घर में घुसते ही पूंछ दबा लेता है।
और स्त्रियां होशियार हैं। कहती हैं, बाजार में चलो अकड़कर चलो, छाती फैलाकर चलो, ताल ठोंककर चलो, कोई फिक्र नहीं। बस, घर में आए कि ढंग से रहो कि ढंग से उठो, ढंग से बैठो। और बैठता है ढंग से; ढंग से उठता है।
मगर इतने से भी, रामप्यारी बाई, तू राजी नहीं है, कुछ और चाहिए! वह कुछ
और भी हो जाएगा। जल्दी ही वक्त आ जाएगा कि मर्दों को डोली में बैठकर जाना पड़े। घर का कामकाज तो करने ही लगे हैं, डोली में ही बैठना रह गया है, घूंघट ही डालना रह गया है। वह भी होगा। आखिर इतने दिन स्त्रियां डोलियों में बैठीं और घूंघट डाले, तो उसकी प्रतिक्रिया तो होने ही वाली है।
एक दिन जब म्हारी मां दफ्तर से घर आई तो बापू बोल्योः
ऐजी, थाने दीखे कोई न, छोरो जवान होरियो है।
कोई अच्छो सो घर देखके याको हाथ पीलो कर दो।
कालने कोई ऊंच-नीच हो जावेगी तो
खानदान की नाक ही कट जावेगी।
बापू जब म्हारी मां से म्हारे ब्याह की बात कर रियो थो तो मैं केंवाड़ के छेंक में से सारी बात सुन रियो थो।
सुणता ही म्हारो चेहरो शरम से लाल हो रियो थो।
पंण कई छोरिया आवें और म्हाणे रिजेक्ट करके चली जावें।
पंण एक दिन तन की सूखी, मन की रूखी,
दहेज की भूखी एक छोरी म्हाणे देखवाने आई।
मैं सर पर पल्यौ, आंखां नीची करके
उनकी तरफ पान की तश्तरी बढ़ाई।
पंण वा छोरी थी खेल खिलाई।
पान लेता वा मोरौ आंगली दबाई।
मैं दूसरा कमरा में बापू ने ले जाके सारी बात बताई।
तो बापू बोल्योः तेरी तो तबियत यहीं घबराई।
तेरी मां भी म्हारी आंगली यांई दबाई।
पंण वा छोरी म्हाने पास करी और एक दिन वो भी आयौ जब म्हारे मन में बाजोड़ी शहनाई।
म्हारे घर में भी बाजी।
फिर आवै पुत्रदान के बाद
जब विदा को नम्बर आयौ
तो बापू बोला, बेटा क्यूं रोवै है?
मैं भी कैं करा, बेटो परायो धन होवै है।
मैं डोली में बैठो-बैठो, रोतो-रोतो गारियो था-- कि मैं अबला मरदन की बस यही कहानी,
कि मुंह पर मूंछ और आंखों में पानी।
ससुराल में जब म्हारा कमरा में प्राणेश्वरी आई तो मैं ऊंके चरणों में धोक लगाई।
पंण ऊंसे पहले ही वो म्हारो घूंघट उठायो
और मुंह दिखाई में जिल्लट को शेविंग सेट थंभायो।

इम्पोर्टेड थो।
एक दिन मैं प्राणनाथिनी ने शिकायत करी--
जी, थारी चाची नी नीयत म्हाणे खराब नजर आवे है।
वह बिना खांसा ही म्हार कमरा में घुस आवे है।
कालने मैं आइयां-वाइवां बैठे होऊं तो के होवैगो?
मैं मर्दां की तो एक इज्जत ही है,
यांई लुट जावैगी तो कैने मुंह दिखावैगो?
मत घबड़ा, रामप्यारी बाई, समय बदल रहा है, जोर से बदल रहा है। सदियों- सदियों की तकलीफ है, बस जरा सब्र और। बाई, जरा सब्र और! फकत चंद रोज। फकत चंद ही रोज।

तीसरा सवालः ओशो,
झूम बराबर झूम शराबी
झूम बराबर झूम
काली घटा है, मस्त फिजा है
जाम उठाकर चूम, चूम, चूम,
झूम बराबर झूम शराबी
क्या यही है आपका संदेश?

हिना भारती, पीवत रामरस लगी खुमारी--संदेश तो यही है। लेकिन कुछ और भी जोड़ना पड़े। शराब में ध्यान भी हो, मस्ती में होश भी हो, तो यही संदेश है। झूमो जरूर, मगर झूमना बेहोशी का भी हो सकता है, मस्ती का भी हो सकता है। झूमना मूर्च्छा भी हो सकती है, और परम बुद्धत्व भी हो सकता है। झूमना तो जरूर है पर आनंद से झूमना है। शराब तो जरूर पीनी है मगर बाहर की नहीं। बाहर की पी तो उतर जाती है। पीनी है तो फिर भीतर की पीनी। अंगूरों की ढली शराब पी तो कितनी देर काम आती है! आत्मा की ढली पीनी है। अपने भीतर ढालनी है। ध्यान दोनों ही घटनाएं एक साथ घटा देता है। शराब जैसी मस्ती और साथ ही साथ समाधि की सजगता, जागरूकता। जिसको बुद्ध ने सम्मासती कहा था, या कबीर ने और नानक ने सुरति कहा। अगर बोध भी हो और मस्ती भी हो तो काम पूरा हो गया। खुमारी का वही अर्थ है।
खुमारी बड़ा प्यारा शब्द है। खुमारी से मतलब बेहोशी नहीं है, सिर्फ बेहोशी नहीं हैः बेहोशी धन होश। खुमारी बड़ा बेबूझ शब्द है। खुमारी का मतलब हैः डोल भी रहे हैं, मगर होश खोया भी नहीं है। नाच भी रहे हैं, मगर भीतर अडिग, अकंप ध्यान का दीया भी जल रहा है। पैरों में घूंघर भी बांधे हैं, लेकिन किसी मूर्च्छा में नहीं, किसी आनंद-अतिरेक में। ऐसी अवस्था का नाम ही खुमारी है। पीवत रामरस लगी खुमारी!
हिना, जरूर पीओ! लेकिन मेरी बात गलत भी समझी जा सकती है। इसी कारण तो उमर खय्याम की बात गलत समझी गई। क्योंकि उसने शराब के प्रतीक का उपयोग किया है। सूफियों का पुराना उपयोग है। सूफी शराब से वही अर्थ लेते हैं जो खुमारी का कबीर ने लिया है।
उमर खय्याम एक सूफी फकीर है। कोई साधारण पियक्कड़ नहीं। जो भगवत्ता को
पी बैठा है, ऐसा पियक्कड़ है। कोई साधारण मद्यप नहीं, किसी बाहर के मयखाने से, किसी मयकदे से नहीं पी है, अपने ही भीतर के अजस्र स्रोत में डुबकी मारी है। अपने ही भीतर मयकदे की खोज कर ली है। लेकिन जब उमर खय्याम का अनुवाद फिट्जराल्ड ने अंग्रेजी में किया, और फिर अंग्रेजी के अनुवाद से दूसरी भाषाओं में अनुवाद हुए, तो बड़ी भ्रांति हो गई। शराब को लोगों ने शराब ही समझा। खुद फिट्जराल्ड भी गलत समझा। फिट्जराल्ड सुंदरतम अनुवाद किया हैः जहां तक काव्य का संबंध है। उमर खय्याम में उसने कुछ जोड़ दिया, घटाया नहीं; बहुत कम ऐसे अनुवाद हुए हैं जिनमें अनुवादक ने कुछ जोड़ दिया हो, घटाया न हो, मगर उमर खय्याम की बात का अर्थ खो गया। अर्थ का अनर्थ हो गया।
सूफियों के लिए साकी परमात्मा का प्रतीक है। वह जो शराब पिलाए, वह परमात्मा। जो तुम्हारी प्याली में भरता ही चला जाए; तुम पी भी न पाओ और

प्याली भरती चली जाए, भरती चली जाए, भरती चली जाए; तुम लाख पीओ और प्याली खाली न हो। साकी परमात्मा का प्रतीक है; और शराब धार्मिकता का।
हिना, उस अर्थों में पिए तो तो बात ठीक। लेकिन जैसे उमर खय्याम को गलत समझा गया, मुझको भी गलत समझा जा सकता है।
गुलों के साथअजल के पयामभीआए
बहारआईतोगुलशनमेंदामभीआए
हमीं न करसकेतजदीदे-आरजूवरना
हजारबारकिसी के पयामभीआए
चला न कामअगर्चेबजोमे-राहबरी
जनाबे खिज्रअलहइस्लामभीआए
जोतश्नाकामे-अजलथेवोतश्नाकामरहे
हजारदौर में मीनाऔरजामभीआए
बड़े-बड़ों के कदमडगमगा गए
"ताबां"राहे-हयातमें ऐसेमुकामभीआए
जीवन के इस मार्ग में ऐसे पड़ाव भी आते हैं जहां बड़े-बड़ों के पांव भी डगमगा जाते हैं। जहां भूल हो जाती है, जहां चूक हो जाती है। जहां कुछ का कुछ समझ लिया जाता है।
जोतश्नाकामे-अजलथेवोतश्नाकामरहे
और कुछ ऐसे पागल हैं जो प्रारंभ से ही प्यासे हैं और अभी भी प्यासे हैं।
जोतश्नाकामे-अजलथे वो तश्नाकामरहेहजारदौरमेंमीनाऔरजामभीआए
और ऐसा नहीं है कि मीना और जाम न आए हों। आखिर बुद्ध क्या लाए? आखिर महावीर क्या लाए? आखिर कृष्ण क्या लाए? आखिर जीसस की क्या देन है? सरमदों की और मंसूरों की क्या भेंट है?
हजारदौरमेंमीनाऔरजामभीआए
बहुत बार मदिरालय खुले और बहुत बार शराब तुम्हारे सामने पेश भी की गई, जाम भी भर दिए गए, सुराहियां भी उलटा दी गईं, मगर फिर भी कुछ नासमझी हैः जोतश्नाकामे-अजलथे वो तश्नाकामरहेहजारदौरमेंमीनाऔरजामभीआए
या तो तुम समझे ही नहीं या गलत समझे। या तो तुमने सुना ही नहीं या कुछ
का कुछ सुन लिया। भूल की पूरी संभावना है।
मैं तो यही संदेश दे रहा हूंः
हमीं न करसकेतजदीदे-आरजूवरनाहजारबारकिसी के पयामभीआए
मैं तो संदेश दे रहा हूं, रोज दे रहा हूं, लेकिन तुम्हीं अपने प्याले
को आगे नहीं बढ़ा पाते हो। तुम्हीं हिम्मत नहीं जुटा पाते हो। न मालूम कैसी-कैसी कमजोरियों में मन को उलझाए हुए हो। न मालूम कैसी-कैसी पुरानी धारणाओं में मन को अटकाए हुए हो।
छटे गुबार नजर बामे-तूर आ जाए
पिओ शराब कि चेहरे पे नूर आ जाए
उठाओ जाम बनामे-हयात बादाकशो
नजारे झूमें नजर को सुरूर आ जाए
शराबखाने में कौसर का जिक्र क्या कहिए किसी की अक्ल में जैसे फितूर आ जाए मुकामे-दार से गुजरो तो जिंदगी पाओ
पिओ जो जहरे-हलाहल सुरूर आ जाए
निगाह तेज, नफस गर्म, आरजू बेबाक
जिसे हो नाज हमारे हुजूर आ जाए
ये कारोबारे-मशीयत भी खूब है
"ताबां"किसी पे बर्क गिरे जद पे तूर आ जाए
यह दुनिया बहुत अदभुत है। यहां कभी-कभी यूं हो जाता है कि बिजली तो किसी और पर गिरती है, निशाना कोई और हो जाता है।
ये कारोबारे-मशीयत भी खूब है "ताबां"
ये ईश्वरीय लीला भी खूब है--
किसी पे बर्क गिरे जद पे तूर आ जाए

कभी किसी से तो मैं कहता हूं, और कोई और समझ लेता है। जिसने पूछा ही नहीं था उसको उत्तर मिल जाता है और जिसने पूछा था वह खाली का खाली रह जाता है।
शराब की ही बात कर रहा हूं, हिना!
छटे गुबार नजर बामे-तूर आ जाए
बस जरा सा आंखों से धूलों का हट जाना जरूरी है। जरा आंखों से सिद्धांतों और शास्त्रों का जाल कट जाना जरूरी है, कि जैसे तूर पर्वत पर ईश्वर का प्रकाश प्रगट हुआ था ऐसा ही तुम्हारे जीवन में भी घट सकता है। वह तूर पर्वत कहीं बाहर नहीं है, वह तुम्हारी ही समाधि का शिखर है।
छटे गुबार नजर बामे-तूर आ जाए
जरा धूल को छांट दो, जरा दर्पण को निखार लो, साफ कर लो तो तुम्हारे भीतर ही तूर पर्वत प्रगट हो जाए।
पिओ शराब कि चेहरे पे नूर आ जाए
और फिर पीओ, लेकिन शराब भीतर की।
उठाओ जाम बनामे-हयात बादाकशो
जीवन के नाम पर, ऐ पियक्कड़ो--
उठाओ जाम बनामे-हयात बादाकशोनजारे झूमें नजर को सुरूर आ जाए
सुरूर के दो अर्थ हैं--आनंद भी और नशा भी। बाहर की शराब पीओगे तो नशा
तो आता है, आनंद नहीं आता। हां, नशा आता है तो दुख भूल जाता है। और दुख का भूल जाना आनंद नहीं है। दुख का भूल जाना तो सिर्फ दुख का छिप जाना है। फिर प्रगट हो जाएगा--नशा उतरेगा और दुख फिर जाहिर हो जाएगा। दुख को भुलाना नहीं है, आनंद को पाना है।
उठाओ जाम बनामे-हयात बादाकशो नजारे झूमें नजर को सुरूर आ जाएमुकामे- दार से गुजरो तो जिंदगी पाओ
सूली से गुजरो तो सिंहासन मिले।
मुकामे-दार से गुजरो तो जिंदगी पाओ
मिटने की हिम्मत हो तो शाश्वत जीवन तुम्हारा है। गल सको तो सागर तुम्हारा है। अहंकार को विसर्जित कर सको तो यह अनंत, यह शाश्वत, सब तुम्हारा है। यह सारा आकाश तुम्हारा है, ये चांद-तारे तुम्हारे हैं। मुकामे-दार से गुजरो तो जिंदगी पाओपिओ जो जहरे-हलाहल सुरूर आ जाए
और फिर अगर तुम जहर भी पी लो तो भी आनंद आए। तो भी जीवन ही मिले। क्योंकि फिर कोई मौत नहीं है। मौत सिर्फ अहंकार की होती है। जो अहंकार से मुक्त हुआ, उसकी फिर कोई मौत नहीं, फिर कोई मौत की संभावना नहीं।
निगाह तेज, नफस गर्म, आरजू बेबाक
इतना ही तो सिखा रहा हूं कि जरा निगाह तेज करो कि और तेज करो कि और धार रखो। कि निगाह क्या, तलवार हो जाए।
निगाह तेज, नफस गर्म...
और जीओ तो थोड़ा गर्मी से जीओ। थोड़ी त्वरा से जीओ। श्वास गर्म हो, ठंडी
हो गई है। इतनी ठंडी हो गई है कि भीतर जैसे सब जम गया है। बर्फ हो गया है, आत्मा नहीं बची है।
निगाह तेज, नफस गर्म, आरजू बेबाकजिसे हो नाज हमारे हुजूर आ जाए
और जिसे तैयारी हो, वह हमारे सामने आ जाए। जिसे तैयारी हो पीने की, हमारे हुजूर आ जाए।
ये कारोबारे-मशीयत भी खूब है "ताबां"किसी पे बर्क गिरे जद पे तूर आ जाए
कोई पूछता है, किसी को उत्तर मिल जाता है। कोई सुनता है, सुनता ही रहता
है और कोई गुन भी लेता है। कोई बातों में ही उलझा रह जाता है और कोई यात्रा पर निकल जाता है।
मेरी सहबापरस्ती मूर्दए इलजाम है साकी
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी
जुनूं में और खिरद में दरहकीकत फर्क इतना है
वो जेरेदार है साकी ये जेरेदाम है साकी
सूए मंजिल बढ़ा जाता हूं मयखाना-ब-मयखानाम

जाके-जुस्तजू तश्नालबी का नाम है साकी
कभी दो-चार कतरे भी सलीके से न पी पाए
वो रिन्देखाम है साकी वो नंगेजाम है साकी
नहीं है आज भी साइस्ताए-आदाबे-मयनोशी
वो इक रिन्दे बलाकश जिसका
"ताबां" नाम है साकीमेरी सहबापरस्ती...
जिन्होंने जाना है उन सभी ने शराब की पूजा की है। जिन्होंने जाना है
उन सभी ने खुमारी की बात कही है।
मेरी सहबापरस्ती मूर्दए इलजाम है साकी
लेकिन जो नहीं जानते वे इस पर आरोप भी लगाएंगे। वे इसका विरोध भी करेंगे, निंदा भी करेंगे।
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी
और तथाकथित जो बुद्धिमान बने बैठे हैं, पंडित बने बैठे हैं, उनकी महफिल में मस्तों की मस्तानगी, दीवानों का दीवानापन--
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी
ये पागलपन, ये परवानों का पागलपन, ये उन्माद--बदनाम है साकी!
और ध्यान रखना, साकी से अर्थ हमेशा परमात्मा का है।
मेरी सहबापरस्ती मूर्दए इलजाम है साकी
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी
सूए मंजिल बढ़ा जाता हूं...
सूली की तरफ बढ़ा जाता हूं--
सूए मंजिल बढ़ा जाता हूं मयखाना-ब-मयखाना
एक मयखाने से दूसरा मयखाना, दूसरे से तीसरा मयखाना, यूं धीरे-धीरे सूली की तरफ बढ़ा जाता हूं।
सूए मंजिल बढ़ा जाता हूं
मयखाना-ब-मयखाना
मजाके-जुस्तजू तश्नालबी का नाम है साकी
यह जो तलाश की अभीप्सा है, यही तो प्यास है। यही तो तश्नालबी है। यह अभीप्सा, सत्य के खोजने की यह अभीप्सा, यह आकांक्षा, यही तो दीवानगी है। समझदार धन इकट्ठा करने में लगे हैं। समझदार शास्त्रों में सत्य खोज रहे हैं। समझदार पद खोज रहे हैं, प्रतिष्ठा खोज रहे हैं, अहंकार के लिए नए-नएशृंगार खोज रहे हैं। थोड़े से पागल हैं इस दुनिया में, जो सत्य खोज रहे हैं, जो स्वयं को खोज रहे हैं। और उन थोड़े से पागलों के कारण ही इस जमीन में थोड़ा नमक है, थोड़ा स्वाद है, नहीं तो सब बेस्वाद हो जाए।
सूए मंजिल बढ़ा जाता हूं मयखाना-ब-मयखाना
मजाके-जुस्तजू तश्नालबी का नाम है साकी
कभी दो-चार कतरे भी सलीके से न पी पाए
और ऐसे अभागे भी हैं कि जो कभी दो-चार कतरे भी सलीके से न पी पाए।
वो रिन्देखाम हैं साकी...
वे अनाड़ी हैं।
वो रिन्देखाम हैं साकी वो नंगेजाम हैं साकी
अनाड़ी ही नहीं, वे इस पूरी मधुशाला के लिए कलंक हैं; इस मस्ती से भरे हुए अस्तित्व के लिए कलंक हैं।
नहीं है आज भी साइस्ताए-आदाबे-मयनोशी
अभी भी शराब पीने की कला नहीं आई। शराब है, साकी है, सुराही है, जाम है, मगर फिर भी कुछ लोग पीठ किए बैठे हैं।
नहीं है आज भी साइस्ताए-आदाबे-मयनोशीवो
इक रिन्दे बलाकश जिसका "ताबां"
नाम है साकी
और यह दुनिया ऐसे अंधों से भरी हुई है।
मेरे पास जो मित्र इकट्ठे हुए हैं उन्हें तो खयाल रख ही लेना चाहिए कि
यह कोई मंदिर नहीं है, यह मयकदा है। जब भी कोई मंदिर जिंदा होता है तो

मयकदा होता है और जब कोई मयकदा मर जाता है तो मंदिर बनता है। मंदिर मयकदों की लाशें हैं, कब्रें हैं।
बुद्ध जब जिंदा हैं तो मयकदा है, जीसस जब जिंदा हैं तो मयकदा है और जब
मर गए तो फिर चर्च हैं, मंदिर हैं, मस्जिदें हैं, गुरुद्वारे हैं। ये सब लाशें हैं। फिर ढोते रहो इन लाशों को! कुछ ऐसे पागल हैं कि खाली बोतलों को ही ढोते रहते हैं। कभी उन बोतलों में शराब थी, पीने वाले पी गए, बोतलें पड़ी रह गईं। पीने वालों को बोतलों से क्या लेना-देना है।
शास्त्र और क्या हैं सिवाय बोतलों के? शब्द और क्या हैं सिवाय बोतलों के? जिनके भीतर का सार तो कोई पी गया, मधु तो कोई पी गया, मधुपात्र पड़े रह गए हैं। और कुछ उन्हीं की पूजा कर रहे हैं! चरणचिह्न रह गए हैं रेत पर समय की और लोग उन्हीं पर फूल चढ़ा रहे हैं।
मुर्दों से सावधान! और काफी मुर्दे हैं। और मुर्दों की पूजा सस्ती भी है, आसान भी है। लेकिन मुर्दों की जो पूजा करेगा, वह खुद भी मुर्दा रह जाता है।
हिना, तू ठीक कहती है। यही है मेरा संदेशः
झूम बराबर झूम शराबी
झूम बराबर झूम
काली घटा है, मस्त फिजा है
जाम उठाकर चूम, चूम, चूम
झूम बराबर झूम शराबी
बस झूमने में ध्यान भी रहे, बोध भी रहे, भीतर प्रकाश का दीया भी जलता रहे। नहीं तो भूल हो जाएगी। वैसी भूलें इतनी हो चुकी हैं--और जिन्होंने की हैं बड़े समझदार लोग हैं, बड़े विचारशील लोग हैं--कि आश्चर्य होता है कि इतने विचारशील लोग ऐसी भूलें कैसे कर जाते हैं! मगर मेरी समझ में विचारशील लोग भूलें इसलिए कर जाते हैं कि उन्हें यह भ्रांति है कि वे विचारशील हैं; जबकि केवल उधार विचारों से भरे हुए हैं। और उधार विचारों से कोई विचारशील नहीं होता।
डाक्टर पोपटमल, पीएचड़ी. जब खाना खाकर अध्ययन करने के लिए अपने निजी पुस्तकालय में पहुंचे तो उन्होंने देखा कि उनका चश्मा टेबल पर नहीं है। इससे उन्हें बहुत चिंता हुई कि आखिर चश्मा गया कहां? वे उदास होकर कुर्सी पर बैठ गए और सामने रखी टेबल पर दोनों कोहनियां टिकाकर हथेलियों पर सिर रखकर चश्मे के संबंध में मनन करने लगे।
डाक्टर पोपटमल ने सोचा कि हो न हो कोई चश्मा उठाकर ले गया है। अब यह सवाल उठता है कि जिसने चश्मा उठाया या तो उसे स्वयं कम दिखाई पड़ता है अथवा उसे ठीक दिखाई पड़ता है। यदि उसकी आंखें कमजोर हैं तो वह मेरे चश्मे को कैसे उठाकर ले जा सकता है, क्योंकि उसके पास स्वयं की ऐनक होनी ही चाहिए। और यदि किसी ठीक आंख वाले ने चश्मा उठाया होगा, तो वह उसका करेगा क्या? इससे सिद्ध होता है कि किसी ने मेरा चश्मा नहीं उठाया।
बगल की ही टेबल पर बैठे पोपटमल के दोस्त पंडित तोताराम शास्त्री ने पूछा क्या बात है, डाक्टर? इतने परेशान क्यों लग रहे हो, यार? मुझे कहो, शायद मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूं।
पोपटमल बोले, भाई शास्त्री, मेरा चश्मा न जाने कहां चला गया। चूंकि चश्मा अपने आप कहीं जा नहीं सकता, इससे सिद्ध होता है कि कोई न कोई उसे जरूर उठा ले गया है। चूंकि स्वस्थ आंखों वाला कोई व्यक्ति तो उसे उठा सकता नहीं, और न ही कमजोर आंखों वाला उसे उठाकर ले जा सकता है, क्योंकि उसके पास उसका खुद का चश्मा होगा। आप ही इस समस्या को सुलझाइए।
पंडित तोताराम शास्त्री ने दो मिनट सोचने के बाद कहा, यह भी तो हो सकता है कि कोई आपके चश्मे को बेचने के खयाल से चुरा ले गया हो।
पोपटमल बोले, ऐसा संभव नहीं। क्योंकि चोर जिसे वह चश्मा बेचेगा उसकी आंखें निश्चित ही कमजोर होंगी। और जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं कि उसके पास पहले से ही स्वयं का चश्मा होगा।
इस पर तोताराम शास्त्री बोले, मगर हो सकता है कि किसी कमजोर आंख वाले व्यक्ति का चश्मा टूट-फूट गया हो और उसे नए चश्मे की जरूरत हो। तो या तो वह

स्वयं चश्मा उठाकर ले गया, या फिर कोई उसे चश्मा बेचने के खयाल से चुरा ले गया।
डाक्टर पोपटमल ने तुरंत फोन पर शहर के एकमात्र नेत्र-विशेषज्ञ से बात
की और पता लगाया कि जिस नंबर का चश्मा वे लगाते हैं, उस नंबर का चश्मा शहर में किसी और आदमी का भी है या नहीं? नेत्र-विशेषज्ञ ने बताया कि उस नंबर का चश्मा शहर में किसी दूसरे आदमी को नहीं लगता।
विशेषज्ञ के इस उत्तर से शास्त्री जी की परिकल्पना गलत साबित हो गई। करीब आधा घंटे तक दोनों दार्शनिक गंभीर मुद्रा बनाए चिंतन करते रहे। तब अचानक पंडित तोताराम शास्त्री ने उछलकर अलमारी से एक किताब निकाली और उसमें से पढ़कर बताया कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लोग चश्मे को भोजन करते वक्त या किसी से बातें करते समय माथे पर ऊपर चढ़ा लेते हैं और फिर भूल जाते हैं।
डाक्टर पोपटमल के चेहरे पर प्रसन्नता छा गई, उन्होंने कहा, हे राम, यह बात तो मेरे दिमाग में आई ही नहीं। हो न हो ऐसा ही हुआ होगा। अब सवाल यह उठता है कि इस कमरे में हम सिर्फ दो ही आदमी हैं, कोई और इस कमरे में आया नहीं है, तो या तो चश्मा मेरे माथे पर चढ़ा होगा या फिर शास्त्री जी आपके माथे पर। चूंकि मुझे आपके माथे पर कोई चश्मा दिखाई नहीं देता, इससे साफ प्रमाणित होता है कि चश्मा मेरे ही माथे पर होना चाहिए। वैसे तो सत्य का पता लगाने के लिए तार्किक निष्कर्ष ही अकेले काफी हैं, किंतु कुछ विद्वानों का मत है कि लिखा-लिखी की है नहीं देखा-देखी बात, इसलिए तार्किक निष्पत्ति के अलावा मैं आंखों देखा प्रमाण ही प्राप्त करूंगा। ऐसा कहते हुए पोपटमल उठे और आईने के सामने जा पहुंचे। और अपने माथे पर चढ़े हुए चश्मे की प्रतिछवि आईने में देखकर खुशी में चिल्ला उठे मिल गया, मिल गया! यूरेका, यूरेका!!
चश्मा मिलने की खुशी में वे इतने जोर से उछले कि चश्मा खिसककर नीचे गिरा और चकनाचूर हो गया।
पंडितों से ज्यादा मूढ़ इस जगत में कोई और नहीं है। पंडितों ने अनर्थ
कर डाला है।
मेरे पास उनकी ही जरूरत है जो पांडित्य की धूल झाड़ सकते हों। जिनमें इतनी हिम्मत हो कि फिर से बच्चों की तरह भोले हो जाएं, सरल हो जाएं। उतारकर रख दें सारा बोझ--सिद्धांतों का, शास्त्रों का, शिक्षाओं का। और तब तुम्हारे पास वैसी तीखी नजर, वैसी पैनी नजर आ जाती है जो जीवन के सारे रहस्यों को देखने में समर्थ है। तभी आदमी भूल से बच सकता है। तब तुम खुमारी का अर्थ ठीक-ठीक समझोगे। नहीं तो डर है।
खुमारी का मतलब यह मत समझ लेना कि शराब पीनी है। और कहीं शराब पीने से बचने के लिए ऐसा न करना कि बिल्कुल अकड़कर रह जाओ, सूखकर रह जाओ, डरे-डरे हो जाओ कि कहीं कुछ भूल-चूक न हो जाए। तब भी खुमारी चूक जाएगी।
पीनी तो है--भीतर की पीनी है। और पीनी तो है--मगर होश से पीनी है। होश
भी रहे और बेहोशी भी रहे, दोनों में एक संतुलन हो, एक सामंजस्य हो, एक तालमेल हो, एक छंदोबद्धता हो, तब व्यक्तित्व में अदभुत फूल लगते हैं। तब बुद्ध नाचते हैं और मीरा मौन होती है। और जहां बुद्ध और मीरा साथ-साथ होते हैं वहां जीवन अपनी परिपूर्णता में खिलता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं बहुत देर से आपकी शरण में आया, फिर भी मन इस तरह से हर समय गुनगुनाता है किः कभी-कभी मेरे दिल में खयाल आता है कि तुमको बनाया गया है मेरे लिए तुम अब से पहले सितारों में बस रहे थे कहीं तुझे जमीं पर उतारा गया है मेरे लिए
इसे मन की कौन सी दशा कही जाए?

सूरज प्रकाश भारती, इसी को तो मैं दीवानापन कह रहा हूं। यही तो पागलपन है। ऐसे ही दीवानों के लिए तो निमंत्रण है। और ऐसे ही दीवानों का मुझसे कुछ नाता बन सकता है। यह नाता प्रेम का नाता है। यहां कोई गुरु नहीं, यहां कोई शिष्य नहीं; यह प्रेमियों की जमात है।

और इसकी चिंता मत लो कि मैं बहुत देर बाद आपकी शरण में आया। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं। जब भी आ गए तभी जल्दी है। आ गए यही बहुत। आ गए, यह सौभाग्य है! मगर आकर भी लोग चूक गए हैं। आ-आकर भी लोग चूक गए हैं। आ जाना ही काफी नहीं। उतने से ही तृप्त न हो जाना। अब डूबो भी!
प्रेम की पुकार तुमने सुनी--और तुम्हारे हृदय में प्रेम की झंकार भी पैदा हो रही है; उससे डर भी लगेगा। बुद्धि विरोध भी करेगी, एतराज भी उठाएगी, आक्षेप भी करेगी, हजार तरह के तर्क भी खड़े करेगी। लेकिन तुम बुद्धि की सुनना ही मत। हृदय की सुनना और हृदय की गुनना। तो ही इस महफिल में जुड़ पाओगे। नहीं तो कटे-कटे रह जाओगे। आ गए और फिर चूक गए तो और भी बड़ा दुर्भाग्य है।
तूचाहेचंचलता कह ले
तूचाहेनिर्बलता कह ले
दिल ने ज्योंहीमजबूरकिया
मैंतुझसेप्रीतलगाबैठा
मैंचातकहूंतूबादलहै
मैंलोचनहूंतूकाजलहै
मैंआंसूहूंतूआंचलहै
मैंप्यासाहूंतूगंगाजलहै तूचाहेनादानी कह ले
तूचाहेमनमानी कह ले
जिसनेभीमेरापरिचय पूछा
मैंतेरानामबताबैठा
मैंतुझसेप्रीतलगाबैठा
सारामदिरालय घूमगया
प्याले-प्यालेकोचूमगया
परजबतूने घूंघट खोला
मैंबिनपीए हीझूम गया
तूचाहेपागलपन कह ले
तूचाहेतोपूजन कह ले
मंदिरमेंजब घड़ियालबजा
मैंतुझकोसीसझुकाबैठा
मैंतुझसेप्रीतलगाबैठा
मैंअबतकजान न पायाहूं
क्यूंतुझसेमिलनेआयाहूं तूमेरेदिल की धड़कनहै
मैंतेरेदर्पण की छायाहूं तूचाहेतोसपना कह ले
या अनहोनी घटना कह ले
मैंजिसपथसेभीचलनिकला
मैंतेरेदरपरआबैठा
मैंतुझसेप्रीतलगाबैठा
ये प्यारदीए कातेलनहीं
दो-चार घड़ीकामेलनहीं
यह तो युग-युगकाबंधनहै
कोईगुड़ियोंका खेलनहीं
तूचाहेदीवाना कह ले
या अल्हड़ मस्ताना कह ले
मैंनेजोभीरेखा खींची
तेरीतस्वीरबनाबैठा
मैंतुझसेप्रीतलगाबैठा
उर की पीड़ामैंसह न सकूं
कुछकहनाचाहूं कह न सकूं
ज्वालाबनकरभीरह न सकूं

आंसूबनकरभी बह न सकूं
तूचाहेतोरोगी कह ले
या मस्तानाजोगी कह ले
मैंतुझे यादकरते-करते
अपनाभीहोशगंवाबैठा
मैंतुझसेप्रीतलगाबैठा
प्रेम तो हुआ, यात्रा का पहला कदम तो उठा, मगर बहुत यात्रा बाकी है। इस प्रेम में मरना जरूरी है, मिटना जरूरी है। जो मरेगा, वही पुनरुज्जीवन पा सकेगा। देर-अबेर आए, अब इसकी फिक्र न करो। आ गए, अपने को धन्यवाद दो, अपने को धन्यभागी मानो। मगर किनारे पर खड़े न रह जाना।
कबीर ने कहा हैः
जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी खोजन गई रही किनारे बैठ।।
कभी-कभी यूं हो जाता है कि लोग किनारों पर आ जाते हैं और बैठकर रह जाते हैं।
मैं बौरी खोजन गई...
मैं पागल खोजने भी गई, नदी तक पहुंच भी गई, लेकिन किनारे पर बैठ रही।
अब डुबकी मारो! और डुबकी में फिर बचाना मत कुछ। डुबकी फिर पूरी ही होनी चाहिए, समग्र ही होनी चाहिए। होशियारी न करना। होशियारी सबसे खतरनाक बात है।
भारत-पाक युद्ध के समय लोगों को जबर्दस्ती सेना में भर्ती करके युद्ध
के लिए भेजा जा रहा था। सरकारी अफसर नव ब्रह्मचारी श्री मिट्ठूलाल ज्ञानी के पास आए और उनसे सेना में भर्ती होने की विनती करने लगे।
ब्रह्मचारी मिट्ठूलाल ज्ञानी ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए जवाब दिया, ना बाबा ना, राम कहो राम, मैं कभी सेना में न जाऊंगा। अरे, मैं ठहरा बालब्रह्मचारी, भला मैं लड़ाई पर कैसे जा सकता हूं?
अफसरों ने कहा, मगर ज्ञानी जी, लड़ाई से ब्रह्मचर्य थोड़े ही नष्ट होता है। और अगर आप जैसे हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचारी लोग ही युद्ध पर न जाएंगे तो फिर कौन जाएगा भारत माता की लाज बचाने!
ब्रह्मचारी मिट्ठूलाल बोले, खतरा है। इसलिए मैं युद्ध पर जाने में आनाकानी कर रहा हूं। यदि आपको विश्वास न हो तो मैं सिद्ध किए देता हूं। अधिकारियों ने कुछ समय सोचने-विचारने के बाद कहा कि यदि आप सिद्ध कर दें कि युद्ध में जाने से आपका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाएगा तो हम आपको युद्ध पर नहीं भेजेंगे।
अधिकारियों ने सोचा कि युद्ध में स्त्रियां तो जा नहीं रही हैं, फिर ब्रह्मचर्य भंग होने का सवाल ही कहां उठता है!
ब्रह्मचारी मिट्ठूलाल ज्ञानी अपनी बात शुरू करते हुए बोले, सुनिए; अगर मैं सेना में भर्ती होता हूं तो या तो मुझे मिलिटरी के किचन में काम मिलेगा या फिर मुझे लड़ाई पर जाना पड़ेगा। यदि किचन में काम मिला तब तो ठीक है, परंतु यदि लड़ाई में जाना पड़ा तो दो बातें हो सकती हैं--या तो मैं मारा जाऊंगा या जिंदा बच जाऊंगा। अगर जिंदा बच गया तो कोई बात नहीं, मगर खुदा न खास्ता यदि मर गया तो दो बातें संभव हैं। या तो मैं तोप से मारा जाऊंगा या गोली से। यदि तोप से मेरी धज्जियां उड़ जाएं तो मुझे कोई गम नहीं। परंतु मान लीजिए कि मैं गोली से मरता हूं तो दो बातें हो सकती हैं। या तो मैं जलाया जाऊंगा या फिर गड़ाया जाऊंगा। यदि जला दिया गया तब तो ईश्वर की बड़ी कृपा है, लेकिन यदि गड़ाया गया तो फिर दो बातों की संभावना है। भविष्य में या तो उस जमीन पर गेहूं, चना, चावल इत्यादि की खेती होगी या फिर तिल, अलसी या मूंगफली की। यदि गेहूं-चने आदि की खेती हुई तो कोई नुकसान नहीं, लेकिन यदि तिल, अलसी या मूंगफली की खेती की गई तो उससे निश्चित ही मेरा तेल निकाला जाएगा। यदि उस तेल के अन्य उपयोग किए गए तो ठीक है, लेकिन यदि उसकी साबुन बनाई गई तो दो बातों की संभावना है। या तो उससे नहाने की साबुन बनाई जाएगी या कपड़ा धोने की। यदि कपड़ा धोने की साबुन बनी तब तो सब ठीक-ठाक रहेगा, परंतु यदि नहाने की साबुन बनी तब मुसीबत हो सकती है। क्योंकि फिर

उसके दो उपयोग हो सकते हैं। हो सकता है कि पुरुष उस साबुन से नहाएं। यदि पुरुष उससे नहाएं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, परंतु यदि किसी सुंदर नवयौवना ने मुझसे रगड़-रगड़कर नहाना शुरू कर दिया, तब तो मुझ ब्रह्मचारी पर क्या गुजरेगी जरा आप ही सोचिए! यह कहकर उन्होंने शर्म से अपना चेहरा अपने हाथों से छिपा लिया।
ज्ञानियों के अपने जाल हैं। फैलते ही चले जाते हैं उनका कोई अंत नहीं।
अमरीका में उन्होंने एक ऐसा कंप्यूटर निर्मित कर लिया है जिसमें मनुष्यों जैसे गुण हैं--एक अमरीकी पर्यटक ने वार्तालाप के दौरान महामहिम मटकानाथ ब्रह्मचारी को बताया।
मटकानाथ ने पूछा, बच्चो, उसमें ऐसी कौन सी खूबियां हैं जो आदमियों से मेल खाती हैं?
जवाब मिला, यदि कंप्यूटर से कोई गलती हो जाती है तो उसकी जिम्मेदारी
वह दूसरे कंप्यूटर पर डाल देता है।
ब्रह्मचारी जी बोले, इसमें खूबी की भला कौन सी बात है, बच्चा? अरे, हमारे महान देश भारत के पवित्र वैज्ञानिकों ने एक ऐसा कंप्यूटर ईजाद किया है जो धार्मिक है। वह मात्र मानवीय ही नहीं, वरन दैवीय गुणों से भरपूर है। उससे कैसा भी कठिन से कठिन, जटिल से जटिल सवाल पूछो, वह तत्क्षण उसका समाधान कर देता है।
पर्यटक ने चकित होकर दांतों के नीचे अंगुली दबाकर कहा, कैसा भी सवाल? महामहिम बोले, हां-हां कैसा भी सवाल! बच्चा, कैसा भी। भूगोल का हो कि चाहे राजनीति का। भौतिकी का हो कि चाहे भूत-प्रेत का। रसायन का हो कि गणित का। पाकशास्त्र का हो अथवा चिकित्सा-शास्त्र का। इतना ही नहीं, सवाल चाहे आज का हो, चाहे भूतकाल का या भविष्य का, बस बटन दबाओ और हमारा धार्मिक कंप्यूटर तुरंत समस्या का हल बता देता है।
अमरीकी ने इस अदभुत मशीन को देखने की इच्छा जाहिर की। महामहिम मटकानाथ ब्रह्मचारी ने पास ही रखे एक टेपरिकार्डर की ओर इशारा करके कहा, पूछो! बच्चे, कोई भी सवाल पूछो! यह फौरन जवाब देगा।
अमरीकी ने कई प्रश्न किए पर बटन दबाने पर हर बार एक ही उत्तर मिला, वत्स, इस समस्या का समाधान तो स्पष्टरूपेण श्रीमद भगवद्गीता में दिया ही हुआ है। ओम शांतिः शांतिः शांतिः।
सवाल खोजने, उत्तरों की तलाश करने की कोई जरूरत ही कहां है, वह तो सब भगवद्गीता में दिए ही हुए हैं। कहीं से भी पन्ना पलटो, हर जगह उत्तर ही उत्तर हैं।
उत्तर एक भी नहीं तुम्हारे जीवन में और सब उत्तरों के होने का भ्रम है।
मेरे पास केवल वे ही लोग सीख पाएंगे जो अपने उत्तरों के भ्रम छोड़ देते हैं। और यह सब से कठिन बात है इस जगत में। संसार छोड़ना आसान; पत्नी, बच्चे, पति छोड़ना आसान; धन, पद, प्रतिष्ठा छोड़ना आसान; सबसे कठिन मामला है झूठा ज्ञान छोड़ना। क्योंकि वह अहंकार को सर्वाधिक पोषण देता है।
तुम आ गए हो अब, सूरज प्रकाश भारती, और तुम्हारे हृदय में पहली गुनगुन
भी उठ आई, वसंत के पहले फूल भी खिलने लगे, अब इतना ही खयाल करना कि कहीं ज्ञान बाधा न डाले। खतरा है उसका, इसलिए कि तुम मुझसे पूछ रहे होः "इसे मन की कौन सी दशा कही जाए?"
अरे, क्या दशा कहनी है! क्या परिभाषाएं करनी हैं! क्या होगा उससे! कोई लेबल लगा देंगे कि यह मन की दशा हुई, यह नाम हुआ फिर ओम शांतिः शांतिः शांतिः। फिर क्या करोगे? मन की दशा को जानने से क्या है? मन को गंवाना है। क्या लेबल लगाना है? यह दशा भी जानी चाहिए। सब दशाएं दुर्दशाएं हैं। उस दशा को पाना है जहां कोई दशा न रह जाए, न कोई दिशा रह जाए। उस परम मौन को उपलब्ध होना है, जहां कुछ भी विशेषण न बचे, कोई परिभाषा न रहे, अनिर्वचनीय का अनुभव हो।
देर-अबेर आ गए! अब इस गूंज को बढ़ने दोः
बरसो मेरे अमृत घनबरसो जीवन आंगन में

तुम रसकण बनकर ढुलको
मेरे उर के मधुवन में
मेरे प्राणों के नभ में
द्युतक्रीड़ा बन कर आओ
आलोकित कर दो अग-जग
सतरंगी छबि बिखराओ
मेरे मानस की शोभा
भावों के कमल खिले हैं
इस उर्मिल आलिंगन में
धरती-आकाश मिले हैं
हृद्-सुमनों में खिल-खिलकर
आनंद सुगंध लुटाओ
मेरे चितवन पथ से आ
प्रभु प्राणों में बस जाओ
योग प्रीतम का यह गीत प्रीतिकर है।
बरसो मेरे अमृत घन
बरसो जीवन आंगन में
तुम रसकण बनकर ढुलको
मेरे उर के मधुवन में
अब ज्ञान की, परिभाषा की, सिद्धांत की बात छोड़ो। अब तो ऐसे डूबो कि अपना भी पता न चले। मैं कौन हूं, क्या हूं, यह भी विसर्जित हो जाए, विस्मृत हो जाए। कोरी स्लेट रह जाए, कोरा कागज रह जाए। उस कोरे कागज में ही जीवन की संपदा है, जीवन का साम्राज्य है। उस शून्य चित्त में ही, उस निर्विचार और निर्विकार भावदशा में ही अमृत की वर्षा उतरती है। और ऐसा अमृत जो फिर बरसता ही चला जाता है, जो कभी चुकता नहीं है।
किनारे पर न बैठ रहना। सौ में एकाध आता है। और जो आते हैं उन सौ में एकाध डूबता है, निन्यानबे किनारों पर बैठे रह जाते हैं। इससे सचेत करता हूं तुम्हें। देर-अबेर आ गए, उसकी अब चिंता नहीं; जो बीता सो बीता। बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहि। अब आगे की सुध यह है कि आ तो गए, अब छलांग लो। और छलांग ऐसी कि पीछे लौटकर मत देखना। और छलांग ऐसी कि कुछ बचाना मत। क्योंकि जो बचाया, वही डुबाएगा। छलांग समग्र होनी चाहिए।
कल ही मुझे कृष्ण प्रेम ने पत्र लिखा। कृष्ण प्रेम गया था एक सप्ताह
के लिए महाबलेश्वर। वहां विजयानंद से एक होटल में मिलना हो गया। विजयानंद ने कृष्ण प्रेम को कहा कि मैं तो भगवान से बिल्कुल ही टूट चुका, अलग हो चुका, अब मेरा कोई संबंध नहीं। लेकिन दो घंटे तक मेरी ही बात की। तो कृष्ण प्रेम ने कहा कि यह कैसा संबंध टूटा! इतनी बातें तो जब आप उनसे संबंधित थे तब भी उनकी नहीं करते थे। अब तो ज्यादा ही बातचीत कर रहे हैं। और फिर भी कह रहे हैं कि मैं सब संबंध तोड़ चुका। यह बात जरा बेबूझ है। पेंडुलम एक किनारे से दूसरे किनारे चला गया है। एक अति से दूसरी अति हो गई है। विजयानंद ने अपनी बातचीत में यह भी कहा कि मैं पांच साल तक समग्ररूपेण समर्पण करके उनके पास रहा, सब समर्पित कर दिया था, फिर भी बुद्धत्व मुझे उपलब्ध न हुआ। इसलिए मैंने छोड़ दिया। इसलिए मैंने संन्यास भी छोड़ दिया।
अब जरा सोचने जैसा है कि जो व्यक्ति समग्ररूपेण समर्पण किया हो वह लौट कैसे सकता है? कुछ किनारे पर रख आया होगा। कुछ बाकी रखा होगा। लौटने योग्य कुछ जगह बचा रखी होगी। लौटने के लिए कोई सेतु कायम रखा होगा। सारे सेतु तोड़ नहीं डाले होंगे। कहीं लौटना पड़े तो लौटने की गुंजाइश रखी होगी। यह समर्पण समग्र नहीं हो सकता। इस कारण भी समग्र नहीं हो सकता कि लौटना संभव ही नहीं है समग्र समर्पण के बाद। लौटने को ही कोई नहीं बचता तो लौटेगा कोई कैसे? डूब ही गए, तो लौटना कैसा? और फिर दूसरा इसलिए भी यह समर्पण समग्र नहीं हो सकता कि अगर इसमें यह अभीप्सा थी भीतर, यह आकांक्षा थी, यह इच्छा थी, यह वासना थी कि मुझे बुद्धत्व मिलना चाहिए और अभी तक नहीं मिला, अभी तक नहीं मिला, पांच साल हो गए! ... पांच साल जैसे कोई भारी बात हो

गई। पांच करोड़ साल से भटक रहे होओगे। चौरासी कोटि योनियों में भटकने में करोड़ों साल लगे होंगे। चौरासी कोटि योनियां और पांच साल में बुद्धत्व पाने की इच्छा!
सच तो यह है, बुद्धत्व पाने की इच्छा ही बुद्धत्व को पाने में बाधा बन जाती है। कोई भी इच्छा बाधा बन जाएगी। पाने की बात ही लोभ की बात है। पाने की बात ही अहंकार की बात है। मैं भी क्या करूंगा? कोई भी क्या करेगा? पाना तुम्हें है, और अगर तुम्हारे भीतर यह वासना का जहर बैठा हुआ है तो कैसे पाओगे? यूं तो मिल सकता है एक क्षण में भी, मगर डूबना पूरा होना चाहिए। डूबने में दो बातें अनिवार्य हैं। एक--कि बिना किसी कारण के डूबना। अगर कारण से डूबे तो डूबे ही नहीं। कोई डूबने के पीछे वासना न हो, कोई लोभ न हो, कोई एषणा न हो, नहीं तो डूबे ही नहीं। अकारण। प्रेम तो अकारण होता है। और समर्पण प्रेम की परिपूर्णता है। अकारण ही हो सकता है। जो कारण बता सके अपने समर्पण का, उसका समर्पण है ही नहीं। वह धोखा खा रहा है। धोखा दे रहा है। खुद को ही धोखा दे रहा है, किसी और को नहीं।
और बुद्धत्व पाना है! यह तो अहंकार की ही दौड़ हो गई। बुद्धत्व पाया नहीं जाता, मिलता है। जिसने पाना चाहा, वह तो चूका। और जो चुपचाप डूबा, उसे मिला। जिन डूबे तिन ऊबरे। जो डूब गए पूरे-पूरे, वे उबर गए।
यह बात कृष्ण प्रेम को भी समझ में आ सकी--कृष्ण प्रेम ने मुझे पत्र में लिखा है। उसकी प्रेयसी, वसुमती भी उसके साथ थी। दोनों एक सप्ताह की छुट्टी पर गए थे। वसुमती और कृष्ण प्र्रेम, दोनों ने लिखा है कि हम दोनों को बात इतनी साफ दिखाई पड़ी कि यह बुद्धत्व को पाने की इच्छा कैसे बुद्धत्व को पाने देगी!
और विजयानंद ने उनसे पूछा कि तुम्हें बुद्धत्व मिला अभी? तो उन दोनों
ने कहा, हमें फिकर ही नहीं है। करना क्या है हमको बुद्धत्व का? करेंगे क्या बुद्धत्व का?
तो विजयानंद ने उन्हें कहा, यह बात ठीक नहीं है। फिर संन्यास का सार
ही क्या? फिर तुम वहां कर क्या रहे हो?
उन दोनों ने कहा, हम आनंदित हैं। हम मजे में हैं। कौन फिकर करता है बुद्धत्व की! क्या लेना है बुद्धत्व को! बुद्धत्व को खाएंगे, पीएंगे, ओढ़ेंगे या क्या करेंगे? हम मस्त हैं। हमें कोई चिंता नहीं है।
यह विजयानंद के लोभी चित्त को समझ में बात नहीं आई। समझाया उसने इनको
भी कि नहीं, तुम्हें भी चिंता करनी चाहिए बुद्धत्व की। बुद्धत्व को पाना जरूरी है, बिल्कुल जरूरी है।
भारत में यह गहरी वासना है। धन को छोड़ देते हैं लोग, पद को छोड़ देते हैं, लेकिन तब परमात्मा को पाना है, बुद्धत्व को पाना है, निर्वाण को पाना है! वही पाने की दौड़, केवल विषय बदल गया। वही विचार, वही लोभ, वही वासना, वही महत्वाकांक्षा, वही अहंकार--कुछ फर्क नहीं हुआ।
विजयानंद को यह समझ में न आ सका कि वे दोनों हंस रहे हैं और कह रहे हैं
कि हमें कोई लेना-देना नहीं, बुद्धत्व का क्या करना है! हम मस्त हैं। हम आनंदित हैं। हमारा संन्यास निष्प्रयोजन है।
और जब संन्यास निष्प्रयोजन होता है तो डुबकी पूरी लगती है। फिर लौटने
की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। क्योंकि न कोई आकांक्षा है, न कोई विफलता हो सकती है। न कुछ पाना है, इसलिए हारने का तो सवाल ही नहीं उठता।
ऐसे डूबो! आए देर से, कोई फिकर नहीं, अटके मत रह जाना।
भारतीय मन के लिए हमेशा मुझे चिंता होती है। भारतीय मन आता भी है तो वही लोभ मोक्ष का, कैवल्य का, निर्वाण का उसे पकड़े रहता है। भारतीय मन बड़ा लोभग्रस्त है; भयंकर लोभ से पीड़ित है। परलोक का लोभ उसे पकड़ा हुआ है। इस लोक को भी बरबाद कर दिया उस लोभ ने। और परलोक तो मिल ही नहीं सकता लोभ के कारण। इससे तो इसी लोक का लोभ अच्छा है। कम से कम कुछ तो मिलेगा। ठीकरे ही सही मगर कुछ तो मिलेगा। हाथ कुछ तो लगेगा। सांसारिक लोभ ठीक है लेकिन आध्यात्मिक लोभ तो बिल्कुल ही विक्षिप्तता है। मगर भारतीय मन में गहरी जड़ें पहुंच गई हैं। भारतीय मन से उन जड़ों को उखाड़े बिना कोई उपाय नहीं है।

इसलिए, सूरज प्रकाश, यहां डूबो! मगर दो बातें खयाल रखना--पूरे डूबना, किनारे पर कुछ रखकर मत आना कि अगर लौटना पड़े तो कम से कम कपड़े तो बचा रखो, नहीं तो फिर नंग-धड़ंग कहां जाओगे।
मेरे पास आओ तो पीछे के सब सेतु तोड़ देना, मेरे पास आओ तो सीढ़ियां गिरा देना, मेरे पास आओ तो पीछे लौटने के लिए रास्ता न बचे। रास्ते को आग लगा देना--तो ही मेरे पास पूरे आ सकोगे। और जब मेरे पास आओ तो आगे के लिए कोई आकांक्षा भी न रखना। पीछे के लिए रास्ता न रखना, आगे के लिए कोई आकांक्षा न रखना। पीछे के लिए कोई राह न रखना, आगे के लिए कोई चाह न रखना। जहां न राह है, न चाह है, वहां समग्ररूपेण इसी क्षण डुबकी लग जाती है। और उसी डूबने में पा लेना है।
आज इतना ही।

पीवत रामरस लगी खुमारी
दसवां प्रवचन

ध्यान का दीया जलाओ

पहला प्रश्नः ओशो, कहते हैं कि कामनाएं मूलतः तीन ही हैं--संभोग, संपत्ति और शक्ति की कामनाएं। शेष सब इनकी ही संतान हैं। इनमें भी फ्रायड संभोग को बुनियादी बताते हैं; मार्क्स संपत्ति को; और एडलर शक्ति को। और हालांकि तीनों अपने-अपने ढंग से सही मालूम पड़ते हैं, तो भी उलझन नहीं मिटती।
ओशो, फ्रायड, मार्क्स और एडलर के इस विवाद में--विवादी नहीं रहे, पर विवाद जारी है--मैं आपको पंच चुनता हूं। क्या आप पंचायत करेंगे? यदि हां, तो आपका पंच-फैसला क्या होगा?

अखिलानंद, मार्क्स, फ्रायड और एडलर तीनों सही भी हैं और तीनों गलत भी। सही इसलिए कि प्रत्येक ने आंशिक सत्य को कहा है। गलत इसलिए कि प्रत्येक ने आंशिक सत्य को ही संपूर्ण सत्य है--ऐसा सिद्ध करने की चेष्टा की है। वासनाएं तीन हो सकती हैं, तेरह हो सकती हैं, लेकिन उनका मूल उत्स एक है। यूं समझो कि जैसे अस्तित्व के तीन आयाम होते हैं लेकिन अस्तित्व एक है। वैसे ही वासना एक है, उसके ये तीन आयाम हैं, उसके ये तीन पहलू हैं। ये त्रिकोण हैं। और तीनों कोने अपने आप में सही हैं। पर जैसे ही कोई अपने कोने को ही पूरा महल घोषित करता है, झूठ शुरू हो जाता है।
केंद्र क्या है वासना का? मूल उत्स क्या है? मूल उत्स एक ही है और वह है--मनुष्य का स्वयं को न जानना, आत्म-अज्ञान, आत्म-मूर्च्छा। चूंकि मनुष्य स्वयं को नहीं जानता; इसलिए सब तरह की चेष्टाएं करता है इस अज्ञान को किस तरह ढांक ले; इस अज्ञान को किस तरह विस्मृत कर दे; इस अज्ञान को किस भांति स्वयं भी भूल जाए और दूसरों को भी पता न पड़ने दे। इस भुलावे की चेष्टा से ही, इस आत्म-वंचना की चेष्टा से ही ये तीन आयाम पैदा होते हैं। निश्चित ही अगर तुम्हारे पास संपत्ति हो, तो तुम भुलावा पैदा कर सकते हो; बहुत भुलावा पैदा कर सकते हो। संपत्ति हो तो लोग गधों को भी साष्टांग दंडवत करते हैं। संपत्ति हो तो सम्मान मिलता है। संपत्ति हो, समादर मिलता है, पूजा मिलती है।
हमारा शब्द है ईश्वर, वह बना है ऐश्वर्य से। जिसके पास ऐश्वर्य है, वह अपने को ईश्वर समझने की भ्रांति में पड़ सकता है। ऐश्वर्य ऐसा भ्रमजाल खड़ा कर दे सकता है कि फिर स्वयं को जानने की जरूरत न मालूम पड़े।
हम दूसरों की आंखों में अपनी तस्वीर देखकर जीते हैं। हमारी अपनी तो कोई पहचान नहीं। स्वयं की तो कोई प्रत्यभिज्ञा नहीं। दूसरे क्या कहते हैं, वही हमारी जानकारी है, अपने संबंध में।
अगर लोग कहते हैं--सुंदर हो, तो हम मान लेते हैं कि सुंदर हैं। और लोग कहते हैं कि सुंदर नहीं हो; तो पीड़ा होती है, तो कांटा चुभता है। लोग कहते हैं बुद्धिमान हो, तो फूल बरस जाते हैं। और लोग कहते हैं बुद्धू हो, तो हम गड्ढे में गिर जाते हैं।
जिसके पास संपत्ति है, वह कुछ भी कहला लेगा। संपत्ति क्या नहीं खरीद सकती है! सम्मान खरीद सकती है। स्तुति खरीद सकती है। प्रशंसा खरीद सकती है।
सम्राटों के दरबारों में भाट हुआ करते थे, जो उस समय महाकवि समझे जाते थे। और उनका कुल काम इतना था कि वे सम्राटों की प्रशंसा और स्तुति में गीत लिखते रहें। ऐसे झूठे गीत; ऐसी व्यर्थ की कल्पनाएं, असंभव कल्पनाएं! लेकिन आदमी का मन उनको भी मान लेता है।
जब तुम्हारी कोई प्रशंसा करता है, तुम्हें अगर समझ में भी आता हो कि
यह बात झूठ है, तो भी तुम इनकार नहीं कर पाते। रस मिलता है। गुदगुदी होती है। भीतर हृदय गदगद होता है। किसी मूर्खाधिराज को भी कहो कि आप महापंडित हो, तो वह भी इनकार नहीं करता। क्योंकि चाहा तो उसने यही था सदा कि लोग महापंडित कहें। लेकिन कोई कहने वाला न मिला था।

अरबी कहावत है कि परमात्मा जब लोगों को बनाकर दुनिया में भेजता है, तो सभी के साथ एक मजाक कर देता है। बनाया आदमी को, और इसके पहले कि फेंके दुनिया में, कान में फुसफुसा देता है कि तुझ जैसा सुंदर, तुझ जैसा बुद्धिमान, तुझ जैसा अद्वितीय, प्रतिभाशाली, मेधावी मैंने न कभी बनाया और न कभी मैं फिर बनाऊंगा। तू बेजोड़ है। तू लाखों में एक है। और कंकड़-पत्थर-- तू हीरा है। तू कोहिनूर है।
और यही बात हर आदमी अपने मन के भीतर दबाए बैठा है। कहना तो चाहता है, लेकिन कहने के लिए अवसर चाहिए। संपत्ति अवसर दे देती है। न फिर खुद कहना पड़ता है, दूसरे कहने लगते हैं। इसलिए तो तुम नेताओं के पास चमचों को इकट्ठे देखते हो। ये चमचे क्या हैं? ये कुछ नए नहीं हैं। ये बड़े पुराने हैं। ये उतने ही प्राचीन हैं, जितना प्राचीन आदमी है।
और इन्हीं चमचों की भाषा तुम्हारे महात्मा बोलते रहे हैं। वे भी परमात्मा की खुशामद यूं करते हैं, जैसे लखनऊ के किसी नवाब की खुशामद कर रहे हों। को मो सम खल कुटिल कामी, मैं तो नमक हरामी! अपने को ऐसा दीन दिखा रहे हैं! और परमात्मा को बड़ा करके बता रहे हैं। दोनों एक ही चीज के पहलू हैं। अपने को छोटा करके दिखाना; परमात्मा को बड़ा करके दिखाना। कि मैं तो कुछ नहीं; धूल हूं। पापी हूं। और तुम--तुम पावन हो! तुम तीर्थ हो! तुम उद्धारक हो! तुम्हीं पापियों के एकमात्र सहारे हो! और मुझ जैसा कौन महापापी! यूं अपनी लकीर को जितना छोटा किया जा सके, कर रहे हैं; और परमात्मा की लकीर को जितना बड़ा कर सकें, कर रहे हैं।
यह भाषा दरबारियों की भाषा है। सोचते रहे लोग कि जब राजा-महाराजा, धनी-मानी आनंदित होते हैं स्तुति से, खुशामद से, तो परमात्मा भी होगा ही। वही भाषा परमात्मा के लिए बोली जा रही है। और जब कोई महात्मा यह भाषा बोलता है, तो तुम सोचते होः कितना विनम्र! कितना निरअहंकारी! को मो सम कुटिल खल कामी! अहा, तुम भी गदगद होते हो कि महात्मा भी गजब है! लेकिन अगर गौर से देखो, तो इसमें भी अहंकार है। वह यह कह रहा है कि मुझ जैसा कुटिल खल कामी कोई और नहीं! बस, मैं अद्वितीय हूं! मुझसे नीचे और कोई भी नहीं! तुम सबसे ऊपर--मैं सबसे नीचे। तुम भी अद्वितीय--मैं भी अद्वितीय! और हम दोनों का मिलन हो जाए, तो गजब हो जाए, तो चमत्कार हो जाए!
यह कुछ निर-अहंकार नहीं है। निर-अहंकार ऐसी भाषा बोल ही नहीं सकता। यह
तो अहंकार की ही भाषा है। हां, मगर अहंकार शीर्षासन कर रहा है; सिर के बल खड़ा है।
धन खरीद सकता है स्तुति, खुशामद, गीत, काव्य, महाकाव्य। तुम्हारे सारे महाकाव्य स्तुतियां हैं धनपतियों की, साम्राज्यवादियों की। छोटे-मोटे कवियों की तो छोड़ दो, तुम्हारे बड़े-बड़े कवि भी दरबारी ही हैं, भाट ही हैं। धन के लिए गीत लिखे हैं। पद और प्रतिष्ठा के लिए स्तुति की है।
धन खरीद सकता है; लोगों की आंखें खरीद सकता है। लोग तुम्हारी ऐसी तस्वीर दिखाने लगें, जैसी तुम देखना चाहते हो। है वैसी या नहीं--यह और बात।
और वही काम शक्ति से भी होता है। राष्ट्रपति है कोई, सम्राट है कोई, सिकंदर है कोई, प्रधानमंत्री है कोई, तो बस स्तुतियां शुरू हो जाती हैं।
जब तक पद पर है, तब तक चारों तरफ से गुणगान होता है।
पद पर बैठे लोगों को बड़ी भ्रांति पैदा हो जाती है कि जब इतने लोग कह रहे हैं तो ठीक ही कहते होंगे। आखिर क्यों इतने लोग झूठ कहेंगे! पद से उतरते ही पता चलता है कि अब कोई पूछता भी नहीं।
मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जैसे ही कोई व्यक्ति पद
से नीचे उतरता है, उसकी उम्र दस साल कम हो जाती है। वह दस साल पहले मर जाता है। अगर पद पर रह जाता तो दस साल और जी जाता।
गर्मी पैदा होती है लोगों की प्रशंसा से; बल आता है। बूढ़े भी जवान मालूम होते हैं। मुर्दा भी जिंदा मालूम होते हैं।
पद की आकांक्षा, शक्ति की आकांक्षा--लेकिन कारण वही है, कि कोई बता दे
कि मैं कौन हूं। कोई कह दे, कोई प्रमाण दे दे कि मैं कौन हूं। कोई मुझे बढ़ा- चढ़ाकर गौरीशंकर का शिखर बता दे। मुझे तो पता नहीं कि मैं कौन हूं, औरों पर ही निर्भर रहना होगा।

तुम जरा सोचना कि तुम्हारी अपने संबंध में जो जानकारी है, वह क्या है!
वह कतरन है लोगों के विचारों की। चिंदियां इकट्ठी कर रहे हो लोगों के मंतव्यों की। और उन्हीं का ढेर संजोए बैठे हो, और सोचते हो यही मैं हूं। और इसी बीच तुम्हारी विडंबना पैदा होती है। क्योंकि कोई तुम्हें अच्छा कह देता है, कोई तुम्हें बुरा कह देता है। कोई प्यारा कह देता है, कोई दुष्ट कह देता है। कोई महात्मा कह देता है, कोई पापी कह देता है। तुम बड़ी बिगूचन में पड़ जाते हो कि फिर मैं कौन हूं!
तुम्हारे संबंध में मंतव्य लोगों के अलग-अलग हैं। हर दर्पण तुम्हारी अलग तस्वीर बताता है। तुम कभी ऐसे दर्पणगृह में गए हो, जहां बहुत दर्पण लगे हों। कोई दर्पण तुम्हारा लंबा रूप बताता हो। कोई दर्पण तुम्हें बिल्कुल ठिगना बनाकर बताता हो। कोई दर्पण मोटा करके बताता हो। कोई बिल्कुल सींकिया पहलवान कर देता हो। कोई सुंदर--कोई असुंदर।
इस दर्पणगृह में तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे कि आखिर मैं कौन हूं! दूसरों पर जो निर्भर रहेगा, वह मुश्किल में तो पड़ेगा ही। क्योंकि नौकर तो कहेगा कि मालिक, आप जैसा सुंदर कोई भी नहीं। लेकिन तुम्हारा जो मालिक है, वह यह नहीं कहेगा। वह क्यूं कहेगा? वह तो तुमसे कहलवाएगा कि सुंदर मैं हूं। और तुमसे यह भी कहलवाएगा कि तुम कुरूप हो। क्योंकि ये सारी बातें सापेक्ष हैं और तुलनात्मक हैं। इसलिए तुम्हारा मन द्वंद्वग्रस्त होता है।
धन कितनी ही स्तुति खरीद ले, लेकिन निर्द्वंद्वता नहीं खरीद सकता, अद्वैत नहीं खरीद सकता। पद कितना ही लोगों का समादर पा ले, लेकिन कहीं न कहीं से कांटे भी उभरते ही रहेंगे। फूलों के बीच कहीं न कहीं कांटे भी उगते रहेंगे। इसलिए पद पर बैठा व्यक्ति कभी निश्चिंत नहीं हो पाता। पद निश्चिंतता नहीं खरीद सकता है।
जो लोग धन और पद की दौड़ में नहीं दौड़ पाते, क्योंकि वह दौड़ बड़ी संघर्ष
से भरी हुई है। पद की दौड़ का मतलब होता हैः पूरा जीवन जूझते बिताना। यह सबकी कुव्वत की बात नहीं है। न ही सब इतने मूढ़ होते हैं कि पूरी जिंदगी यूं गंवा दें।
इमरसन का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है, कि अमरीकी राष्ट्रपति बनने के लिए व्यक्ति को कम से कम तीस साल मेहनत करनी पड़ती है। और उसने कहा है कि जो व्यक्ति सिर्फ राष्ट्रपति बनने के लिए तीस साल मेहनत करता है, वह तो राष्ट्रपति होने के लिए बिल्कुल भी योग्य नहीं। राष्ट्रपति होने के लिए ही जो आदमी तीस साल गंवाने को राजी है--जिंदगी का आधा गंवाने को राजी है-- यह तो मूढ़ है ही। यह तो सबूत दे रहा है कि राष्ट्रपति होने के योग्य नहीं है।
पद की इतनी आकांक्षा बताती है कि भीतर हीनता होगी--गहन हीनता होगी। धन
के लिए लोग जिंदगीभर दौड़ते हैं। मरते समय कहीं धन इकट्ठा कर पाएंगे। जब धन का कुछ उपयोग कर सकते थे, तब धन के लिए दौड़ते रहे। और जब उपयोग न कर सकेंगे, तब धन हाथ लगेगा। यह विडंबना देखते हो! जब जवानी थी और धन का कुछ उपयोग हो सकता था, तब तो सिर फोड़ते रहे कि किसी तरह धन इकट्ठा हो जाए और जब बुढ़ापा द्वार पर आ गया और किसी तरह थोड़ा-बहुत धन इकट्ठा हुआ, तब इसका करोगे क्या? अक्सर यह हो जाता है कि जब आदमी धनी हो पाता है, तब तक न तो ठीक से भोजन
कर सकता है, न ठीक से सो सकता है। नींद खो जाती है। भोजन करके पचाने की क्षमता खो जाती है। न कुछ भोग सकता है। आशा यही रखी थी जिंदगीभर कि जब धन मिलेगा, तो फिर सब कर लूंगा। मगर करने वाला ही धन कमाने में खोता गया, खोता गया। धन तो मिल जाता है, मगर धनी नहीं बचता। धन का ढेर लग जाता है, उसी के नीचे दब कर मर गया वह, जो धन की तलाश में निकला था।
तो सभी लोग न तो धन की खोज में निकलते हैं और न पद की खोज में निकलते हैं। उन सबके लिए भी प्रकृति ने व्यवस्था की है। जैविकशास्त्र ने व्यवस्था की है कि कम से कम संभोग; कम से कम कोई एक स्त्री तो कह दे कि तुम अद्वितीय हो। कोई पुरुष तो कह दे कि तुझ जैसी सुंदरी कभी भी नहीं हुई; क्लियोपेत्रा भी कुछ न थी! कि एक व्यक्ति भी कह दे, इतना ही बहुत। एक दर्पण भी बता दे कि मेरी तस्वीर क्या है?

और संभोग इस लिहाज से सरलतम है, क्योंकि जितने पुरुष हैं इस पृथ्वी पर उतनी ही स्त्रियां हैं। अनुपात में पैदा होते हैं। लेकिन इस संबंध में भी पुराने जमानों में बड़ी दौड़ चलती थी। कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां? उन दिनों आदमी की ताकत, कूबत, पद-प्रतिष्ठा, कितनी उसकी स्त्रियां हैं, इससे नापी जाती थी। कृष्ण जैसे व्यक्ति की सोलह हजार स्त्रियां होनी ही चाहिए। पहले तो मैं सोचता था कि यह सिर्फ कपोल-कल्पना ही होगी। मगर यह बात कपोल-कल्पना नहीं है। अभी, पचास साल पहले, सिर्फ पचास साल पहले, उन्नीस सौ तीस में निजाम हैदराबाद की पांच सौ पत्नियां थीं। तो पांच सौ और सोलह हजार में क्या फर्क है! केवल बत्तीस गुना! कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं है। पांच हजार साल पहले मूर्खता भी बत्तीस गुनी रही होगी।
अगर निजाम हैदराबाद इस सदी में पांच सौ स्त्रियां रख सकते हैं तो कृष्ण ने अगर सोलह हजार रखी होंगी, तो कुछ आश्चर्य नहीं। मुझे अब कपोल-कल्पना नहीं मालूम होती। सच ही रहा होगा। आदमी की औकात ही इससे तौली जाती थी। उसका बल ही इससे समझा जाता था, कि कितनी स्त्रियां उसके पास हैं। चाहे धन हो, चाहे पद हो, चाहे काम हो--इन त्रिकोणों में एक ही अभीप्सा
है कि किसी तरह मुझे भरोसा आ जाए कि मैं हूं; और मैं व्यर्थ नहीं हूं। मैं हूं, और सार्थक हूं। मैं हूं, और हीन नहीं हूं। मेरी भी कुछ गरिमा है। मेरा भी कोई गौरव है। कोई सहारा मिल जाए। यह मेरी जो डांवाडोल होती हुई मंजिल है, यह मेरे जो ताश के पत्तों से बनाया गया महल है, यह गिर न जाए, इसके लिए हम सहारे खोजते हैं।
भीतर रिक्तता है। भीतर खालीपन है और अंधेरा है। इस अंधेरे को हम बाहर
की रोशनी से भुला देना चाहते हैं, दबा देना चाहते हैं। इस भीतर की रिक्तता को हम बाहर के धन से, पद से, भोग से भर लेना चाहते हैं। मगर यह रिक्तता ऐसे भरती नहीं। सौभाग्य है कि नहीं भरती। अगर भर जाती होती, तो धर्म की कोई संभावना ही न थी।
अगर फ्रायड सही होता या मार्क्स सही होते या एडलर सही होता, तो धर्म
की कोई संभावना नहीं थी। एडलर कहता है, शक्ति मिल गई, बस यही अभीप्सा है। तो फिर सिकंदर महान को वही तृप्ति मिलनी चाहिए थी, जो हमने बुद्ध की आंखों में देखी--वही शांति, वही आनंद; वह तो नहीं मिला।
एडलर के लिए इससे बड़ी और क्या गवाही चाहिए कि सिकंदर दुखी मरा। सारी दुनिया को जीत लिया; अकेला आदमी है, जो विश्वविजेता था। उस समय जितनी दुनिया जानी-मानी थी, उसको जीत लिया था। लेकिन मरा तो दुखी। मरा तो बेचैन। कहा था एक नंगे फकीर डायोजनीज से उसने कि अगर दुबारा मैं पैदा हुआ तो ईश्वर से कहूंगा, अब की बार सिकंदर न बनाना; डायोजनीज बना देना। नंगे फकीर से! क्योंकि डायोजनीज में उसने वह मस्ती देखी, जो सारी दुनिया जीतकर उसे नहीं मिली और डायोजनीज के पास कुछ भी न था; बिल्कुल कुछ भी न था। बुद्ध तो कम से कम भिक्षा का पात्र भी रखते थे। पहले डायोजनीज भी भिक्षा का पात्र रखता था, लेकिन एक दिन एक कुत्ते को पानी पीते देखकर उसे खूब हंसी आई और उसने कहा, जब कुत्ता बिना भिक्षापात्र के काम चला लेता है, तो क्या मैं कुत्ते से गया-बीता हूं! उसने भिक्षापात्र नदी में फेंक दिया। उस दिन से उसके पास कुछ भी न था।
सिकंदर भी मिलने गया था तो वह नग्न लेटा था रेत पर। सुबह की धूप ले रहा था। उठकर भी नहीं बैठा। सिकंदर को तो सम्राट भी खड़े होकर स्वागत करते थे। खड़े होना तो दूर, डायोजनीज उठा भी नहीं। हिला भी नहीं। जैसा लेटा था, लेटा ही रहा। सिकंदर को कुछ थोड़ी सी बेचैनी भी हुई कि बात कहां से शुरू करे। सिकंदर ने कहा कि मैं आया हूं बहुत दूर से। तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी थी और तुम्हें देखकर लगता है कि जो सुना था, वैसे ही तुम आदमी हो। तुम पहले आदमी हो, जो मुझसे डरा नहीं, जो मुझसे भयभीत नहीं। जो मेरी स्तुति में खड़ा नहीं हो गया। मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं।
डायोजनीज ने कहा कि छोड़ो, बकवास छोड़ो। तुम गरीब आदमी, तुम मेरे लिए क्या करोगे? तुम मुझसे पूछो कि मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं। तुम कुछ मुझसे मांगो। यह भ्रांति छोड़ दो कि तुम मुझे कुछ दे सकते हो। तुम मुझे

क्या दोगे? तुम्हारे पास क्या है? मैंने बहुत लोग देखे हैं, डायोजनीज ने कहा, तुम सबसे बड़े गरीब हो। तुम भिखमंगे हो!
सिकंदर को एक-एक बात हथौड़े की चोट की तरह पड़ी। मगर थी तो सच। इनकार भी
न कर सका। सिर झुकाकर खड़ा रहा। और कहा, फिर भी मैं विश्वविजेता हूं। तुम पर कोई अनुग्रह करने के लिए मैंने नहीं कहा कि क्या करूं; सिर्फ सम्मान प्रगट करने के लिए कहा है। कुछ कर सकूं तो मुझे कह दो। जरूर करूंगा।
डायोजनीज ने कहा, अगर कुछ करना ही चाहते हो, तो जरा हटकर खड़े हो जाओ। क्योंकि तुम्हारे कारण सूरज की रोशनी मुझ तक पहुंचने से रुक गई है। इससे ज्यादा तो कुछ तुम कर नहीं सकते। इससे ज्यादा मैं कुछ मांग नहीं सकता। न मुझे जरूरत है, न तुम्हारे पास है।
सिकंदर जब मरा, तो उसने अपने वजीरों से कहा, मेरे हाथ मेरे ताबूत के बाहर लटके रहने देना।
वजीरों ने कहा, आप कैसी बातें करते हैं--बहकी-बहकी! हाथ हमेशा ताबूत के भीतर होते हैं? कोई नया रिवाज चलाना चाहते हैं! हाथ ताबूत के बाहर लटके हुए क्या अच्छे लगेंगे! ऐसा न कभी हुआ; न देखा, न सुना!
सिकंदर ने कहा, हुआ हो या न हुआ हो, तुम मेरे हाथ लटके रहने देना। लेकिन, उन वजीरों ने पूछा, क्यों?
तो सिकंदर ने कहा कि मैं यह दिखाना चाहता हूं लोगों को कि इतना दौड़ा, इतना धापा, इतनी आपाधापी, मगर खाली हाथ जा रहा हूं। खाली हाथ जीया, खाली हाथ मर रहा हूं। ये मेरे खाली हाथ लोग देख लें--कि मेरे हाथ भरे नहीं हैं। मैं भर कर नहीं जा रहा हूं।
एडलर के लिए और क्या गवाही होगी इससे बड़ी? इस दुनिया में बहुत लोगों
ने पद पाए; बहुत लोग महाशक्तिशाली हो गए, लेकिन क्या मिला?
नहीं, एडलर एक बहुत आंशिक सत्य को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बता रहा है। और उस आंशिक सत्य में भी जो असली बात है, उससे चूक गया है।
मार्क्स कहता हैः धन, संपत्ति--बस, यही आदमी की कामना है। यह बात भी उतनी ही गलत है। क्योंकि इस जमीन ने कितने संपत्तिशाली लोग देखे!
बुद्ध वैशाली आए। और वैशाली का जो नगरसेठ था, उस जमाने में कहते हैं उतना बड़ा संपत्तिशाली व्यक्ति भारत में कोई दूसरा न था। सैकड़ों सम्राट उससे कर्ज लेते थे। सैकड़ों सम्राट उसके कर्जदार थे। जिसको जरूरत होती, जितनी जरूरत होती, उतना देता था। लेकिन वह भी बुद्ध के चरणों में आया। और उसने कहा कि मुझे कोई राह बताएं। अशांत हूं। बेचैन हूं। और जिंदगी रोज हाथों से बही जाती है। धन मेरे पास बहुत है, लेकिन क्या करूं इस धन का? भीतर तो निर्धन का निर्धन रह गया हूं।
और धन सच में ही उसके पास बहुत था। क्योंकि बुद्ध जिस बगीचे में ठहरे थे... । बुद्ध के एक भिक्षु ने उस नगरसेठ को कहा कि यह बगीचा प्यारा है। सैकड़ों एकड़ जमीन वाला बगीचा था। और बुद्ध अक्सर वैशाली आते हैं, उनके ठहरने के लिए यह जगह ठीक होगी। तुम इसे खरीद लो।
तो उस नगरसेठ ने कहा, खरीद देता हूं। और बुद्धसंघ को दान कर देता हूं। लेकिन जिसका बगीचा था, वह भी जिद्दी आदमी था। उसने कहा, बेचूंगा जरूर, लेकिन मेरी कीमत तुम शायद न चुका सको?
नगरसेठ के अहंकार को चोट लगी। उसने कहा, कीमत! जो तुम्हारा मुंहमांगा दाम, वही चुकाऊंगा। उसमें एक पैसा कम न करूंगा। बोलो!
उस आदमी ने जो मांगा, वह ऐसा था कि शायद कोई भी देने को राजी नहीं हो सकता था। उसने भी नहीं सोचा था कि कोई देने को राजी होगा। उसने कहा, स्वर्ण अशर्फियां बिछाओ। जितनी जमीन पर बिछा दो, उतनी जमीन तुम्हारी। बिछाते चलो, जितनी जमीन ढंक लोगे स्वर्ण-अशर्फियों से, वह तुम्हारी।
उसने पूरी सौ एकड़ जमीन पर स्वर्ण-अशर्फियां बिछवा दीं और पूरा बगीचा खरीद कर बुद्ध के संघ को दान कर दिया। निश्चित उसके पास अपार संपदा थी। लेकिन संपदा से क्या होगा? जमीन खरीदी जा सकती है; राज्य खरीदे जा सकते हैं। लेकिन एक और भी साम्राज्य है भीतर का, वह तो नहीं खरीदा जा सकता।
संभोग! सुंदर से सुंदर स्त्रियां लोगों को मिली हैं, सुंदर से सुंदर पुरुष लोगों को मिले हैं। लेकिन दो दिन में सब सौंदर्य समाप्त हो जाता है।

सब सौंदर्य दूरी में है। निकटता में बात सब बिगड़ जाती है। दूर के ढोल सुहावने!
उस जमाने में, बुद्ध के जमाने में आम्रपाली बहुत सुंदर स्त्री थी। कहते हैं, अति सुंदर स्त्री थी। लेकिन बुद्ध के चरणों में आ गई थी। सम्राट उसके द्वार पर कतारबद्ध खड़े रहते थे। पंक्ति लगाकर खड़े रहते थे। सम्राटों को भी उसके दर्शन मिलने दुर्लभ थे। उसकी कीमत चुकानी मुश्किल थी। आम्रपाली भी एक दिन पीतवस्त्र पहनकर बुद्ध के चरणों में आ गई। और उसने कहा, मुझे दीक्षा दे दें।
बुद्ध ने कहा, तू इतनी सुंदर है। तेरे पीछे सम्राट दीवाने हैं। तुझे क्या कमी है!
उसने कहा, रहें दीवाने। मैंने सब देख लिया। कुछ सार नहीं है। सब खेल हैं; बच्चों के खिलौने हैं।
संभोग से कोई कभी तृप्त हुआ है! न संपत्ति से तृप्त हुआ है, न शक्ति से कोई तृप्त हुआ है। हां, भ्रांति, आशा, सपना... । मिलते हैं, बहुत मिलते हैं, लेकिन पूरा तो कोई सपना नहीं होता, सब आशाएं निराशाएं हो जाती हैं और आज नहीं कल सब भ्रम भंग हो जाते हैं।
ये तीनों बात से चूक गए हैं। अगर ये तीनों में से कोई भी सही हो, तो धर्म का कोई स्थान नहीं रह जाता। अगर तीनों पूरे-पूरे सही हों, तो धर्म का कोई स्थान नहीं रह जाता। धर्म का इसीलिए स्थान है, कि इन तीनों में कुछ बुनियादी भूल है। लक्षण को इन्होंने मूल समझ लिया है। जैसे किसी को बुखार चढ़ा हो, और उसका शरीर गरम हो रहा हो। एक सौ पांच डिग्री, एक सौ छह डिग्री गर्मी बढ़ रही हो। और तुम समझो कि इस आदमी को गर्म होने की बीमारी हो गई। और तुम बर्फ का ठंडा पानी उसके ऊपर ढालो। कि डुबकी लगवाओ उसको जाकर ठंडे पानी में। कि किसी तरह इसकी गर्मी कम करो। यह लक्षण का इलाज होगा! इस इलाज में बुखार तो शायद ही जाए, बीमार जरूर मर जाएगा।
लक्षण दिखाई पड़ते हैं ऊपर से। ये सिर्फ लक्षण हैं--संपत्ति, शक्ति, संभोग। ये बीमारियां नहीं हैं। बीमारी तो एक है कि आदमी भीतर खाली है, रिक्त है; अंधेरे से भरा है। और इलाज भी एक है कि भीतर रोशनी चाहिए। इलाज भी एक है कि भीतर आनंद का भराव चाहिए।
अगर तुम मुझसे पूछो, जैसा तुमने पूछा है, तो यह मेरा पंच-फैसला है कि बीमारी है--ध्यान का अभाव। रोग है--ध्यान का अभाव। और औषधि है ध्यान। अमृत है ध्यान।
जो व्यक्ति अपने भीतर शांत और मौन, थिर हो जाता है; जो अपने को पहचान लेता है; खुद सीधा-सीधा अपनी आंख से ही अपने को देख लेता है; अपनी भीतर की आंख से अपने को गुन लेता है; और अपने भीतर के शून्य को आलोकित कर लेता है; अपने भीतर के दीए को जला लेता है--वह व्यक्ति तृप्त हो जाता है; परम तृप्त हो जाता है; मुक्त हो जाता है।
उसी की तलाश है। वही एक असली सवाल है। ये तीन कोने आदमी की चेष्टाएं हैं--उस असली सवाल से बचने की। मगर कोई कभी बच नहीं पाया। और कोई कभी बचेगा भी नहीं।
ध्यान का अभाव; अपने को न जानना; आत्म मूर्च्छा है। एक गड्ढा है हमारे भीतर और वह तब तक रहेगा, जब तक हम भीतर बैठ न जाएं; हम बैठ गए कि गड्ढा भरा। हम ठहरे कि गड्ढा भरा। और ये तीनों हमें दौड़ाते रहते हैं। धन है, पद है, काम हैं--ये दौड़ाते रहते हैं, दौड़ाते रहते हैं। ये रुकने ही नहीं देते। ये इलाज नहीं हैं, ये बीमारी को बढ़ाने वाले कारण हैं। बीमारी को कई गुना बढ़ा देते हैं; गुणनफलन कर देते हैं। बीमारी तो अपनी जगह रहती है, और हम बीमारी से बहुत दूर निकल जाते हैं। फिर अपने तक लौटना मुश्किल होता जाता है।
जो जितना पद की यात्रा में निकल गया है, राजनीति में, उसको फिर अपने पर लौटना उतना ही मुश्किल हो जाता है। और अपने पर लौटने में ही समाधान है। इसीलिए तो हमने स्वयं को जानने के लिए नाम दिया--समाधि। समाधि बनता है समाधान से। जहां सब आधियां-व्याधियां समाप्त हो गईं। जहां कोई बीमारी न रही।

ऐसे ही हमारा प्यारा शब्द है--स्वास्थ्य। जो स्वयं में स्थित हो गया
वह स्वस्थ। और जो स्वयं में स्थित हो गया, वही समाधिस्थ।
अखिलानंद, यह मेरा फैसला है। और यही सदियों-सदियों से समस्त बुद्धों
का फैसला है। और इस फैसले में कभी कोई अंतर नहीं पड़ेगा। यह फैसला शाश्वत है। एस धम्मो सनंतनो।

दूसरा प्रश्नः ओशो, कोई हजार वर्ष पूर्व आद्य शंकराचार्य ने कुछ प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिए थेः
ज्ञातुं न शक्यं च किमस्ति सर्वेर्योषिन्मनो यच्चरित्रं तदीयम्।
का दुस्त्यजा सर्वजनर्दुराशा विद्याविहीनं पशुरस्ति को वा।।
"अर्थात सब लोगों के लिए क्या जानना असंभव है?--स्त्री का मन और उसका चरित्र।
सब लोगों के लिए क्या छोड़ना अत्यंत कठिन है?--दुष्ट वासना।
पशु कौन है?--जो विद्याविहीन है।"
ओशो, यदि ये प्रश्न आज आपसे पूछे जाएं, तो आप क्या उत्तर देंगे?

सहजानंद, शंकराचार्य ने प्रश्नों का तो उत्तर नहीं दिया, अपनी मनोदशा जरूर जाहिर की है।
प्रश्न तो थाः "सब लोगों के लिए क्या जानना असंभव है?" और उत्तर! उत्तर दो कौड़ी का है। स्त्री का मन और उसका चरित्र! जैसे शंकराचार्य इसी को जानने में लगे रहे हों! स्त्री का मन और उसका चरित्र--क्या खाक करोगे जानकर। जानने को कुछ और नहीं? क्यों स्त्री के पीछे पड़े हो? क्या अड़चन है? इसीलिए मैं निरंतर कहता हूंः दमित चित्त--जिसने किसी तरह अपने को दबा लिया है; जिसने किसी तरह अपनी वासनाओं को नियंत्रण में कर लिया है... । व्यायाम, प्राणायाम, आसन... ! किसी तरह मार-पीटकर, उठा-पटक करके, उलटे खड़े हो-होकर; ठंड में, गर्मी में, धूप में, ताप में अपने को गला-गलाकर; भूखा- प्यासा रह-रहकर जिसने किसी तरह अपने को सम्हाल रखा है--बस, किसी तरह।
यह वैज्ञानिक तथ्य है कि तीन सप्ताह तक आदमी को भोजन न दिया जाए तो उसकी कामवासना क्षीण हो जाती है। क्योंकि कामवासना के लिए शरीर के पास अतिरिक्त शक्ति होनी चाहिए। शरीर को जितनी शक्ति की जरूरत होती है अपनी दैनिकचर्या को निभाने के लिए--सांस लेना है, खून का चलाना है, उठना है, बैठना है, सोना है, नहाना है--ये जो दैनिक जरूरतें हैं, इन सब के करने के बाद भी शक्ति बचती हो, तो आदमी में उस शक्ति के द्वारा वीर्य ऊर्जा का निर्माण होता है। अगर आदमी को भोजन ही न दिया जाए तो थोड़े दिन में उसकी इकट्ठी की हुई शक्ति पच जाती है। और तब उस भूखे आदमी में अगर वासना क्षीण हो जाए तो कुछ आश्चर्य नहीं। इस पर बहुत प्रयोग किए गए हैं।
तीन सप्ताह तक अगर आदमी को भूखा रखा जाए, फिर उसके सामने तुम सुंदर से सुंदर नग्न स्त्रियों के चित्र रख दो, वह फिक्र ही नहीं करता। उसे कोई रस ही नहीं। कोई प्रयोजन ही नहीं। पड़े रहें चित्र, उठाकर भी नहीं देखता। चित्रों को उठाने के लिए भी तो थोड़ा बल चाहिए! और क्या खाक करना इन चित्रों को उठाकर। अभी तो उसके मन में सबसे बड़ा सवाल भोजन है। अगर इस आदमी से तुम पूछो कि सब लोगों के लिए क्या पाना असंभव है? तो वह कहेगा--भोजन! इससे तुम कुछ भी कहो, इसके उत्तर में रोटी आएगी।
एक कवि जंगल में खो गया। तीन दिन तक भूखा रहा। फिर पूर्णिमा का चांद निकला और वह चकित हुआ! सदा उसे पूर्णिमा के चांद में प्रेयसी का चेहरा दिखाई पड़ता था; सुंदर-सुंदर चेहरे! इस बार दिखी एक रोटी। बड़ा चौंका। आंखें मलकर देखा कि बात क्या हो गई। कहां गईं सुंदर स्त्रियां? रोटी तैर रही है आकाश में! चमकदार रोटी! और उसके मुंह में पानी आ गया कि काश, एक रोटी मिल जाती!
अभी जब पेट भूखा हो... । तुमने तो कहावत सुनी है नः भूखे भजन न होहिं गुपाला! जब गोपाल का भजन भी भूखे नहीं होता, तो क्या तुम सोचते हो--फिल्मी गाना निकलेगा? गोपाल तक का भजन बंद हो जाता है, जब पेट भूखा होता है, तो फिल्मी गाना तो संभव नहीं है; बिल्कुल संभव नहीं है।

शंकराचार्य ने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया; अपनी मनोदशा जाहिर की है। मैं सोच ही नहीं सकता था! अगर कोई मुझसे पूछता कि सब लोगों के लिए क्या जानना असंभव है? तो इतने बड़े जगत में जहां पशु हैं, पक्षी हैं, पौधे हैं, पहाड़ हैं, चांद-तारे हैं--क्या-क्या नहीं है! इसमें कुल-जमा एकदम से खयाल उनको आया--स्त्री का मन और उसका चरित्र!
यह खयाल बड़ा सूचक है। यह आद्य शंकराचार्य की चित्तदशा के संबंध में सूचना दे रहा है। जो दबाया था, वही प्रगट हो आया है।
ज्ञातुं न शक्यं च किमस्ति सर्वेर्योषिन्मनो यच्चरित्रं तदीयम्।
मगर स्त्री के मन में ऐसा क्या है? कोई पुरुष के मन से कुछ भिन्न नहीं है। उसका ही दूसरा पहलू है। स्त्री और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
अगर पुरुष का मन आक्रामक है, तो स्त्री का मन ग्राहक है। इसमें कुछ समझने जैसी बड़ी बात नहीं है; कुछ बड़े रहस्य की बात नहीं है।
और पुरुष और स्त्री के चरित्र में कौन सा भेद है? पुरुष अगर धोखेबाज है, तो स्त्री धोखेबाज है। पुरुष अगर पाखंडी है, तो स्त्री पाखंडी है।
पुरुष अगर मुखौटे लगाकर घूमता है, तो स्त्री भी मुखौटे लगाकर घूमती है। दोनों के चरित्र और मन में ऐसा कुछ अंतर नहीं है। एक सिक्के का एक तरफ का हिस्सा है; दूसरा दूसरे तरफ का। जिसने अपने को समझ लिया, उसने सबको समझ लिया। उसने स्त्री को भी समझ लिया, पुरुष को भी समझ लिया।
सहजानंद, मैं यह उत्तर न दे सकूंगा। मैं तो एक ही चीज को जानता हूं जो जाननी असंभव है, और वह है स्वयं को। और स्वयं को जानना इसलिए असंभव है कि वहां ज्ञाता और ज्ञेय का भेद गिर जाता है।
दुनिया में ज्ञान के लिए तीन चीजें जरूरी हैंः ज्ञाता होना चाहिए; ज्ञेय होना चाहिए; और दोनों के बीच में जो संबंध बनता है उसका नाम ज्ञान है। लेकिन जहां स्वयं का जगत शुरू होता है वहां तो एक ही बचा। ज्ञाता भी वही, ज्ञेय भी वही, ज्ञान भी वही। इसलिए यह सर्वाधिक कठिन मामला है। यह सर्वाधिक असंभव मामला है। असंभव से ऐसा मत समझना कि घटता नहीं। घटता है। लेकिन मूलतः असंभव है। फिर भी घटता है! इसलिए आत्मज्ञान चमत्कार है, करिश्मा है। पानी पर चलना कोई करिश्मा नहीं, कोई तरकीब निकाली जा सकती है। और हवा में उड़ना भी कोई करिश्मा नहीं, कोई तरकीब निकाली जा सकती है। आखिर पक्षी उड़ ही रहे हैं। मछलियां तैर ही रही हैं। कोई तरकीब निकाली जा सकती है। जल्दी ही आदमी कोई तरकीब निकाल लेगा। इनमें कुछ चमत्कार नहीं है। विज्ञान इन कामों को हल कर देगा।
चमत्कार तो है स्वयं को जानना, क्योंकि वह असंभव घटना है। जहां एक ही बचता है--कैसे जानो? किसके द्वारा जानो? कौन जाने? किसको जाने? इसलिए तो बोधिधर्म का प्रसिद्ध उत्तर मुझे बहुत प्यारा है।
जब बोधिधर्म चीन पहुंचा और सम्राट वू ने उसका स्वागत किया, और सम्राट
वू ने कुछ प्रश्न उससे किए। प्रश्न ऐसे थे कि बिल्कुल संगत थे; सारगर्भित थे। लेकिन बोधिधर्म ने जो उत्तर दिए, बड़े अटपटे थे।
असली फकीर अटपटे उत्तर देते हैं। यह आद्य शंकराचार्य का उत्तर तो बहुत साधारण है; सड़क-छाप है! यह तो कोई भी पान की दुकान पर बैठे हुए लोग उत्तर दे देंगे। कि भैया, स्त्री का मन जानना बड़ा कठिन! और स्त्री का चरित्र पहचानना बड़ा कठिन! हालांकि स्त्रियां हंसती हैं कि हद हो गई ये बुद्धुओं को, इन बुद्धुओं को तो देखो! स्त्रियों का मन नहीं समझ पा रहे! स्त्रियों का चरित्र नहीं समझ पा रहे! इसमें मामला क्या है? इसमें इतना क्या गुह्य, इतना क्या रहस्यपूर्ण है?
बात सब सीधी-सादी है। उलझा ली है खुद ही। स्त्री से बचना चाहा है, तो समझोगे कैसे? स्त्री से भागे हो, तो समझोगे कैसे? स्त्री से मुंह चुरा लिया है, तो भागोगे कैसे? हो गए रणछोड़दासजी, अब स्त्री को समझोगे कैसे? यह तो कोई उत्तर नहीं है। यह उत्तर तो दो कौड़ी का है। किसी ने दिया हो-- आद्य शंकराचार्य ने दिया हो या किसी ने दिया हो--मैं आदमियों की फिक्र नहीं करता। यह उत्तर दो कौड़ी का है; मैं करूं क्या?

यह उत्तर बहुत साधारण है। अति साधारण है। ग्रामीण है। यह गांव का कोई गंवार ही दे सकता है यह उत्तर तो। इसमें क्या बात है? लेकिन बोधिधर्म ने जो उत्तर दिया, वह सोचने जैसा है।
वू ने उससे पूछा कि मैंने बहुत से विहार बनवाए, मंदिर बनवाए; बुद्ध की लाखों प्रतिमाएं बनवाईं। लाखों भिक्षुओं को मैं रोज भोजन देता हूं। अनाथालय खुलवाए, चिकित्सालय खुलवाए। वृक्ष लगवाए रास्तों पर कि राहगीरों को छाया मिले। प्याउएं खुलवाईं कि प्यासों को पानी मिले। विधवा आश्रम खुलवाए, वृद्धाश्रम खुलवाए। इस सबका मुझे क्या पुण्य मिलेगा?
बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। पुण्य की तो तू बात ही छोड़। तू सातवें नर्क में पड़ेगा।
यह बोधिधर्म मेरे जैसा आदमी रहा होगा--सीधा-साफ; दो टूक। उठाया लट्ठ
और दे मारा। सम्राट वू बहुत चौंका। क्योंकि इसके पहले बहुत और संत-महात्माओं से मिला था और उन सबने कहा था कि सातवां स्वर्ग निश्चित है! इतना पुण्य--किसने किया है! कभी किसी ने नहीं किया।
वू ने ही बुद्ध-धर्म को चीन में स्थापित किया। सारे चीन को बौद्ध बनाया वू ने। तो बौद्ध भिखारी, बौद्ध भिक्षु, बौद्ध महात्मा, बौद्ध संत कैसे इसकी प्रशंसा न करते! उसी की रोटी पर तो जीते थे। उसी की धर्मशालाओं में तो रहते थे। उसी के मंदिरों में तो पुजारी थे। वही तो उनका जीवन-आधार था। तो उसकी प्रशंसा करते थे; खुशामद करते थे।
लेकिन बोधिधर्म जैसे लोग सीधी-सीधी बात कहते हैं। जैसी होती है, वैसी
ही कहते हैं। सम्राट बहुत सुसंस्कृत आदमी था। छिपा गया अपनी चोट को। उसने फिर पूछा कि खैर, कोई बात नहीं। लेकिन धार्मिक आचरण--सुबह उठकर बुद्ध की पूजा; दिन में शास्त्र का अध्ययन-मनन; इस सब में कुछ तो पवित्रता होगी? बोधिधर्म ने कहा, पवित्रता? दुनिया में पवित्रता-अपवित्रता जैसी कोई चीज है ही नहीं। सब समान है। न कुछ पवित्र है--न कुछ अपवित्र। न कोई संत है--न कोई पापी।
अब जरा बात चोट कर गई, और गहरी हो गई। वू ने पूछा, तो फिर मैं एक बात पूछना चाहता हूं। तुम कौन हो? नाराज हो गया होगा। उतारकर रख दी होगी खोल जो पहन रखी थी--सुसंस्कृति की, संस्कार की, श्रेष्ठता की, सम्राट होने की। भूल गया होगा। क्योंकि बोधिधर्म करता गया चोट पर चोट--कि नर्क में पड़ोगे; कुछ पवित्र नहीं है; कुछ पुण्य नहीं है। ये सब तुमने जो किया--व्यर्थ है; सब बकवास है। यह कहां का शास्त्र; कहां का अध्ययन; कहां का मनन? कैसा निदिध्यासन? यह चोट इतनी हो गई कि वह भूल गए एक क्षण को। गुस्से में पूछा, तो यह बताओ कि तुम कौन हो?
बोधिधर्म हंसा और कहा कि मुझे कुछ भी पता नहीं। मैं नहीं जानता हूं। सुकरात कहता है कि मैं इतना ही जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। उपनिषद कहते हैं, जो कहता है कि मैं जानता हूं, जानना कि नहीं जानता और
जो कहे कि मैं नहीं जानता हूं, जानना कि जानता है।
बोधिधर्म के इस छोटे से उत्तर में--कि मैं नहीं जानता; मुझे कुछ पता नहीं--अज्ञान नहीं है; परम ज्ञान है। उपनिषद का सारा सार आ गया। सारे सुकरातों का सार आ गया। लेकिन वू नहीं समझा। कौन समझेगा ऐसी बात को!
तो वू ने कहा, जब तुम अपने को ही नहीं जानते, तो मैंने नाहक मेहनत की जो वर्षों तुम्हारी प्रतीक्षा की।
बोधिधर्म यह सुनते ही लौट पड़ा। बाद में वू बहुत पछताया। जब उसने और बौद्ध भिक्षुओं से पूछा तो उन्होंने कहा, आप समझे नहीं। उसने बात बड़ी गहरी कही, बड़े पते की कही। क्योंकि जब भीतर कोई पहुंचता है तो वहां जानने वाला ही नहीं बचता। तो कैसे कहो कि मैंने जाना! कौन कहे? दावा नहीं हो सकता। उसने इतना ही कहा कि मैं वहां पहुंच गया हूं, जहां दावे खो जाते हैं। मैं वहां बैठा हूं, जहां न जानने वाला है, न जानने को कुछ है; जहां सब सन्नाटा है; जहां परम शून्य है। उसने निर्वाण की घोषणा कर दी, आप समझे नहीं।

फिर तो वू बहुत पछताया। उसने बार-बार संदेश भेजे। लेकिन बोधिधर्म ने कहा, तुम चूक गए। जिस तरफ से मैं लौट पड़ा, लौट पड़ा। अब वापस नहीं आऊंगा।
तुम्हें आना हो, तो तुम कभी भी आ सकते हो।
वह सम्राट वू की जो सीमा थी उसके पार ही एक पहाड़ी पर रहा। सम्राट वू को
ही उसके दर्शन को जाना पड़ा। और उसने कहा कि मुझे भी उस जगह ले चलो, जहां तुम हो।
तो उसने कहा कि कल सुबह जल्दी आ जाना। तीन बजे रात आ जाना। अकेले आना। खयाल रहे, अकेले आना!
जब सीढ़ियां उतर रहा था उस पहाड़ी की, तब उसने फिर चिल्लाकर कहा, कि ध्यान रहे, अकेले आना। अपने मन को भी साथ मत लाना! बिल्कुल अकेले आना!
वू ने कहा, यह आदमी तो पागल मालूम होता है। अब अपने मन को साथ मत लाना--
यह मैं कैसे करूंगा! और अब बिल्कुल अकेले आना... ।
वह कभी अकेला कहीं गया नहीं था। उसका पहरेदार, तलवार नंगी लिए उसके पास होता था। और यह आदमी खतरनाक दिखता है। और हाथ में डंडा भी रखता है। अरे, खोपड़ी में मार दे! तीन बजे रात; इस पहाड़ी पर कोई भी नहीं! कई दफा सोचा-- जाऊं; कई दफा सोचा--नहीं जाऊं। रातभर सो भी नहीं सका। फिर यह भी लगा कि कहीं चूक न जाऊं। अरे, मारेगा ही बहुत से बहुत! एकाध डंडा ही खा लूंगा, और क्या! मगर रस ऐसा जगा था कि गया। बैठा बोधिधर्म के सामने। बोधिधर्म ने कहा, आंख बंद कर और भीतर खोज। और जैसे ही तुझे मिल जाए कि यह रहा "मैं", मुझे खबर कर देना। उसी वक्त उसका फैसला कर दूंगा। वहीं खतम कर दूंगा। तू पकड़ ले और मैं उसका खातमा कर दूं। यह मैं डंडा लिए तेरे सामने बैठा हूं।
वू ने आंख बंद कीं। पहले तो डरा भी कि यह डंडा लिए सामने बैठा है। सो
भी न सका डर के कारण, झपकी भी न खा सका। झपकी भी आ रही थी। रातभर सोया नहीं था। मगर यह डंडा मार देगा। तो सजग बैठा रहा। रीढ़ सीधी किए। सजग। भीतर बहुत तलाश की। कहीं कोई "मैं" मिले ही न! सुबह हो गई। सूरज निकल आया। सूरज की किरणें जब उसके चेहरे पर पड़ने लगीं, उसका चेहरा ऐसा आह्लादित था, जैसे भीतर से भी किरणें उग आईं, भीतर भी सूरज उग आया!
बोधिधर्म ने उसे हिलाया और कहा कि अब उठो। नहीं मिला न! मैं तुम्हारे चेहरे से ही देख रहा हूं कि नहीं मिला।
वू ने कहा, मत छेड़ो। बाधा मत डालो। मैं उस सन्नाटे में हूं, उस शांति में हूं, जो मैंने कभी नहीं जानी। "मैं" तो नहीं मिला, लेकिन जो मिला है, उसको कोई शब्द में बांध नहीं सकता।
झुका और बोधिधर्म के चरण छुए और कहा कि अब मैं समझा तुम्हारा मतलब। अब समझा तुम्हारा राज, जो तुमने कहा कि मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूं। मैं भी नहीं जानता। मगर इस न जानने में सारा जानना छिपा हुआ है।
तो अगर तुम मुझसे पूछो सहजानंद, तो मैं कहूंगाः स्वयं को जानना सर्वाधिक असंभव है। क्या स्त्री का मन जान कर करोगे? स्त्रियों को जानने दो। यह शंकराचार्य को क्या पड़ी! ये अपना ही मन जानें! ये अपना ही चरित्र समझ लें! इनको स्त्री के चरित्र से क्या लेना-देना है?
यह स्त्रियों में अतिशय उत्सुकता, रुग्ण-चित्त का लक्षण है।
किसी स्त्री से पूछो, तो वह कहेगी, पुरुष का मन जानना असंभव। और उसका चरित्र जानना असंभव! बकरे से पूछो; वह कहेगा--बकरी का! बकरी से पूछो; वह कहेगी--बकरे का! गौ-माता से पूछो; वह कहेगी--सांड का मन और चरित्र जानना बड़ा मुश्किल! नंदी बाबा से पूछो; वे कहेंगे कि और सब तो ठीक है, मगर गौ-माता का चरित्र और मन बिल्कुल समझ में नहीं आता!
यह भी कोई उत्तर हुआ! यह थोथी सी बात उत्तर नहीं है।
और उन्होंने कहा कि "सब लोगों के लिए क्या छोड़ना अत्यंत कठिन है?" वही बात फिर आ गई!--"दुष्ट वासना!" वही घाव है। हर प्रश्न के उत्तर में वही निकलेगा। मवाद जो भरी है।
"दुष्ट वासना... !"
नहीं; वासना में क्या रखा है। वासना तो यूं चली जाती है, जैसे अंधेरा चला जाता है। दीया जलाना आना चाहिए। दीया जलाओ--अंधेरा गया। हां, अंधेरे से लड़ोगे, तो नहीं जाएगा। बहुत कठिन हो जाएगा। फिर कहोगे--दुष्ट अंधेरा!

हटता ही नहीं। मैं कितनी पहलवानी कर रहा हूं। डंड-बैठक लगाता हूं; घूंसाबाजी करता हूं--मगर सब बेकार। अंधेरा हटता ही नहीं। तिलभर नहीं सरकता। तलवार ले आओ; तलवारें चलाओ। अंधेरा कटता नहीं तलवारों से।
लेकिन एक छोटा सा दीया जलाओ--और वह शक्तिशाली अंधेरा कहां गया, पता नहीं चलता। खोजे से नहीं मिलता। हटाना तो दूर, तुम अगर उसे खोजना भी चाहो, तो न खोज पाओगे।
"दुष्ट वासना... !"
इसको दुष्ट कहने में सिर्फ अपनी पीड़ा छिपी हुई है। हटती नहीं है, इसलिए दुष्ट कह रहे हैं। हम गाली तभी देते हैं, जब हम हारे हुए होते हैं। हम गाली उसको देते हैं, जिससे हम हारे हुए होते हैं। हम नाराज उस पर होते हैं, जिससे हम परेशान होते हैं।
अब ये वासना से परेशान रहे होंगे, पीड़ित रहे होंगे। धक्का मारते होंगे, हटती न होगी; लौट-लौट आती होगी। इधर से हटाते होंगे, इधर से आती होगी। सामने के दरवाजे से निकलते होंगे, पीछे के दरवाजे से आती होगी। मगर आती होगी। तो कहते हैं--दुष्ट!
मगर इसमें वासना का कोई कसूर नहीं है। अंधेरे का क्या कसूर है, अगर तुम दीया न जलाओ? वासना तो केवल अभाव है--ध्यान का अभाव, होश का अभाव, जागरण का अभाव। वासना यानी मूर्च्छा। वासना यानी नींद। जाग जाओ; फिर कहां है नींद? जागकर कभी नींद पाई है? दीया जलाकर कभी अंधेरा पाया है? प्रकाश का अभाव मात्र है और दीया जलाना एकमात्र उपाय है। फिर तुम गाली न दोगे वासना को।
तो मैं यह न कहूंगा कि क्या छोड़ना अत्यंत कठिन है?--दुष्ट वासना तो नहीं! वासना में क्या दुष्टता है?--कुछ भी नहीं और वासना में तो कोई बल ही नहीं है; उसको छोड़ना असंभव कैसे हो सकता है? हां, अगर लड़ोगे तो तुम्हारी गलती है।
फिर छोड़ना क्या कठिन है?--मूर्च्छा, बेहोशी। वह जो हम जीए जा रहे हैं। यंत्रवत, वह जो हम प्रमाद से भरे जीए जा रहे हैं, उसे छोड़ना कठिन है। जागरण को लाना कठिन है। दीए को जलाना कठिन है।
महावीर से किसी ने पूछा, मुनि कौन? अमुनि कौन?
महावीर ने बड़े प्यारे उत्तर दिए। महावीर ने कहा, असुत्ता मुनि--जो सोया नहीं है, वह मुनि। सुत्ता अमुनि--और जो सोया है, वह अमुनि।
बस, सारे धर्म की बात हो गई। हजारों गुलाबों का इत्र जैसे निचोड़ दिया
एक बूंद में! सारी सुगंध आ गई।
छोड़ना कठिन है--मूर्च्छा। और छोड़ने का एक ही उपाय है--ध्यान।
पहले प्रश्न के उत्तर में मैंने तुमसे कहा, वही मैं दूसरे प्रश्न के उत्तर में तुमसे कह रहा हूं। और ध्यान रखनाः शंकराचार्य ने भी पहले प्रश्न के उत्तर में वही कहा, जो वे दूसरे प्रश्न के उत्तर में कह रहे हैं।
वही स्त्री--अब कामवासना बन गई, अब दुष्ट वासना बन गई।
मैं तो एक ही उपाय जानता हूं जीवन रूपांतरण का और वह ध्यान है। ध्यान
आ जाए, तो जो नहीं जाना जा सकता, वह जान लिया जाता है; और जो नहीं हटाया जा सकता, वह हट जाता है।
और तीसरा उन्होंने पूछा, "पशु कौन है!--जो विद्या-विहीन है।"
वह बात भी बहुत साधारण हो गई।
पशु शब्द को समझो, तो खयाल में आ जाएगा। मेरा तो उत्तर वही होगा। प्रश्न तुम लाख करो--उत्तर तो एक ही है। पशु का अर्थ होता है--पाश में बंधा। जो मूर्च्छित है, वह पशु है। वह पाश में बंधा है। हजार तरह के जंजालों में बंधा है। जालों में बंधा है। लोभ है, मोह है, क्रोध है, काम है। पाश पर पाश; पर्त पर पर्त। जंजीरों पर जंजीरें पड़ी हैं। और तुम लाख विद्या इकट्ठी कर लो; सारे वेद कंठस्थ कर लो; महापंडित हो जाओ--क्या होगा? महापंडित ढब्बूजी नदी के किनारे रेत में बैठे शराब पी रहे थे। वहां
से एक साधु निकला। रहे होंगे--आद्य शंकराचार्य! उसने ढब्बूजी को दूर से ही देखकर कहा, बच्चा, मदिरापान नहीं करते! मदिरापान न कर। राम-राम भज। भज गोविंदम मूढ़मते!

ढब्बूजी ने साधु को नमस्कार किया, किंतु पीना जारी रखा। पंडित तो ऐसा
ही होता है। पांडित्य की बातें करता जाता है और वही मूर्च्छित ढंग जीने का! वही शराब, वही जुआ। इधर वेद भी दोहराए चला जाता है, भीतर वासना को भी जीए चला जाता है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वेद क्या वासना को थोड़े ही काट सकते हैं?
साधु बोला, सुनता नहीं बच्चा! कहा न मैंने, इस बोतल को फेंक नदी में। ईश्वर का स्मरण कर। कसम खा ले कि अब कभी न पीऊंगा।
ढब्बूजी ने बोतल उठाई; उसकी सारी शराब गिलास में उंड़ेल दी; बोतल को जोर से नदी में फेंककर पुनः शराब पीने लगे।
पंडित तो ऐसा ही होता है। वह तरकीबें निकाल लेता है!
विद्या से क्या होगा? गीता रट लोगे; तोतों की तरह दोहराने लगोगे। इससे कुछ जीवन में क्रांति होने वाली है?
साधु से न रहा गया। वह फिर बोला, मदिरापान त्याग दे प्राणी! राम-राम कह। उसी से तुझे कल्याण मिलेगा। कम से कम मुझे यह तो बता कि यह गंदी आदत तुझे कैसे लग गई?
ढब्बूजी ने कहा कि मेरे चचेरे भाई के मामा के दोस्त के पड़ोसी की सुंदर युवा लड़की एक कार दुर्घटना में मर गई, इसलिए मैं शराब पी रहा हूं।
साधु बोले, वाह, वाह! क्या बात कही! चचेरे भाई के मामा के दोस्त के पड़ोसी की कन्या की मृत्यु से तुम्हारा क्या संबंध? राम-राम, राम-राम! ढब्बूजी ने जवाब दिया, चचेरे भाई के मामा के दोस्त के पड़ोसी की लड़की
से तो मेरा कुछ संबंध हो भी सकता है। मगर आप तो बिल्कुल अजनबी हैं। दूर की जान-पहचान वाले भी नहीं हैं। आपके द्वारा मुझे शराब पीने से रोके जाने का क्या संबंध है? फिर बोतल को नदी में फेंकने से मदिरापान का क्या संबंध है? यह तो देख ही चुके कि बोतल फेंक दी। इससे कोई मदिरापान रुक जाएगा? और यह भी ठीक।
... मगर मेरे कल्याण और राम-राम, राम-राम में कैसे कोई संबंध हो सकता है? राम-राम कहने से मुझे कल्याण कैसे मिलेगा? अरे, मेरे दोस्त, कल्याण को मरे तो चार वर्ष से अधिक हो चुके! अधिक शराब पीने के कारण उसकी मृत्यु हो चुकी है।
पंडित पढ़ता कुछ, कहता कुछ, जीता कुछ! पंडित तो एक धोखे में होता है। विद्याविहीन--पशु! तो तुम अगर विद्या से अपने को भर लोगे, तो विद्या भरे पशु हो जाओगे--और क्या होगा? विद्या से लदे पशु हो जाओगे--और क्या होगा? जैसे गधे पर गीता रखी! मगर इससे क्या गधे में कोई फर्क पड़ने वाला है? जरा डंडा मारो--पता चल जाएगा। वही ढेंचू-ढेंचू! सब गीता के मंत्र वगैरह नहीं कुछ याद आएंगे। लाद दो गीता, कि कुरान शरीफ, कि बाइबिल, कि तालमुद-- सबको लाद लेगा। अरे, गधा ही है, वह क्या इनकार करेगा? मगर विद्या से लदा हुआ गधा भी गधा ही होगा।
प्रदर्शनी में रखे एक ऐसे कंप्यूटर की खबर सुनकर जो तीनों कालों की जानकारी रखता है, महापंडित ढब्बूजी भी उसे देखने गए और परीक्षण के लिहाज से उन्होंने अपने स्वर्गीय पिता के संबंध में सवाल पूछा कि इस समय मेरे पिता किस स्थान में हैं और वे क्या कर रहे हैं?
जवाब मिला, आपके पिता गंगा के तट पर ऋषिकेश में पद्मासन लगाए बैठे हैं
और अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देते हुए गायत्री-मंत्र का जाप कर रहे हैं।
ढब्बूजी ने प्रदर्शनी के मैनेजर से कहा, बिल्कुल गलत। मेरे पिता का स्वर्गवास तो आज से आठ वर्ष पूर्व हो चुका है। सरासर धोखा-धड़ी हो रही है! आपका कंप्यूटर त्रिकालज्ञ नहीं है।
मैनेजर बोला, नाराज मत होइए। सवाल को दूसरे ढंग से पूछकर देखिए। हो सकता है, आपको सही जवाब मिल जाए।
ढब्बूजी ने प्रश्न को दूसरे ढंग से इस तरह पूछा, मेरे मां के पति इस समय कहां हैं और वे क्या कर रहे हैं?
कंप्यूटर ने उत्तर दिया, आपके मां के पति की मृत्यु को तो आठ साल हो चुके! वे तो स्वर्गवासी हो गए हैं!

प्रदर्शनी के मैनेजर ने मुस्कुराकर कहा, कुछ समझने की कोशिश करिए! महोदय, सरासर धोखा-धड़ी मैं क्यों करूंगा! और मैं क्या करूंगा? वह तो पहले ही आपके पिता के साथ कोई कर चुका है!
ढब्बूजी क्रोध में आकर गरजे, बकवास बंद करो। मुझे उल्लू मत बनाओ।
मैनेजर की जगह इस बार त्रिकालज्ञ कंप्यूटर ने जवाब दिया, अजी, हम भला क्यों आपको उल्लू बनाएंगे! वह काम तो ईश्वर ही पहले कर चुका है।
विद्या से क्या होगा? जान लो सारे शास्त्र; तो भी तुम पशु ही रहोगे। पशु से तो तुम तभी मुक्त हो पाओगे, पशुता से तुम तभी मुक्त हो पाओगे, जब तुम्हारे सारे बंधन गिर जाएं और बंधन सब मूर्च्छा के हैं।
ध्यान के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं है। तुम हजार सवाल करो सहजानंद, मेरा उत्तर तो एक ही है--ध्यान। ध्यान के बिना तुम पशु हो। ध्यान के बिना तुम कभी मनुष्य न हो पाओगे और ध्यान आया तो सब आया। क्योंकि ध्यान तुम्हारे भीतर छिपे हुए जीवन-अमृत के झरनों को फोड़ देता है।
तो मेरा तो एक ही उत्तर है। सबसे कठिन बात यही है--ध्यान। सबसे अत्यंत कठिन बात यही है--गैर-ध्यान को छोड़ना। और पशु कौन है?--जो ध्यान-विहीन है।
विद्या पर मेरा जोर नहीं है। विद्या तो जानकारी है--जानना नहीं, ज्ञान नहीं। ध्यान ही एकमात्र वास्तविक ज्ञान है--और वही मुक्ति है।
आज इतना ही।